

ISSN :2320-7736 (online)

UGC care List Journal



# विज्ञान गरिमा

## सिंधु

अंक 118-119(जुलाई-दिसंबर,2021)

ध्रुवीय एवं सामुद्रिक विज्ञान विशेषांक



वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

COMMISSION FOR SCIENTIFIC & TECHNICAL TERMINOLOGY

शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)

Ministry of Education(Department of Higher Education)

भारत सरकार

GOVERNMENT of INDIA



# विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

ध्रुवीय एवं सामुद्रिक विज्ञान विशेषांक

अंक 118-119(संयुक्तांक)

(जुलाई-दिसंबर 2021)



**वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग**

शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)

COMMISSION FOR SCIENTIFIC & TECHNICAL TERMINOLOGY

Ministry of Education (Department of Higher Education)

भारत सरकार

GOVERNMENT of INDIA

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित “विज्ञान गरिमा सिंधु” एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है- हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। पत्रिकामें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

### लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया लेख डिजिटल फॉर्म में ही भेजे तथा यूनिकोड फॉण्ट का ही उपयोग करें या टाइप किया हुआ व कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. डिजिटल फॉर्म में भेजे लेखों को ही प्राधान्य दिया जायेगा।
6. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख के आयाग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी प्रयाय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
7. कृपया लेख [vgs.cstt@gmail.com](mailto:vgs.cstt@gmail.com) इस ई मेल पर MS word form में भेजे: अन्यथा ‘संपादक’, विज्ञान गरिमा सिंधु, वै.त.शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम् नई दिल्ली-110066 पर भेजें।
8. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक या संपादक मंडल का निर्णय ही अंतिम होगा।
9. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
10. पत्रिका में प्रकाशित लेखों के लिए किसी भी प्रकार के मानदेय का प्रावधान नहीं है।
11. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

### सदस्यता शुल्क:

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं हेतु प्रतिअंक	₹14.00	पौंड 1.64 डॉलर 04.84
वार्षिक चंदा	₹ 50.00	पौंड 5.83 डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	₹ 08.00	पौंड 0.93 डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	₹ 30.00	पौंड 3.50 डॉलर 02.88

वेबसाइट: [www.cstt.education.gov.in](http://www.cstt.education.gov.in)

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता:

बिक्री स्थान:

कापीराइट @ 2022

प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक

प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग

प्रकाशक: वै.त.श.आयोग शिक्षा मंत्रालय

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7 रामकृष्णपुरम्, पश्चिमी खंड-7 सेक्टर-1, नई दिल्ली-66

नई दिल्ली- 110066

दूरभाष-(011)20862356 विस्तार-246

email [vgs.cstt@gmail.com](mailto:vgs.cstt@gmail.com)

फैक्स - (011) 26102882

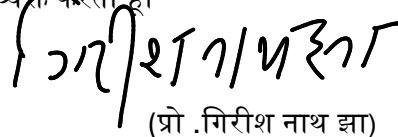
## अध्यक्ष की कलम से.....

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न वैज्ञानिक, तकनीकी एवं अन्य संबद्ध क्षेत्रों में तैयार की गई शब्दावली के समुचित उपयोग को सुनिश्चित करने तथा उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से “विज्ञान गरिमा सिंधु” का प्रकाशन करता है। आयोग द्वारा समय-समय पर कुछ विशेष विषयों पर विशेषांकों का भी प्रकाशन किया जाता है। इस अंक में बहुत ही रोचक और कम छुए ध्रुवीय क्षेत्रों और अनगिनत संभावनाओं से भरपूर समुद्र विज्ञान की अतल गहराइयों में छिपे रहस्यों को उद्घाटित करने वाले लेखों को शामिल किया गया है। इस तरह से ध्रुवीय और सामुद्रिक विज्ञान के संबंध में वैविध्यपूर्ण जानकारी एक ही स्थान पर प्रस्तुत करने से पाठकों को संबंधित क्षेत्रों में हो रहे नवीनतम अनुसंधान एवं शोध-कार्य की सूचनाएं उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध हो जाएंगी। साथ ही इस विषय पर दी गई रोचक और ज्ञानवर्धक सूचनाएं समुद्र तथा ध्रुवों की स्थितियों में समय-समय पर हो रहे बदलावों की जानकारी प्राप्त करने के लिए पाठकों के मन में और भी जानने की जिज्ञासा पैदा कर सकती है।

“विज्ञान गरिमा सिंधु” का यह अंक विशेष रूप से ध्रुवीय और सामुद्रिक विज्ञान के क्षेत्र में जो कुछ घट रहा है उससे जुड़े विषयों पर केंद्रित किया गया है। पत्र-पत्रिकाएं न केवल संस्था विशेष के वैशिष्ट्य ज्ञान की परिचायक हैं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग क्षेत्र में हो रहे महत्वपूर्ण अनुसंधानों, शोध-कार्यों का समेकित एवं जनोपयोगी सार्थक मंच भी होती हैं। “विज्ञान गरिमा सिंधु” का उद्देश्य मूल रूप से हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा देना तथा उसका प्रचार-प्रसार करना है जिसका कार्यान्वयन व अनुपालन पत्रिका अपने प्रत्येक अंक में करती रही है। पत्रिका का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ संग्रहणीय भी है। विद्वान लेखकों ने पत्रिका के अनुकूल अपनी रचनाएं आयोग को उपलब्ध कराई हैं जिनका मूल्यांकन विषय विशेषज्ञों एवं भाषा विशेषज्ञों की मूल्यांकन एवं परामर्श समिति द्वारा किया गया है।

मैं इस अवसर पर देश के प्रतिनिधि विश्वविद्यालयों, तकनीकी एवं अन्य संस्थाओं के वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों से अपेक्षा करता हूं कि वे आयोग के विशेषज्ञ विद्वानों के सहयोग से तैयार की गई प्रामाणिक व मानक शब्दावली का अधिक से अधिक उपयोग करें एवं अपना सार्थक सहयोग प्रदान करें। इसके साथ ही हिंदी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों पर पुस्तकें भी लिखते रहें।

“विज्ञान गरिमा सिंधु” पत्रिका के प्रस्तुत अंक के संपादन में विद्वान सदस्यों का योगदान सराहनीय रहा है। विषय विशेषज्ञों एवं भाषा विशेषज्ञों के सहयोग के लिए भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ। अंत में “विज्ञान गरिमा सिंधु” के इस विशेष अंक के लिए आयोग के अधिकारी डॉ. अशोक एन. सेलवटकर, संपादक एवं डॉ. ब्रजेश कुमार सिंह, सहायक निदेशक के प्रति भी धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।



(प्रो. गिरीश नाथ झा)

अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

## संपादकीय.....

“विज्ञान गरिमा सिंधु” का अंक 118-119 (संयुक्तांक) पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। यह अंक जिस विषय पर केंद्रित है वह आज के युग में अत्यंत प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण है, क्योंकि ध्रुवीय विज्ञान और सामुद्रिक विज्ञान, मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं और गतिविधियों से प्रमुख रूप से जुड़े हुए हैं। इसीलिए ध्रुवीय क्षेत्रों और समुद्र के विभिन्न पहलुओं पर आलेखों और शोध-पत्रों को इस अंक में शामिल किया गया है।

अंक 118-119 में शामिल किए गए शोध-पत्र तथा आलेख पठनीय और ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ ध्रुवीय क्षेत्रों और समुद्र के विभिन्न पहलुओं पर हमारी जानकारी को समृद्ध करते हैं तथा हमारे विचारों को उद्वेलित करते हैं। साथ ही प्रयुक्त शब्दावली की सूची को भी इस अंक में संकलित किया गया है जिससे विषय को समझने में और भी आसानी रहेगी। भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, संस्थानों के विभिन्न लेखकों एवं शोधकर्ताओं के आलेख एवं शोध-पत्र इसमें शामिल किए गए हैं जो प्रस्तुत विषय के प्रति उनके विचारों, चिंतन और शोध से परिपूर्ण इन क्षेत्रों में नई संभावनाओं को भी रेखांकित करते हैं। मूल्यांकन एवं परामर्श समिति द्वारा विषय, भाषा और नई दिशा को ध्यान में रखकर सामग्री का बेहतर चयन किया गया है। मैं समिति के इस कार्य की सराहना करता हूँ। इस अंक के लेखों के संपादन में डॉ.शुभ्रता मिश्रा का विशेष योगदान रहा है। साथ ही राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र गोवा के निदेशक डॉ.एम. रविचंद्रन और वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ.रवि मिश्रा का भी सराहनीय सहयोग रहा है।

हम आयोग के अध्यक्ष प्रो.गिरीश नाथ झा के विशेष रूप से आभारी हैं जिनके दिशा-निर्देश और प्रोत्साहन से इस कार्य को पूरा किया जा सका है। साथ ही मैं परामर्श, मूल्यांकन तथा संपादन समिति के सभी सदस्यों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके अथक प्रयासों से ही इस पत्रिका के प्रस्तुत अंक को मूर्त रूप दिया जा सका है। हमें विश्वास है कि इस अंक में प्रस्तुत आलेखों और शोध-पत्रों से पत्रिका के पाठक, ध्रुवीय क्षेत्रों एवं समुद्र विज्ञान के प्रति और भी जागरूक तथा जिज्ञासू होंगे और उन्हें इस दिशा में अपना सहयोग देने तथा कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी।

(डॉ.अशोक एन.सेलवटकर)

संपादक “ विज्ञान गरिमा सिंधु”

(डॉ.ब्रजेश कुमार सिंह)

सहायक निदेशक

# वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

“ विज्ञान गरिमा सिंधु ” अंक 118-119

ISSN:2320-7736

	अनुक्रम	पृष्ठ संख्या
प्रधान संपादक प्रो. गिरीश नाथ झा अध्यक्ष  संपादक डॉ. अशोक एन. सेलवटकर एवं डॉ. बी. के. सिंह सहायक निदेशक  प्रकाशन – मुद्रण व्यवस्था डॉ. अशोक एन. सेलवटकर सहा. निदेशक  विक्री एवं वितरण डॉ. बी. एस. बेहेरा वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी (आयु.) संपर्क सूत्र 'संपादक'  “ विज्ञान गरिमा सिंधु अंक ” वै. त. श. आयोग शिक्षा मंत्रालय वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, पश्चिमी खंड- 7 रामकृष्णपुरम्, सेक्टर-1, नई दिल्ली -110066	1. दक्षिण ध्रुव और अंटार्कटिक वृत्त समेटता अंटार्कटिका महाद्वीप डॉ. रवि मिश्रा	01
	2. ध्रुवीय अनुसंधानों में अग्रसर भारत डॉ. एम. रविचंद्रन	08
	3. समुद्र विज्ञान और महासागरों का अन्वेषी इतिहास डॉ. शुभ्रता मिश्रा	14
	4. हिमालय के हिमनदों और जलवायु परिवर्तन और हिमनद स्वास्थ्य परमानंद शर्मा* और लवकुश पटेल	24
	5. उत्तरी ध्रुव - एक समग्र परिचय प्रमोद भार्गव	43
	6. महासागरीय संसाधन नवनीत कुमार गुप्ता	52
	7. जलवायु और विवर्तनिक हलचलों का परिणाम : टांगचे घाटी ..... रणधीर सिंह	60
	8. दक्षिणी महासागर में प्लवक उत्पादकता ..... डॉ. शरतचंद्र त्रिपाठी	79
	9. भारतीय समुद्री क्षेत्रों में अतिसूक्ष्म कणों का वितरण ..... रोहित श्रीवास्तव	89
	10. अंटार्कटिका में सौर विकिरण अध्ययन विजय कुमार उपाध्याय	101
	11. ध्रुवीय अनुसंधान और सौरमंडलीय ग्रहों में जीवन की खोज ..... सुश्री श्वेताक्षी मिश्रा	106
	12. भारत का विस्तारित महाद्वीपीय शेल्फ कार्यक्रम ..... अजित कुमार एवं डी. के. पांडे	111
	13. पृथ्वी के ध्रुवों का ज्योतिषशास्त्रीय विश्लेषण ..... डॉ. राजेश पुरोहित	118
संस्मरण I दिनेश डिमरी	126	
संस्मरण II सिमी कासिम	131	
प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली	139	

“विज्ञान गरिमा सिंधु” पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचारों, सूचनाओं, जानकारियों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, या इस अंक के संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए त्रैमासिकी के रूप में प्रकाशित की जाती है।

## 1. दक्षिण ध्रुव और अंटार्कटिक वृत्त समेटता अंटार्कटिका महाद्वीप

डॉ. रवि मिश्रा  
वरिष्ठ वैज्ञानिक  
राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा

वर्तमान इंटरनेट और मीडिया की बढ़ती प्रासंगिकता ने अंटार्कटिका जैसे दुनिया के अलग पड़े हिमानी महाद्वीप को भी लोगों के काफी करीब पहुंचा दिया है। इंटरनेट पर अंटार्कटिका शब्द लिखते ही विश्व की अनेक भाषाओं में इतनी जानकारियां सामने आ जाती हैं कि उनको पढ़कर ही लोग ऐसा महसूस करने लगते हैं मानो वे भी वहां हो आए हैं। वहां रहे लोगों के संस्मरण रोंगटे खड़े कर देते हैं और जो स्वयं वहां रहकर आए हैं, उनकी स्मृतियों से अंटार्कटिका और उसका प्राकृतिक अद्भुत सौंदर्य कभी बिसर ही नहीं सकता। सामान्यतौर पर लोगों के मन में अंटार्कटिका की छवि छह महीने रात और छह महीने दिन वाले भूखंड की है। यह बिल्कुल सच है, लेकिन इस तथ्य को भलीभांति समझने के लिए पृथ्वी और उसके ध्रुवों को समझना बहुत आवश्यक है।

यह सर्वविदित है कि पृथ्वी एक विशाल चुंबक की भांति कार्य करती है। पृथ्वी के गर्भ में ठोस आंतरिक कोर है जिसके चारों ओर लौह एवं निकिल जैसे भारी तत्वों वाली बाह्य कोर द्रव अवस्था में उपस्थित है। हमारी पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर निश्चित कक्षा में लगाती हुई 365 दिन 5 घंटे 46 मिनट में वार्षिक गति के साथ पूर्ण करती है। साथ ही पृथ्वी अपने दो वास्तविक भौगोलिक उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से होकर गुजरने वाले अक्ष पर भी 23 घंटे 56 मिनट 4 सैकेंड में एक चक्कर पूरा कर घूमती रहती है। पृथ्वी के घूर्णन के कारण पृथ्वी के द्रव अवस्था वाली बाह्य कोर इलेक्ट्रिक धारा उत्पन्न करती है। इससे चुंबकीय क्षेत्र का निर्माण होता है। पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की रेखाएं चुंबकीय ध्रुवों पर बहुत पास पास आ जाती हैं, इससे पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र ध्रुवों पर अधिक शक्तिशाली हो जाता है। पृथ्वी का चुंबकत्व संभवतः उस पर सांसे ले रहे प्रत्येक जीव के लिए एक रक्षा कवच का कार्य करता है। साथ ही, अनेक प्रवासी प्रजातियों को मार्गदर्शन भी प्रदान करता है। पृथ्वी के ध्रुवों पर जहाँ से ये चुंबकीय धाराएँ प्रवाहित होती हैं, वहीं चुंबकीय क्षेत्र का प्रभाव सर्वाधिक होता है। इन्हीं स्थानों को पृथ्वी के उत्तरी चुंबकीय ध्रुव तथा दक्षिणी चुंबकीय ध्रुव कहा जाता है। कंपास की सूई हमें शा उत्तरी चुंबकीय ध्रुव की ओर संकेत करती है। पृथ्वी के चुंबकीय ध्रुव उसके वास्तविक भौगोलिक (उत्तरी व दक्षिणी) ध्रुवों से भिन्न होते हैं। अतः स्पष्ट है कि पृथ्वी का भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव वास्तव में दक्षिण चुंबकीय ध्रुव से अलग है।

ध्रुवों की तरह गोलार्धों में भी भिन्नता होती है। पृथ्वी को, भूमध्य रेखा दो गोलार्धों में विभाजित करती है। इसके ऊपर का क्षेत्र उत्तरी गोलार्ध और नीचे का क्षेत्र दक्षिणी गोलार्ध के रूप में जाना जाता है। दक्षिणी गोलार्ध में मौसम उत्तरी गोलार्ध के विपरीत समय पर होते हैं। इस बात को समझने के लिए पृथ्वी के घूर्णन संबंधी एक और तथ्य पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वह यह कि पृथ्वी अपने अक्ष पर 23.5 डिग्री झुकी हुई है, अतः यह सूर्य के चारों ओर जैसे-जैसे घूमती है, एक समय में उसका केवल आधा भाग ही सूर्य के सामने आता है और आधा पीछे रह जाता है। फलतः दिन और रात बनते हैं। यही कारण है कि दिन और रात की अवधि भी बराबर नहीं होती है। किसी भी समय, आधी दुनिया दिन में और आधी रात में होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पृथ्वी की वार्षिक गति के फलस्वरूप कभी पृथ्वी का उत्तरी गोलार्ध और कभी दक्षिणी गोलार्ध सूर्य के सामने अधिक झुके हुए रहते हैं और ध्रुवों पर छह माह के दिन और छह माह की रातें होती हैं। उत्तरी गोलार्ध में छह माह का दिन 21 मार्च से 23 सितंबर तक व दक्षिणी गोलार्ध में 24 सितंबर से 20 मार्च तक होता है। इसके विपरीत रातें होती हैं।

यही कारण है कि जब उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्मकाल होता है तब दक्षिणी गोलार्ध में शीतकाल चलता है और जब उत्तरी गोलार्ध में शीतकाल होता है तब दक्षिणी गोलार्ध में ग्रीष्मकाल चल रहा होता है।

अब बात करते हैं भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव की, जो पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध का केंद्र है और पृथ्वी के दक्षिणतम महाद्वीप अंटार्कटिका में अंतर्निहित है। दक्षिण ध्रुव और अंटार्कटिका सदियों से भूवेत्ताओं और वैज्ञानिकों की खोज का विषय रहे हैं। अंटार्कटिका को पृथ्वी के एक विशालतम दक्षिणी महाद्वीप के तौर पर मानचित्र में दर्शाए जाने के विवरण सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों से प्रामाणिक तौर पर मिलते हैं। एक ब्रिटिश अन्वेषक जेम्स कुक 1773-74 के दौरान अंटार्कटिक वृत तक पहुंचे थे, परंतु उसे पार नहीं कर पाए थे। अंटार्कटिका का इतिहास दर्शाता है कि सन् 1820 में पहली बार किसी व्यक्ति ने अंटार्कटिका के दर्शन किए थे। ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार रूसी शाही नौसेना के कप्तान फैबियन गॉटलिएब वॉन बेलिंगशौसेन ने 27 जनवरी 1820 को सबसे पहले अंटार्कटिका के बर्फाले मैदानों को देखा था, जबकि ब्रिटिश शाही नौसेना के कप्तान एडवर्ड ब्रांसफील्ड ने भी ठीक उसी समय के आसपास 30 जनवरी 1820 को अंटार्कटिक भूमि के दर्शन किए। स्टोनिंगटन, कनेक्टिकट के एक सील शिकारी नैथानियल पामर ने भी नवंबर 1820 में ही पहली बार अंटार्कटिका महाद्वीप की झलक देखी थी। इसके बाद इस हिमानी महाद्वीप को देखने और समझने की लालसा दुनिया के दूसरे देशों में हिलोरे लेने लगी। वर्ष 1839 में संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेना द्वारा अंटार्कटिक महासागर के लिए अन्वेषण अभियान भेजा गया। एक ब्रिटिश खोजकर्ता जेम्स क्लार्क रॉस भी सन् 1841 में अंटार्कटिक महाद्वीप पहुंचे थे। अंटार्कटिका के रॉस सागर का नाम उनके नाम पर ही रखा गया है। एक और अन्वेषक मर्कटॉर कूपर 26 जनवरी 1853 को पूर्वी अंटार्कटिका पर पहुंचे थे। धीरे-धीरे अंटार्कटिका से मानव का साक्षात्कार बढ़ने लगा था। यहां तक कि उसके कदम 1907 में दक्षिण चुंबकीय ध्रुव तक भी पहुंच गए, जब टी. डब्ल्यू एजवर्थ डेविड के नेतृत्व वाला दल एरेबेस पर्वत पर चढ़ते हुए वहां तक पहुंचने में सफल हो गया था। अब प्रतिस्पर्धा भौगोलिक दक्षिण ध्रुव तक पहुंचने की थी। इसके लिए दुनिया के कई देशों के खोजकर्ताओं के बीच प्रतियोगिता चल रही थी, उनमें ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, स्वीडन और नार्वे प्रमुख थे। विशेष तौर पर नार्वे के रोआल्ड एमंडसन और ब्रिटेन के रॉबर्ट फेल्कन स्कॉट के बीच प्रतिस्पर्धा चरम पर थी। रोआल्ड एमंडसन अपने पांच लोगों और 52 श्वानों के दल के साथ 19 अक्टूबर 1911 को ही पृथ्वी के दक्षिण ध्रुव की खोज में निकल पड़े थे। वे लोग 14 दिसंबर, 1911 को पहली बार दक्षिण ध्रुव पर पहुंचे। हांलाकि वहां पहुंचने तक उनके दल में श्वानों की संख्या मात्र 16 रह गई थी, क्योंकि यह कहा जाता है कि शेष श्वानों का उपयोग दल ने अपने भोजन के रूप में कर लिया था। उन्होंने दक्षिण ध्रुव पर अपना टेंट लगाया और सर्वप्रथम नार्वे का ध्वज लगाकर रोआल्ड अपने दल के साथ सुरक्षित वापस आ गए थे। वहीं दूसरी ओर ब्रिटेन के रॉबर्ट फेल्कन स्कॉट भी अपने दल के साथ एक नवंबर 1911 को दक्षिण ध्रुव के लिए रवाना हुए थे, परंतु वहां पहुंचने में उन लोगों को अपेक्षाकृत अधिक समय लग गया। स्कॉट का दल 17 जनवरी 1912 को दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचा, तब उन्होंने पहले से ही वहां नार्वे का ध्वज लहराते हुए पाया। यद्यपि सर्वप्रथम होने का सुयश भले ही स्कॉट को नहीं मिल पाया, तथापि उन्होंने अपनी दक्षिण ध्रुव यात्रा सफलतापूर्वक पूरी की थी। यह बेहद दुखद सत्य है कि वापसी में भूख, ज्वर और हड्डियों को गला देने वाली अंटार्कटिक शीत स्कॉट की मृत्यु का सबसे बड़ा कारण बनीं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि रोआल्ड और स्कॉट के साहसों ने दक्षिण ध्रुव तक पहुंचने के द्वार भी खोल दिए थे। सन् 1911 तक अंटार्कटिका और उसके चुंबकीय तथा भौगोलिक दक्षिण ध्रुवों से अनभिज्ञता की परतें हट चुकी थीं। अंटार्कटिका का हिमानी सौंदर्य और वैज्ञानिक विशिष्टताएं तब से लगातार विश्व के वैज्ञानिकों को आकर्षित करती आई हैं। अतः इस अभूतपूर्व प्राकृतिक भू-परिवेश और अतुल संपदाओं को संरक्षित करते हुए इस महाद्वीप के मानव कल्याण में उपयोग को बढ़ावा देने के लिए एक अंटार्कटिका संधि बनी है। महाद्वीप पर सभी



मानवीय गतिविधियों को अंटार्कटिक संधि द्वारा विनियमित किया जाता है, जिसे 1960 में हस्ताक्षरित किया गया था। इस संधि प्रणाली में अंटार्कटिका को 60 ° दक्षिण अक्षांश के दक्षिण में भूमि या बर्फ के शेल्फ के रूप में परिभाषित किया गया था, संधि के अनुसार अंटार्कटिका वैज्ञानिक संरक्षण वाला क्षेत्र है। इस संधि के तहत अंटार्कटिका में सभी प्रकार की सैन्य गतिविधियों और खनन पर भी प्रतिबंध लगाया हुआ है। यह संधि 1961 में लागू हुई और वर्तमान में इसके 54 सदस्य हैं। 1983 में भारत भी इस संधि का सदस्य बना। यही कारण है कि अंटार्कटिका पर अभी किसी देश का दावा नहीं है तथा वर्तमान में वहां अंटार्कटिक संधि के अंतर्गत 50 से अधिक देशों के वैज्ञानिक अपने-अपने अनुसंधान कर रहे हैं।

आइए एक दृष्टि पृथ्वी के इस अद्भुत महाद्वीप पर डालते हैं। यह महाद्वीप दक्षिणी गोलार्ध के अंटार्कटिक क्षेत्र और लगभग पूरी तरह से अंटार्कटिक वृत्त के दक्षिण में स्थित है। अंटार्कटिका पृथ्वी का सबसे ठंडा महाद्वीप है, जिसका कुल क्षेत्रफल 1.4 करोड़ वर्ग किलोमीटर है। चारों ओर से बर्फ की मोटी चादरों से ढंके अंटार्कटिक महाद्वीप में आर्कटिक से छह गुना अधिक बर्फ है। यहां की बर्फ की औसत मोटाई 1.6 किलोमीटर है। अंटार्कटिका के चारों ओर दक्षिणी महासागर है, जिसमें विशाल हिम-शिलाखंडों के समूह तैरते रहते हैं। हिम-शिलाखंड अनेक प्रकार की आकृतियों एवं आकारों में पाए जाते हैं। इस तरह यह वही तूफानी व विक्षुब्ध अपार जलराशि वाला दक्षिणी महासागर है, जिसने अंटार्कटिका को दुनिया के अन्य महाद्वीप से बिल्कुल अलग-थलग कर रखा है। इस हिमाच्छादित महाद्वीप में बमुश्किल मात्र 2,000 वर्ग किलोमीटर भूमि हिमविहीन होगी। अनुमानतः विश्व का 90 प्रतिशत से भी अधिक अलवणीय(लवण रहित) जल हिम और बर्फ के रूप में अंटार्कटिका में पाया जाता है, जो पिछले करोड़ों वर्षों से संचित होता रहा है। भू-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अंटार्कटिका पर्माकार्बोनिफेरस कालीन प्राचीन शैलों से निर्मित है। अंटार्कटिक शैलों के समान अनेक शैल भारत, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका में भी पाई जाती हैं। ऐंडीज़ एवं अंटार्कटिक महाद्वीप में एक सी पाई जाने वाली शैलें इनके सुदूर पुरातनकालीन संबंधों के साक्षात् प्रमाण हैं। यहाँ पर ग्रेनाइट तथा नीस नामक शैलों की एक 1100 मील लंबी पर्वत श्रेणी है, जिसका धरातल बलुआ पत्थर तथा चूने के पत्थर से बना है। इसकी ऊँचाई 8,000 से लेकर 15,000 फुट तक है। अंटार्कटिका में हिम-युगों के भी चिह्न मिलते हैं।

अंटार्कटिका का पूर्वी भाग, पश्चिमी भाग की अपेक्षा अधिक ऊँचाई में स्थित होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक ठंडा रहता है। वर्षभर केवल 20 ही दिन तापमान शून्य से ऊपर रहता है। शीतकाल में अंटार्कटिका का न्यूनतम तापमान  $-80^{\circ}\text{C}$  ( $-112^{\circ}\text{F}$ ) और  $-90^{\circ}\text{C}$  ( $-130^{\circ}\text{F}$ ) के बीच तथा ग्रीष्मकाल में अधिकतम तापमान  $5^{\circ}\text{C}$  ( $41^{\circ}\text{F}$ ) और  $15^{\circ}\text{C}$  ( $59^{\circ}\text{F}$ ) के बीच होता है। यहां की बर्फीली सतहों पर पड़ने वाली पराबैंगनी प्रकाश की किरणें साधारणतया पूरी तरह से परावर्तित हो जाती हैं। अंटार्कटिका में बहुत कम बारिश होती है, इसलिए उसे ठंडा रेगिस्तान माना जाता है। यहां की औसत वार्षिक वृष्टि मात्र 200 मिलीमीटर है और अधिकतर बर्फ की वर्षा होती है। अंटार्कटिका के ऊपर उच्च वायुभार का क्षेत्र रहता है। इस कारण दक्षिण-पूर्व की ओर बहने वाली वायु का प्रति-चक्रवात उत्पन्न होता है। कभी-कभी 320 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार वाली हवाएं चलती हैं, जो धरती से बर्फ के कणों को काट कर उड़ा ले जाती हैं। अंटार्कटिका में सबसे रुक्ष मौसम-परिस्थितियाँ काटाबेटिक हवाओं और हिमझंझावातों के कारण ही होती हैं। काटाबेटिक हवाएं सामान्य तौर पर अंटार्कटिका और ग्रीनलैंड की विशाल और ऊंची उठी हुई बर्फ की चादरों से बहती हुई पाई जाती है। हिम-झंझावातों के दौरान

दृश्यता एक मीटर से भी कम हो जाती है। अंटार्कटिका में 150 से भी अधिक झीलें हैं, जिनमें वोस्टॉक झील सबसे विशाल है।

अंटार्कटिका की धरती पूरी तरह से बर्फ से ढंकी होने के कारण उसकी उर्वरता बहुत कम होती है, साथ ही वहां की जलवायुवीय परिस्थितियां भी अपेक्षाकृत कम अनुकूलित होती हैं। यही कारण है कि यहां जीव-जंतुओं और पौधों की प्रजातियां बहुत कम मिलती हैं। अंटार्कटिक प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग से अत्यंत छोटे आकार के मात्र दो देशज पुष्पीय पादपों क्रमशः एक डेसचेम्पसिया अंटार्कटिका नामक घास और दूसरा कोलोबेन्थस क्विंटेंसिस नामक एक पर्लवार्ट (जो अंटार्कटिक पिंक के नाम से जाना जाता है) को खोजा गया है। उप-अंटार्कटिक द्वीप में पुष्पीय पादपों व फर्नों की लगभग तीस प्रजातियाँ उगती पाई गई हैं। इनके अलावा अंटार्कटिका के कुछ भागों में प्रमुखतया प्रारंभिक जीवरूप जैसे जीवाणु, कवक, शैवाल, लाइकेन और माँस भी पाए जाते हैं। हांलाकि इन सभी को केवल अंटार्कटिक ग्रीष्मकाल के दौरान ही देखा जा सकता है।

पौधों की ही तरह इस दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेश में धरती पर रहने वाले अन्य सामान्य जंतुओं की प्रजातियां नहीं पाई जाती हैं। पूरे अंटार्कटिक महाद्वीप में लगभग 70 प्रकार के जीव खोजे गए हैं। इनमें से 44 कीट प्रजाति के हैं। सबसे बड़ा कीट एक प्रकार का पंखहीन मच्छर है। अंटार्कटिका में कोई स्थलीय स्तनधारी प्राणी नहीं है, पर बहुत से समुद्री स्तनधारी उसके तटों पर विश्राम करने आते हैं, या उसके आसपास के समुद्रों में आहार खोजते हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की ह्वेलें और पांच प्रकार के सील – केकड़ा भोजी सील, तेंदुआ सील, रोस सील, वेडेल सील और गज सील शामिल हैं। रोस सील अत्यंत दुर्लभ प्राणी है, जबकि वेडेल सील तटों के नजदीक ही रहता है। सभी सीलों में बड़ा गज सील है, जो प्रजनन तो अंटार्कटिका के निकट के द्वीप में करता है, लेकिन अंटार्कटिका के आसपास भोजन की तलाश करने आता है। अंटार्कटिका के पास के समुद्रों में बिना दांतवाली ह्वेलें काफी मात्रा(संख्या) में पाई जाती हैं। अंटार्कटिका में पाए जानेवाले पक्षियों में दक्षिण ध्रुवीय स्कुआ तथा अडेली और किंग पेंग्विन शामिल हैं। यहाँ पर विश्व में अन्यत्र अप्राप्य 11 प्रकार की मछलियाँ मिलती हैं। अंटार्कटिका में वेलापवर्ती (पिलेजिक) क्रस्टेशियन-अंटार्कटिक क्रिल बहुतायत में पाए जाते हैं, जिनका वैज्ञानिक नाम यूफेसिया सुपरबा है। ये झींगे-जैसे जीव होते हैं और व्हेलों, सीलों, पैंग्विनो, अनेक मछलियों, स्किडों और असँख्य पक्षियों के लिए भोजन का प्रमुख स्रोत हैं।

हांलाकि पिछले कई वर्षों से यहां अंटार्कटिक शोध स्टेशनों में काम कर रहे लोगों के कारण मनुष्य भी दिखने लगे हैं। वर्तमान में अंटार्कटिका महाद्वीप में भारत, चीन, ब्राजील, अर्जेन्टीना, कोरिया, पेरू, पोलैंड, उरूग्वे, इटली, स्वीडन, अमरीका और रूस सहित 30 देशों के कुल 70 स्थाई अनुसंधान स्टेशन हैं। अनुसंधान की दृष्टि से यह अंटार्कटिका हमेशा से वैज्ञानिकों के लिए बेहद महत्वपूर्ण रहा है। इसका कारण यह है कि दुनिया के इस एकांत और शांत स्थल पर जीव विज्ञान से लेकर रसायन विज्ञान, मौसम विज्ञान, भौतिक विज्ञान, भूविज्ञान और चिकित्सा विज्ञान आदि अनेक विषयों संबंधी वैज्ञानिक प्रयोग किए जा सकते हैं। पृथ्वी की चुंबकीय विशेषताओं, मौसम, महासागरीय विक्षोभों, जीवों पर सौर विकिरण के प्रभाव और भूगर्भ से संबंधित विभिन्न अनुसंधान अब तक किए जा चुके हैं और अनवरत नित नए प्रयोग चल भी रहे हैं।

विधिवत रूप से भारत की अंटार्कटिका में उपस्थिति 9 जनवरी 1982 को मानी जाती है, क्योंकि इसी दिन भारत का पहला 21 सदस्यीय अभियान दल डा. एस. जेड. कासिम के नेतृत्व में अंटार्कटिका पहुँचा था। लेकिन अंटार्कटिका पर पहुँचने वाले प्रथम भारतीय मूल के नागरिक श्री गिरिराज सिरोही को माना जाता है। श्री सिरोही एक वनस्पतिशास्त्री थे एवं वे एक अमेरिका अभियान दल के सदस्य के

रूप में वर्ष 1960 में अंटार्कटिका गए थे। सिरोही ने दक्षिणी ध्रुव पर पृथ्वी के लगभग न घूमने की स्थिति में कॉकरोच जैसे जीवों पर अपना अध्ययन किया था। सिरोही के सम्मान में ही अंटार्कटिका के ब्रेडमोर ग्लेशियर के स्थान का नाम 'सिरोही प्वाइंट' रखा गया है। इस तरह श्री सिरोही अमेरिका की तरफ से गए थे, परंतु डॉ. कासिम और अन्य भारतीय भारत सरकार की तरफ से प्रथम भारतीय अंटार्कटिक अभियान लेकर अंटार्कटिका पहुंचे थे। इस अभियान दल ने ही एक बेस कैम्प स्थापित करके भारत के प्रथम अंटार्कटिक स्टेशन दक्षिण गंगोत्री की नींव डाल दी थी। मौसम की निगरानी की दृष्टि से बेस कैम्प में एक मौसम केंद्र की स्थापना भी की गयी थी।

दूसरा भारतीय अंटार्कटिक अभियान दल 28 सदस्यों के साथ अंटार्कटिका पर 28 दिसंबर, 1982 को पहुंचा। इस अभियान दल के प्रमुख कार्यों में स्थाई स्टेशन की स्थापना के लिए स्थल का चुनाव, पिछले अभियान के दौरान प्रारंभ की गई वैज्ञानिक अनुसंधान गतिविधियों को जारी रखना, बेस कैम्प के निकटवर्ती क्षेत्र में संचार सूत्र स्थापित करना था ताकि भविष्य में कार्य जारी रहें। तीसरा अभियान-दल 27 दिसंबर, 1983 को अंटार्कटिका गया था और वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यों को सुचारू रूप से जारी रखने के लिए भारत के पहले दक्षिण गंगोत्री स्थाई स्टेशन की स्थापना हुई। हालांकि दक्षिण गंगोत्री बर्फ के नीचे दब जाने से अब अस्तित्व में नहीं है। भारत के दूसरे स्थाई अनुसंधान स्टेशन मैत्री का निर्माण पूर्वी अंटार्कटिका में सिरीमाचेर मरुद्यान पर 1988 में किया गया था। पहली बार भारत ने 13 नवंबर 2010 को मैत्री से दक्षिणी ध्रुव के लिए एक वैज्ञानिक अभियान का शुभारंभ किया था। आठ सदस्यीय दल ने सिरीमाचेर मरुद्यान से दक्षिणी ध्रुव तक के मार्ग में वायुमंडलीय एयरोसोल आंकड़े और कई छोटे हिम क्रोड एकत्र किए थे। दल 22 नवंबर, 2010 को दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचा और सभी वैज्ञानिक कार्यों को पूरा करके 1 दिसंबर, 2010 को 'मैत्री' लौटा था। सन् 2012 में भारत ने अपना तीसरा अत्याधुनिक शोध स्टेशन 'भारती' अंटार्कटिका के लार्समान पर्वत पर स्थापित किया है। वर्तमान में भारत के दो स्थाई अंटार्कटिक स्टेशनों मैत्री और भारती में वैज्ञानिक शोध जारी हैं। हर वर्ष भारत अपने अंटार्कटिक दलों को भेजता है। इस वर्ष 2020 में चालीसवां भारतीय अंटार्कटिक वैज्ञानिक अभियान दल जाने के लिए तत्पर है। भारतीय अंटार्कटिक अभियान कार्यक्रम भारत सरकार के पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय का एक बहुविधायी और बहु-संस्थागत कार्यक्रम है।

## संदर्भ

- Craig Welch (2018) As the Antarctic Peninsula heats up, the rules of life there are being ripped apart. Alarmed scientists aren't sure what all the change means for the future. <https://www.nationalgeographic.com/magazine/2018/11/antarctica-climate-change-western-peninsula-ice-melt-krill-penguin-leopard-seal/>
- Kyle R. Clem, Ryan L. Fogt, John Turner, Benjamin R. Lintner, Gareth J. Marshall, James R. Miller & James A. Renwick (2020) Record warming at the South Pole during the past three decades. Nature Climate Change volume 10, pages 762–770
- Leslie Carol Roberts (2008), The entire earth and sky : views on Antarctica ISBN: 0803216173
- NASA Knows! (Grades K-4) series (2010) What Is Antarctica? <https://www.nasa.gov/audience/forstudents/k-4/stories/nasa-knows/what-is-antarctica-k4.html>
- Nola Taylor Redd (2018) Antarctica: The Southernmost Continent, Live Science <https://www.livescience.com/21677-antarctica-facts.html>

- Richard McElrea and David Harrowfield (2004) Polar castaways : the Ross Sea Party (1914-17) of Sir Ernest Shackleton ISBN: 0773528253
- अंटार्कटिक अभियान (रजत जयंती) 2007, सम्पादन मंजुला मेहता, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 1-150
- रसिक रवींद्र (2002) अंटार्कटिक में भारतीय सर्वेक्षण के दो दशक । भारत में विज्ञान की उपलब्धियां : एक झलक। संपादक एन खरे एवं पी.सी. पाण्डेय, एनसीएओआर, गोवा, पृष्ठ 113-120
- राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा की वार्षिक रिपोर्टें ( वर्ष 1998 से लेकर वर्ष 2020 तक)
- साइंटिफिक रिपोर्ट ऑफ फर्स्ट इंडियन एक्सपीडिशन टू अंटार्कटिका (1983) टेक्निकल पब्लिकेशन न. 1 डीओडी, नई दिल्ली, पृष्ठ 1-231.

## 2. ध्रुवीय अनुसंधानों में अग्रसर भारत

डॉ. एम. रविचंद्रन

निदेशक, राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा



पृथ्वी की विविध प्राकृतिक भौगोलिक प्रक्रियाओं के संचालन में ध्रुवीय बर्फ, हिमनदों और हिमशिलाखंडों का विशेष महत्त्व माना गया है। ध्रुवीय हिमनद और हिमशिलाखंड अपनी उच्च परावर्तन क्षमता अर्थात् अल्बिडो द्वारा सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करके संपूर्ण पृथ्वी के औसत तापमान को नियंत्रित रखने का कार्य करते हैं। इसी तरह ध्रुवीय हिम और बर्फ समस्त महासागरीय धाराओं के विनियमन के साथ साथ भूमध्य-रेखीय क्षेत्रों से होकर ध्रुवों की ओर आने वाले तापमान को समस्त पृथ्वी पर पुनर्वितरित करते हैं। ध्रुवों की बर्फ में संग्रहीत मीथेन की बृहत मात्रा पृथ्वी पर हरितगृह प्रभाव को नियंत्रित करने में भी सहायक है। जीववैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी ध्रुवीय क्षेत्रों का महत्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि कुछ विशेष प्राणियों जैसे – ध्रुवीय भालू, पेंगुइन, सील व कुछ विशिष्ट मछलियों आदि के अस्तित्व के संरक्षण में ध्रुवीय बर्फ अनुकूल वातावरणीय परिस्थितियाँ उपलब्ध करवाती हैं। पृथ्वी पर बर्फ की अपार मात्रा को ध्यान में रखते हुए दोनों ध्रुवों आर्कटिक और अंटार्कटिक के अलावा हिमालय को तीसरे ध्रुव की संज्ञा दी गई है।

पृथ्वी के इन तीनों ध्रुवों में वैज्ञानिक अनुसंधानों की अपार संभावना विश्व के अनेक देशों के वैज्ञानिकों को सदियों से दिखाई देती आई है। ध्रुवीय अनुसंधानों से संबद्ध अध्ययन सदैव मानव कल्याण के लिए बेहद महत्वपूर्ण साबित हुए हैं क्योंकि इनमें महासागरीय और समुद्री प्रक्रियाओं, वैश्विक जलवायु, भू-जैविक रासायनिक चक्रों और समुद्री उत्पादकता जैसे विषयों पर शोध किए जाते हैं। इन शोधों के परिणामों के आधार पर वैश्विक जलवायु परिवर्तन, समुद्री स्तर बढ़ने, समुद्र अम्लीकरण और समुद्री संसाधनों के सतत उपयोग के कारण आई चुनौतियों से प्रभावी ढंग से निपटने में सहायता मिलती है। यही कारण है कि पिछले कई दशकों से वैश्विक जलवायु नियमन में ध्रुवों की भूमिका को समझने तथा

चरम वातावरणीय स्थितियों के अंतर्गत विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों में अनुकूलन संबंधी अध्ययनों की दिशा में वैज्ञानिकों की रुचि काफी बढ़ी है।

भारत ने भी ध्रुवीय अनुसंधान की आवश्यकता और उपयोगिता को समझते हुए वर्ष 1981 में पहला अंटार्कटिक वैज्ञानिक अभियान दल अंटार्कटिका भेजकर एक सुंदर, सार्थक और सफल पहल की थी। तब से अब तक भारत के चालीस अभियान हो गए हैं और इन सभी अभियानों के माध्यम से अंटार्कटिका में विभिन्न वैज्ञानिक शोध किए जा रहे हैं। भारत सरकार के पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के अंतर्गत आने वाला राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र आर्कटिक, अंटार्कटिक और हिमालय पर भारतीय ध्रुवीय अनुसंधानों को कार्यान्वित करवाने वाला देश का एकमात्र संस्थान है। यह संस्थान ध्रुवों की बर्फ के संग्रहण और प्रसंस्करण द्वारा सूक्ष्म जीव विज्ञान, वायुमंडलीय विज्ञान, वातावरणविज्ञान, भूविज्ञान, रसायनविज्ञान, भौतिकविज्ञान जैसी अनेक शाखाओं में शोध करवा रहा है। इस तरह के ध्रुवीय अनुसंधानों में भारत के प्रायः समस्त विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय संगठन और अनुसंधान संस्थान जैसे आईएमडी, आईआईटीएम, एसपीएल, आईआईएससी, एनआईओ-कोच्चि, एफएसआई, सीएमएफआरआई, सैक, पीआरएल, एनएचओ, केबीसीएओएस, सीएमएलआरई, एनआईओटी, और एनसीएओआर और जेएनयू, अन्नामलाई, गोवा, सीयूएसएटी, कर्नाटक और गुजरात विश्वविद्यालयों के शोधकर्ता भाग लेते हैं। अंटार्कटिका में भारतीय वैज्ञानिक अपने दो स्थाई शोध स्टेशनों मैत्री और भारती में रहकर शोध करते हैं। अंटार्कटिक अनुसंधान कार्यक्रमों में विशेष तौर पर हिमखंड अध्ययन, सुदूर संवेदन, ध्रुवीय झील अध्ययन, जलवायु परिवर्तन अध्ययन, दक्षिणी महासागर प्रक्रियाओं, विशेष आर्थिक क्षेत्र सर्वेक्षण, वैध महाद्वीपीय चट्टानों का मानचित्रण, पर्यावरण प्रभाव आकलन और सूक्ष्मजैविक जैव विविधता तथा भूजैविक रसायनशास्त्र संबंधी खोजें होती हैं। अंटार्कटिका में अब तक जीवाणुओं की लगभग 240 नई प्रजातियों की पहचान की गई है जिनमें से 30 भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई हैं। इसी तरह के शोधों में भारत ने निम्नतम तापमान पर जीवाणुओं के जीवित बने रहने के लिए उत्तरदाई जीनों का अध्ययन करके जीवाणुओं से नए जीनों की पहचान की है। इसका उपयोग जैव प्रौद्योगिकी उद्योग संबंधी अनेक लाइपेस और कम तापमान पर सक्रिय प्रोटीएजों की पहचान करने के लिए किया जा रहा है। भारत ने अंटार्कटिका के श्रीमाचेर मरुद्यान के भी विस्तृत भूवैज्ञानिक मानचित्र तैयार किए हैं। अंटार्कटिक समुद्री हिम और भू-हिम स्थलाकृति की उपग्रह आधारित पर्यवेक्षण भी जारी रहता है। भारतीय वैज्ञानिक हिमांक-मंडल को भी गहराई से समझने के लिए अंटार्कटिका में अपने अनुसंधान प्रयासों से ड्रॉनिंग मॉडलैंड में हिमनदों, बर्फ की गत्यात्मकता, ऊर्जा संतुलन एवं हिम कोर विश्लेषणों से जलवायु की पुनर्चना जैसे विषयों पर शोध कर रहे हैं। भारतीय वैज्ञानिक प्रमुख अंटार्कटिक संधि देशों - जर्मनी, इटली, फ्रांस, पोलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ मिलकर भी वहां अध्ययन कर रहे हैं। इसके अलावा, भारत ने अंटार्कटिका में कार्य करने के लिए मलेशिया, कोलंबिया, पेरू और मॉरीशस के वैज्ञानिकों को सहायता दी है।

अंटार्कटिक महाद्वीप को चारों ओर से घेरे दक्षिणी महासागर में भी भारत के अनुसंधान सन् 2004 से चल रहे हैं। दक्षिणी सागर अटलांटिक, प्रशांत और हिंद महासागरों के बीच एक सेतु के रूप में कार्य करता है। दक्षिणी महासागर अभियान के अंतर्गत दक्षिणी गोलार्ध में 33 डिग्री अक्षांश के दक्षिण में महासागरों में जटिल सागरीय प्रक्रियाओं, जैव विविधता और भूवैज्ञानिक रासायनिक प्रक्रियाओं को समझने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस क्षेत्र में विश्व के साथ भारतीय वैज्ञानिक भी प्रमुखतया वैश्विक जलवायु और पर्यावरण परिवर्तन में दक्षिणी महासागर की संवेदनशील भूमिका का अध्ययन कर रहे हैं। इन अध्ययनों के लिए प्रतिवर्ष अलग से भारत दक्षिणी महासागर के हिंद महासागर क्षेत्र के लिए अपने

बहु-विधात्मक और बहु-संस्थागत वैज्ञानिक अभियान भेजता है। दक्षिणी महासागर अभियानों में जाकर भारतीय वैज्ञानिक अंटार्कटिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में दक्षिणी महासागरीय जियोस्ट्रॉफिक और थर्मोहेलिन जैसी अन्य सभी संबंधित धाराओं की संरचना और परिवर्तनशीलता का अध्ययन अंतर वार्षिक स्तर पर करते हैं। दक्षिणी महासागर की कार्बन प्रक्रिया को समझने के लिए इसके कार्बन, नाइट्रोजन, सिलिका और लोहे के जैव रासायनिक फ्लक्सों, प्राथमिक उत्पादकता की परिवर्तनशीलता को निर्धारित और विनियमित करने वाले कारकों और मेसोस्केल विक्षोभों के बारे में भी शोध करते हैं। इनके साथ ही साथ दक्षिणी महासागर से प्राप्त तलछटों के माध्यम से विस्तृत समस्थानिकों, रासायनिक माइक्रोप्लेंटोलॉजिक अध्ययन और पुरा-जलवायु परिवर्तनों को भी समझा जा रहा है।

भारत का पहला दक्षिण ध्रुव अभियान 13 नवंबर 2010 को मैत्री से दक्षिणी ध्रुव के लिए रवाना हुआ था और 22 नवंबर, 2010 को लगभग 2400 किलोमीटर की यात्रा करके दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचा था। इस अभियान में कुल आठ सदस्य शामिल थे। इस अभियान में वैज्ञानिकों ने प्रमुख रूप से श्रीमाचेर मरुद्यान से लेकर दक्षिण ध्रुव तक वायुमंडलीय एयरोसोलों के विशेष अध्ययन के साथ साथ आर्द्रता, तापमान, वायु गति और वातावरण दबाव संबंधी कई शोध किए। यह भारतीय दक्षिण ध्रुव अभियान दल अपने सभी निर्धारित शोधों को पूरा करके 1 दिसंबर, 2010 को 'मैत्री' वापस आया था।

दक्षिण ध्रुव पर पहुंचने से तीन साल पहले भारत सन् 2007 में उत्तर ध्रुव के आर्कटिक क्षेत्र में अपना पहला अभियान दल भेज चुका था। हांलाकि इसकी नींव बहुत पुरानी पड़ी हुई थी, जब भारत ने फरवरी 1920 में आर्कटिक के साथ नार्वे, यूएस, डेनमार्क, फ्रांस, इटली, जापान, नीदरलैंड, ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैंड एवं ब्रिटिश ओवरसीज डोमिनियन्स एवं स्वीडन के बीच स्पीट्सबर्गन से संबंधित 'स्वालबार्ड संधि' पर पेरिस में हस्ताक्षर किए थे। हम कह सकते हैं कि यहां से अब भारत के कदम पृथ्वी के दोनों ध्रुवों की ओर अग्रसर हो गए। प्रथम भारतीय आर्कटिक वैज्ञानिक अभियान में कुल पांच वैज्ञानिक शामिल थे, जिन्होंने प्रारंभ में आर्कटिक सूक्ष्म जीव विज्ञान, वायुमंडलीय विज्ञान और भूविज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन शुरू किए। अगले ही वर्ष जुलाई, 2008 में भारत ने नाय-अलेसुंद, स्वालबार्ड, नार्वे में इंटरनेशनल आर्कटिक रिसर्च बेस में अपना हिमाद्री नामक अनुसंधान स्टेशन स्थापित किया है। तब से लगातार भारत आर्कटिक क्षेत्र में अपने नियमित अभियान भेज रहा है, जो हिमनदविज्ञान, पर्यावरणीय विज्ञान एवं जीव विज्ञान जैसे क्षेत्रों में अध्ययन कर रहे हैं। इन सभी के लिए नार्वे के नार्वेजियन पोलर रिसर्च इंस्टिट्यूट का विशेष सहयोग भारत को मिल रहा है। भारतीय आर्कटिक कार्यक्रमों में देश के विभिन्न राष्ट्रीय संस्थानों जैसे राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र (एनसीपीओआर), भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जीएसआई), बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान (बीएसआईपी), राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला (एनपीएल) सहित मणिपुर, शास्त्रा, बर्धवान और शान्ति निकेतन विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों ने भारतीय आर्कटिक कार्यक्रमों में अपनी सक्रिय भागीदारी बनाई हुई है। वे आर्कटिक में पर्यावरण विज्ञान, हिमनद विज्ञान, ध्रुवीय विज्ञान, भूगर्भशास्त्र जैसे विषयों पर शोध कर रहे हैं। सन् 2012 में भारत को अंतर्राष्ट्रीय आर्कटिक विज्ञान समिति (आई ए एस सी) की परिषद के लिए चुना गया था। इसके साथ ही आर्कटिक अध्ययनों में अनुसंधान करने की अपनी उत्कृष्ट छवि बनाने के कारण 1 मई, 2013 को आर्कटिक परिषद में भारत को प्रेक्षक का दर्जा भी प्रदान किया गया है। यहां भारतीय वैज्ञानिक मूल रूप से आर्कटिक क्षेत्र के हिम खंडों तथा आर्कटिक महासागर से तलछट एवं हिमकोर का विश्लेषण करके उत्तर ध्रुव क्षेत्रों की जलवायु तथा भारतीय मानसून के मध्य संबंधों का पता लगाने का प्रयास कर रहे हैं। वे उत्तर ध्रुव क्षेत्र में वैश्विक तापन के प्रभाव का अनुमान लगाने के लिए उपग्रहीय आंकड़ों के माध्यम से आर्कटिक क्षेत्र में समुद्री बर्फ के चित्रण कर रहे हैं। हिम

खंडों के समुद्र संस्तर में परिवर्तन पर प्रभाव को जानने के लिए आर्कटिक क्षेत्र के हिम खंडों की गतिकी तथा व्यापक बजट पर अनुसंधान किए जा रहे हैं। इसके साथ ही आर्कटिक क्षेत्र के जीव जंतुओं एवं वनस्पतियों तथा उन पर मानवजनित गतिविधियों के व्यापक मूल्यांकन भी जारी हैं।

इस तरह भारत दोनों ध्रुवीय क्षेत्रों में अपने स्थाई स्टेशनों - मैत्री, भारती और हिमाद्री में अंटार्कटिक और आर्कटिक क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्ययन कर रहा है। ध्रुवीय हिमाच्छादन और मोड्यूलेटिंग में ध्रुवीय क्षेत्रों की समुद्री बर्फ के महत्व पर शोध करने के लिए अब दोनों ध्रुवीय क्षेत्रों के साथ हिमालयी क्षेत्र में भी बिल्कुल नवीन विषय हिमांकमंडलीय अध्ययन शुरू किए गए हैं।

हिमालय को पृथ्वी का तीसरा ध्रुव माना जाता है क्योंकि इस क्षेत्र में अंटार्कटिक और आर्कटिक ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर सर्वाधिक बर्फ के भंडार हैं। हिमालय क्षेत्र लगभग 43 लाख वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है और यह एशिया की सबसे बड़ी पर्वतमाला है। यह भारतीय उप-महाद्वीप के मैदानी भागों को तिब्बत के पठार से अलग करती है। हिमालय पर्वतमाला में पृथ्वी के सबसे ऊंचे पर्वत शिखर समाहित हैं, जिनमें सबसे ऊंचा माउंट एवरेस्ट भी शामिल है। हिमालय क्षेत्र के अंतर्गत 100 से अधिक पर्वतमालाएं आती हैं और विश्व के 14 सर्वोच्च पर्वत शिखर इसमें स्थित हैं, जो सभी 8,000 मीटर से ऊपर ऊँचाई वाले हैं। तीसरे ध्रुव से दस बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं। इस प्रकार यह ध्रुवीय क्षेत्र भी वैश्विक पर्यावरण का महान रक्षक माना गया है। यूं तो हिमालय पर्वतमाला पांच देशों - भूटान, भारत, नेपाल, चीन गणराज्य और पाकिस्तान में फैली हैं, लेकिन इनका अधिकतर भाग भूटान और नेपाल सहित भारत में शामिल है। हिमालयी पर्वतमाला का दक्षिण भाग भारत के गंगा के मैदानी भागों में आता है और इस तरह हिमालय भारत में स्थित एक प्राचीन पर्वत श्रृंखला मानी जाती है। भारत ने 9 अक्टूबर, 2016 को हिमाचल प्रदेश के स्पीति में 4080 मीटर की ऊँचाई पर 'हिमांश' नामक अपना पहला हिमालय अनुसंधान स्टेशन स्थापित किया है। हिमालय के हिमनदों को वर्तमान जलवायु परिवर्तन के प्रमुख संकेतक के रूप में देखा जा रहा है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय तीसरे ध्रुव स्टेशन हिमांश में, विशेष रूप से चंद्रा बेसिन, पश्चिमी हिमालय में सूत्री ढाका में, हिमालय में हिमांक मंडलीय अध्ययन किए जा रहे हैं। तीसरे ध्रुव के अध्ययन में हिमालयी हिमनदों और पारिस्थितिकी के संरक्षण एवं संवर्धन तथा हिमालयी विविधताओं के आंकड़ा-आधार तैयार किए जा रहे हैं। इसके अंतर्गत हिम-बर्फ रसायनशास्त्र, हिमखंडों की वास्तविक उम्र और पुराजलवायवीय अध्ययनों द्वारा तैयार बहुकालिक आंकड़ों से हिमनदों और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का आकलन किया जा सकेगा।

इस तरह पृथ्वी के तीनों ध्रुवों ; अंटार्कटिक, आर्कटिक और हिमालय पर समग्र रूप से चल रहे भारतीय अनुसंधानों से पृथ्वी की कार्य प्रणाली के बारे में हमारी वर्तमान समझ विकसित हुई है। विशेष तौर पर वर्तमान जलवायु व मौसम विज्ञान के अध्ययन में इनकी महत्ता साबित हुई है। भारतीय ध्रुवीय शोधों ने ध्रुवों पर वायुमंडलीय प्रक्रियाओं, सौर विकिरण की प्रकृति एवं उसके संचरण, वायुमंडलीय दाब क्षेत्रों में परिवर्तन, समुद्री जलस्तर में परिवर्तनों के पूर्वानुमान, प्रमुख मौसम घटनाओं में बढ़ोत्तरी, ध्रुवीय हिम में अंतरिक्षीय उल्कापिंडों के संग्रहण, भविष्य में मंगल ग्रह के अन्वेषण में सहायक, अंटार्कटिक ओजोन परत के गंभीर क्षरण और परत को पुनःस्थापित करने के तरीकों और हिम कोर विज्ञान से पुरा-जलवायु को समझने के अलावा समुद्री नितलीय क्षेत्रों में तेल एवं गैस या अन्य प्राकृतिक संसाधनों की खोज में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रत्येक नवीन अध्ययन पिछले अध्ययन पर आधारित होता है, जिसमें अंततः वह अनुसंधान उस सीमा तक पहुंच जाता है, जहां वह व्यापक रूप से स्वीकृत तथ्य बन जाता है। भारत के ध्रुवीय अध्ययनों की ओर बढ़ रहे कदम ऐसी ही किसी स्वीकृति की वैश्विक मिसाल बनेंगे।



## संदर्भ

- अंटार्कटिक जिओसाइंस, ओशन एटमास्फियर इण्टरएक्शनएंडपेलियोक्लाइमेटोलॉजी। पुस्तक – संपादन, एस. राजन एवं पी.सी. पाण्डेय, एनसीएओआर, गोवा (पृष्ठ 1-330)
- एनसीएओआर : वर्षों के पार (2010) एनसीएओआर, गोवा (पृष्ठ 1-68)
- राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा की वार्षिक रिपोर्टें ( वर्ष 1998 से लेकर वर्ष 2020 तक)
- शुभ्रता मिश्रा (2012) भारतीय अंटार्कटिक संभार-तंत्र, प्रकाशन पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार पृष्ठ 1-390
- स्टोरी ऑफ अंटार्कटिका (2009) एनसीएओआर, गोवा (पृष्ठ 1-55)

### 3. समुद्रविज्ञान और महासागरों का अन्वेषी इतिहास

डॉ. शुभ्रता मिश्रा  
विज्ञान लेखिका, गोवा

समुद्र विज्ञान, जिसे महासागरीय विज्ञान भी कहा जाता है, भूविज्ञान की एक उपशाखा है। इसके अंतर्गत महासागरों और समुद्र का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इन अध्ययनों में महासागर के जल की प्रकृति, उसकी गहराई, तापमान एवं गति तथा महासागरीय नितल, समुद्री जीवों और पारिस्थितिकी तंत्र संबंधी अनेक विषयों का विस्तृत अध्ययन शामिल होता है। समग्ररूप में समुद्रविज्ञान को समझने के लिए पृथ्वी के समस्त महासागरों को विस्तार से जानना परम आवश्यक है। समुद्रविज्ञान के शोधों से पहले स्वयं समुद्रों और महासागरों के अन्वेषण पर विमर्श होना अधिक अर्थ रखता है। समुद्र अन्वेषण, मानव की अन्वेषण प्रवृत्ति का ही एक भाग है। मानव सभ्यता के पुरातन-कालीन इतिहास से स्पष्ट होता है कि समुद्र अन्वेषण ने पृथ्वी के वर्तमान स्वरूप के निर्माण में एक बड़ी भूमिका निभाई है। अतः समुद्रविज्ञान के विस्तृत अध्ययन में महासागरों के अन्वेषण का इतिहास और महासागरों के बारे में विस्तार से जानना बहुत महत्वपूर्ण विषय हैं।

समुद्र अन्वेषण का इतिहास दर्शाता है कि लगभग 130,000 वर्ष पहले प्रस्तरकालीन आदि-मानवों में भी समुद्रों के अन्वेषण की क्षमता थी। 4500 ईसा पूर्व यूनान और चीन के लोग भोजन, व्यापार और रक्षा संबंधी कार्यों के लिए समुद्र में गोताखोरी करते थे। 4000 ईसा पूर्व मिश्र में भी नील नदी के मुहानों तक चलाने के लिए विकसित किए गए जलयानों के प्रमाण मिलते हैं। 1800 ईसा पूर्व समुद्र की गहराई मापने में लोग सक्षम थे। 1500 ईसा पूर्व में मध्य पूर्वी लोगों ने हिंद महासागर को खोज निकाला था। 600 ईसा पूर्व फोइनिशियनों ने संपूर्ण भूमध्यसागर के चारों ओर तथा लालसागर व हिंद महासागर में समुद्री रास्ते विकसित कर लिए थे। ये लोग अफ्रीका के चारों ओर घूमते हुए पश्चिमी यूरोपीय तट के समानांतर जलयान यात्रा करते हुए इंगलैंड पहुँचे थे। 500-200 ईसा पूर्व यूनानी लोगों ने देशांतर का आकलन करने के लिए दिनों की अवधि को दृष्टिगत रखते हुए भूमध्यसागर में व्यापार मार्गों का विकास किया था। 450 ईसा पूर्व यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने भूमध्यसागरीय भाग का एक मानचित्र प्रकाशित किया था। 325 ईसा पूर्व पाइथियस नामक यूनानी खगोलशास्त्री व भूगोलवेत्ता समुद्री मार्ग द्वारा भूमध्यसागर से इंगलैंड, आइसलैंड और नार्वे पहुँचे थे। उन्होंने ही ध्रुवतारा के माध्यम से देशांतर के निर्धारण की नई विधि विकसित की थी। मिश्र में अलेक्जेंड्रिया के इरेटोसथेंस नामक वैज्ञानिक ने साइन (वर्तमान में आसवान) तथा अलेक्जेंड्रिया में छायाओं के कोणों के आधार पर पृथ्वी की परिधि का लगभग परिशुद्ध निर्धारण कर पाने में सफलता पाई थी। 150 ईसा पूर्व टोलेमी ने अक्षांश व देशांतर रेखाओं सहित रोमन संसार के मानचित्र के साथ-साथ एशिया, यूरोप और अफ्रीका महाद्वीप के अलावा उनके चारों ओर के महासागरों के मानचित्र तैयार किए थे। समुद्र का इतिहास इसी तरह अद्भुत खोजों को करते हुए दुनिया के लोगों को आइसलैंड, ग्रीनलैंड और न्यूफाउण्डलैंड जैसे पृथ्वी के भू-भागों से परिचित करवाता जा रहा था। कुछ समुद्री इतिहासकारों का मानना है कि कोलम्बस से भी 500 साल पहले सन् 1002 में लीफ एरिकसन के उत्तरी अमेरिका पहुँचा था।

सन् 1492 से 1504 के दौरान कई प्रसिद्ध समुद्र अन्वेषण हुए क्योंकि इसी दौर में क्रिस्टोफर कोलम्बस अमेरिका पहुँचे और वास्को-द-गामा ने भी सन् 1498 में अफ्रीका के चारों ओर चक्कर लगाते हुए पुर्तगाल से आकर भारत को खोजा। स्पेनिश अन्वेषक वास्को नुनेज डी बाल्बोआ ने पनामा भू-संधि को पार करके पहली बार सन् 1513 में प्रशांत महासागर के पूर्वी भाग में पहुँचकर प्रशांत महासागर की खोज की थी। पुर्तगाली समुद्र अन्वेषक फर्डिनेण्ड मे गेलेन ने 1519 से 1522 के मध्य एक स्पेनिश अभियान के तहत प्रशांत महासागर पर जलयान सर्वेक्षण किए। मे गेलेन ने ही इसे प्रशांत या

पेसिफिक महासागर नाम दिया क्योंकि उनकी पूरी समुद्रयात्रा के दौरान यह महासागर बिल्कुल शांत बना रहा था और अपनी धीर गंभीरता का परिचय दिया था।

समुद्र अन्वेषण के इतिहास में समुद्र की गहराई को जानने के लिए भी कई सफल और असफल प्रयास किए जाते रहे हैं। इसके लिए सन् 1620 में एक डच भौतिकशास्त्री और वास्तुकार कारनेलिस ड्रेबल ने विश्व की प्रथम पनडुब्बी बनाई थी। इसके भी पहले सन् 1521 में फर्डिनांड मे गेलेन ने समुद्री गहराई को नापने के लिए अपने जहाज से 700 मीटर (2300 फीट) लंबी रस्सी को समुद्र में डाला जो समुद्र के अंतिम तल तक भी नहीं पहुँच पाई थी, तो उस समय यह मान लिया गया कि समुद्र की गहराई अनंत है। सेण्ट हेलेना के व्यापारिक हवाओं के ज्ञानवर्धन में दिए गए महत्वपूर्ण योगदान को आधार बनाकर एडमण्ड हेले ने 1698-1700 के दौरान संभवतः पहली बार अटलांटिक महासागर में अधिकतम 52° दक्षिण तक चुंबकीय कंपास की विविधता के अध्ययन हेतु प्रारंभिक वैज्ञानिक समुद्री यात्रा संचालित की थी। जेम्स कुक ने 1768 से लेकर 1780 तक किए गए अपने गहन समुद्री अन्वेषण अध्ययनों के द्वारा महासागरों के दक्षिणी भाग खोजे थे। जेम्स कुक ही वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने देशांतर के निर्धारण हेतु समुद्री क्रोमीटर का उपयोग किया था। सन् 1785 में बेजामिन फ्रेंकलिन ने जलयानों के संशोधनों और गल्फ जलधारा पर “सनड्री मेराइन ऑब्जरवेशन” नामक पुस्तक लिखी थी।

पहली बार सन् 1818 में एक ब्रिटिश शोधकर्ता सर जॉन रॉस अपने एक विशेष यंत्र के माध्यम से लगभग 2000 मीटर (6550 फीट) की समुद्र गहराई में जैलीफिश और वार्म्स जैसे जीवों की उपस्थिति दर्ज की थी। इसी तरह चार्ल्स डारविन ने सन् 1831-1836 के दौरान एचएमएस बीगल जलयान पर अपनी विश्व समुद्रयात्रा द्वारा गेलापागोस और अनेक अन्य समुद्री भागों के अन्वेषणों से समुद्री जीवों के अनगिनत आँकड़े एकत्रित किए थे। सन् 1850 में लोफोटेन और मिखाइल सार्स ने अपने अन्वेषणों से बताया कि 800 मीटर (2600 फीट) गहरे समुद्र में समुद्री प्राणिजातों का भंडार भरा पड़ा है। सन् 1868 में चार्ल्स विविली थॉमसन ने जलयान एचएमएस लाइटनिंग पर किए गए अपने शोधों से 4,389 मीटर (14,400 फीट) की गहराई में भी समुद्री जीवन का पता लगाया। सन् 1872 से 1874 के दौरान ब्रिटिश वैज्ञानिकों द्वारा संचालित चैलेंजर नामक समुद्री अभियान द्वारा समुद्र के 127,653 कि.मी. क्षेत्र का अन्वेषण करके सिद्ध किया कि गहरे समुद्र में वास्तव में जैव-विविधता भरी पड़ी है। इस अभियान के दौरान लगभग 4700 समुद्री जीव-प्रजातियाँ अन्वेषित की गई थीं। वर्ष 1872 में ही अमेरिका के एक प्राकृतिक वैज्ञानिक ने भी दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के समुद्रों से लगभग 30,000 समुद्री प्रतिरूप एकत्रित किए थे। वर्ष 1890 से 1898 के दौरान जलयान एसएमएस पोला पर समुद्र अन्वेषक फ्रेंज़ स्टीनडेकनर के नेतृत्व में पूर्वी भूमध्यसागर और लालसागर में समुद्री अन्वेषण हेतु पहली बार ऑस्ट्रिया व हंगरी ने संयुक्त रूप से गहरे समुद्र अन्वेषण हेतु सफल अभियान संपादित किया था। जर्मनी ने भी पहली बार 1898-99 में कार्ल चुन के नेतृत्व में वाल्डीविया नामक जलयान पर दक्षिणी अटलांटिक महासागर के अन्वेषण हेतु अभियान भेजा था, जिसके अंतर्गत 1400 मीटर (13000 फीट) से भी अधिक समुद्री गहराई पर अनेक नवीन समुद्री प्रजातियों की उपस्थिति का पता लगाया गया था। इसी तरह वर्ष 1899 से 1905 के बीच अमेरिका के अलेक्जेंडर अगेसीज़ ने दक्षिणी प्रशांत महासागर के अन्वेषण हेतु सुदीर्घ समुद्री यात्रा की और दूरस्थ समुद्री क्षेत्रों से अनेक आँकड़े और प्रारूप एकत्रित किए थे।

बीसवीं सदी तक समुद्र अन्वेषण के क्षेत्र में जलयानों के अलावा समुद्री तकनीकी प्रणाली में बहुत अधिक आधुनिक हो गई थी। विकसित सोनार तंत्र से लेकर डीएसवी एल्विन जैसी अत्याधुनिक गहरी पनडुब्बियों ने समुद्र अन्वेषण को एक नई दिशा दी। सन् 1914 में पहली बार समुद्र के अंदर अकास्टिक अन्वेषण किया गया था। 1925 में जर्मन मीटीओर अभियान के द्वारा ईको-साउंडर के माध्यम से दक्षिणी अटलांटिक महासागर का सर्वेक्षण करते हुए सतत मध्य अटलांटिक रिज़ की प्रमाणिकता सिद्ध की गई थी। फ्रांस ने सन् 1954 में अपनी अनुसंधान पनडुब्बी एफएनआर एस-3 को पश्चिमी अफ्रीका के समुद्रों में 4041 मीटर के गहरे समुद्र तक ले जाने में सफलता पाई थी। समुद्र

अन्वेषण के इतिहास में वर्ष 1960 एक अत्यधिक महत्वपूर्ण वर्ष रहा, क्योंकि इसी साल प्रशांत महासागर में सबसे अधिकतम गहराई 10,740 मीटर में रिना ट्रेंच में अन्वेषित की गई।

राबर्ट बेलार्ड के नेतृत्व में सन् 1977 में समुद्र अन्वेषण हेतु गए एक अभियान दल ने समुद्र के अंदर हाइड्रोथर्मल निकासों का पता लगाया और साथ ही यह भी मालूम हुआ कि इन निकासी पदार्थों से उत्सर्जित रासायनिक ऊर्जा के अवशोषण द्वारा समुद्र के अंदर एक संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र के जीव रसायन संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा अपना जीवन चला रहे हैं और इसमें सूर्यप्रकाश की कोई आवश्यकता नहीं होती है। वर्ष 1992 में टोपेक्स/पोसीडान उपग्रह ने समुद्र की सतह के मानचित्रण का कार्य प्रारंभ किया और 1995 में अमेरिकी जलसेना के पृथ्वी सर्वेक्षण उपग्रह के द्वारा विश्व स्तर पर समस्त समुद्री तल आधारों के मानचित्र तैयार करने का काम संपादित किया गया। 20वीं सदी के अंत तक महासागरों के मानचित्र तैयार हो गए थे। 21वीं सदी में समुद्र अन्वेषण भू-उपग्रहों से होने लगा और अब समुद्र अन्वेषण अतिसंवेदनशील फाइबर ऑप्टिक्सों, उपग्रहों और रिमोट-संचालित रोबोटों द्वारा किया जा रहा है। सन् 2010 में समुद्री जीवों की संख्या को प्रदर्शित करने वाला प्रथम समुद्री जीव संख्या आँकड़ा आधार उनकी विविधता, बहुलता और वितरण पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डालते हुए ऑनलाइन उपलब्ध कराया गया है।

विश्व के इन अन्वेषित महासागरों एवं समुद्रों का क्षेत्रफल 367 मिलियन वर्ग किलोमीटर है। विश्व का लगभग 98 प्रतिशत जल महासागरों में समाहित है और महासागर पृथ्वी के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर फैले हुए हैं। समुद्रशास्त्रियों ने महासागरों को महाद्वीपीय विभाजन के आधार पर पाँच भागों में विभाजित किया है। यद्यपि पृथ्वी के ये समस्त महासागर आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। सन् 2000 तक चार महासागरों को मान्यता मिली हुई थी, वे थे प्रशांत, अटलांटिक, हिंद और आर्कटिक महासागर। सन् 2000 में इंटरनेशनल हाइड्रोग्राफिक आर्गेनाइजेशन ने विश्व के पाँचवें महासागर के रूप में दक्षिणी महासागर को स्वरूप प्रदान किया और उसकी सीमाओं के निर्धारण के साथ उसे विश्व मान्यता दिलाई।

प्रशांत महासागर पृथ्वी का सबसे विशालतम महासागर है। यह उत्तर में आर्कटिक से लेकर दक्षिण में दक्षिणी महासागर तक विस्तारित है। यह एशिया और आस्ट्रेलिया को अमेरिका से अलग करता है। 6.38 करोड़ वर्ग मील क्षेत्रफल के इस महासागर में पृथ्वी की जल सतह का लगभग 46 प्रतिशत भाग शामिल है। भूमध्यरेखा से इसे दो उपभागों ; उत्तरी प्रशांत व दक्षिणी प्रशांत महासागरों में विभक्त करती है। समुद्रवैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि वर्तमान में प्रशांत महासागर प्लेट टेक्टोनिक्स के कारण सिकुड़ रहा है, जबकि अटलांटिक महासागर आकार में बढ़ रहा है। प्रशांत महासागर के पश्चिमी अनियमित सीमांतों पर अनेक समुद्र समाहित हैं, जिनमें विशालतम समुद्रों में प्रमुख रूप से सेलेबस सागर, कोगल सागर, पूर्वी चीन सागर, फिलीपीन सागर, जापान के सागर, दक्षिणी चीन सागर, सुलू सागर, टैस्मान सागर और पीला सागर शामिल हैं। पश्चिम में मलाक्का जलडमरूमध्य प्रशांत और हिंद महासागरों को जोड़ता है। जबकि ट्रैक मार्ग व मैगलन लिंक जलडमरूमध्य पूर्व में प्रशांत महासागर और अटलांटिक महासागर को संयुक्त करता है। प्रशांत महासागर का जलप्रवाह उत्तरी गोलार्ध में दक्षिणावर्त है और दक्षिणी गोलार्ध में वामावर्त है।

भूवैज्ञानिक इतिहास के प्रमाणों के आधार पर ऐसा माना जाता है कि प्रशांत महासागर का उद्भव पेन्जेआ के विखंडन के साथ पेंथालेसिक महासागर से हुआ है। प्रशांत महासागर का आयतन लगभग 62.2 करोड़ घन कि.मी. है। एण्डेसाइट रेखा प्रशांत महासागर में सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रीय विभेदन को दर्शाने वाली सीमा है। यह रेखा केंद्रीय प्रशांत बेसिन की अति गहराई में फिक आग्नेय चट्टानों को इसके किनारों पर मिलने वाली फेल्सिक आग्नेय चट्टानों के आंशिक रूप से डूबे हुए महाद्वीपीय क्षेत्रों से पृथक करती है। यह रेखा केलिफोर्निया के तटवर्ती द्वीप के पश्चिमी किनारों से होते हुए एल्युटिअन आर्क के दक्षिण से गुजरकर कामचतका प्रायद्वीप के पूर्वी किनारों से होते हुए कुरिल द्वीप, जापान, में रिआना द्वीप, सोलोमन द्वीप और न्यूज़ीलैंड के उत्तरी द्वीप तक जाती है। प्रशांत महासागर के गर्भ में गहरी

द्रोणिकाएँ, जलमग्न ज्वालामुखी पर्वत और महासागरीय ज्वालामुखी द्वीप समाहित हैं। प्रशांत महासागर अपने अग्नि वलय के लिए भी विख्यात है। अग्नि वलय वास्तव में प्रशांत महासागर का वह क्षेत्र है जहाँ इसके बेसिन में असंख्य भूकंप व ज्वालामुखी पाए जाते हैं। यह क्षेत्र घोड़े की नाल के आकार का है और लगभग 40000 किलोमीटर में फैला है। इसमें लगातार महासागरीय ट्रेंच, ज्वालामुखीय आर्क और ज्वालामुखीय बेल्ट स्थित हैं और प्लेट गतिविधियाँ होती रहती हैं। अग्नि वलय में 452 ज्वालामुखी हैं। संसार के सक्रिय व प्रमुख ज्वालामुखियों का 75% प्रशांत महासागर में ही मिलता है। विश्व के लगभग 90% भूकंप प्रशांत अग्नि वलय में ही पाए गए हैं। प्रशांत महासागर में प्रमुख रूप से चार प्रकार के द्वीप पाए जाते हैं, वे हैं- महाद्वीपीय द्वीप, उच्च द्वीप, कोरल रीफ और ऊपर की ओर उठे हुए कोरल मंचनुमा द्वीप। महाद्वीपीय द्वीप अधिकांशतया एण्डेसाइट रेखा के बाहर की ओर स्थित है, जिनमें मुख्य रूप से न्यूगिनी, न्यूजीलैंड के द्वीप और फिलीपीन्स शामिल हैं। उच्च द्वीप की उत्पत्ति ज्वालामुखीय है और इनमें ज्यादातर सक्रिय ज्वालामुखी हैं। इनमें योगेनविली, हवाई और सोलोमन द्वीप प्रमुख हैं। विश्व प्रसिद्ध ग्रेट बेरियर रीफ प्रशांत महासागर में ही है।

प्रशांत महासागर के पश्चात् विश्व का दूसरा सबसे बड़ा महासागर अटलांटिक महासागर है। सन् 1870 में दो लोगों - जॉन चार्ल्स बकली और निकोला प्रिमोरेक ने पहली बार एक छोटी जीवन नौका द्वारा अटलांटिक महासागर को कार्क से बास्टॉन तक पार किया था। सन् 1919 में एक अमेरिकी-एनसी 4 विमान पहला समुद्री विमान था, जिसने अटलांटिक महासागर पार किया। सन् 1952 में एन. डेविडसन अटलांटिक महासागर पर जलयान चलाने वाली प्रथम महिला बनीं। अटलांटिक महासागर पृथ्वी की सतह का लगभग 22% भाग घेरे हुए है। इसका क्षेत्रफल लगभग 106,400 वर्ग कि.मी. है। अटलांटिक महासागर पश्चिम में उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका द्वारा घिरा है और यह डेनमार्क जलडमरूमध्य, ग्रीनलैंड सागर, नार्वेजियन सागर और बेरेण्ट्स सागर के द्वारा आर्कटिक महासागर से जुड़ा हुआ है। यह पूर्व में यूरोप से घिरा है और जिब्राल्टर जलडमरूमध्य के माध्यम से भूमध्यसागर से संयुक्त है, काला सागर द्वारा यह एशिया को भी छूता है और पूर्व में ही अफ्रीका को भी स्पर्श करता है। दक्षिण पूर्व में अटलांटिक महासागर हिंद महासागर में समाहित होता प्रतीत होता है। दक्षिण पश्चिम में ड्रेक मार्ग इसे प्रशांत महासागर से जोड़ता है जबकि पनामा नहर भी अटलांटिक महासागर व प्रशांत महासागर को आपस में जोड़ती है। इनके अलावा अटलांटिक महासागर से संलग्न अन्य बड़े समुद्रों में कैरेबियन सागर, मेंक्सिको की खाड़ी, हडसन खाड़ी, भूमध्य सागर, उत्तर सागर, बाल्टिक सागर और केल्टिक सागर भी प्रमुख हैं। भूमध्य रेखा अटलांटिक महासागर को उत्तरी व दक्षिणी अटलांटिक महासागरों में विभक्त करती है। अटलांटिक महासागर अपने अंतर्जलीय पर्वतों के स्वरूप के लिए विश्व विख्यात है। अटलांटिक महासागर में मिलने वाली पर्वत श्रृंखला को मध्य-अटलांटिक रिज के नाम से जाना जाता है। मध्य अटलांटिक रिज अटलांटिक महासागर को 3,700 से लेकर 5,500 मीटर की गहराइयों वाली दो बड़ी बड़ी द्रोणियों में विभक्त करता है। महाद्वीप के मध्य स्थित अनुप्रस्थ रिजों और मध्य अटलांटिक रिज के कारण अटलांटिक महासागर का समुद्रतल अनेक बेसिनों में विभक्त हो गया है। इनमें से प्रमुख बड़े बेसिन हैं - ब्लेक बेसिन, गुआना, उत्तरी अमेरिका बेसिन केप वरडे और उत्तरी अटलांटिक में केनेरीज़ बेसिन। बड़े दक्षिणी अटलांटिक बेसिनों में अंगोला, केप, अर्जेन्टिना और ब्राजील के बेसिन शामिल हैं। अटलांटिक महासागर का गहरा समुद्रतल वितलीय मैदानों, ट्रेंचों, समुद्री पर्वतों, बेसिनों, पठारों, घाटियों से भरा पड़ा है। उत्तरी अटलांटिक में प्यूरटोरिकौ ट्रेंच सबसे गहरा ट्रेंच है, जिसकी गहराई 8605 मीटर है। इसके अलावा अटलांटिक महासागर के दो और प्रसिद्ध ट्रेंच दक्षिण सेंडविच ट्रेंच (8428 मीटर) तथा भूमध्यरेखा पर स्थित रोमांच ट्रेंच (7454 मीटर) हैं। प्रायः अक्टूबर से जून के दौरान अटलांटिक महासागर के लेब्राडोर सागर, डेनमार्क जलडमरूमध्य और बाल्टिक सागर में समुद्र सतह समुद्री बर्फ से आच्छादित हो जाती है। इस अवधि में उत्तरी अटलांटिक में दक्षिणावर्त गर्मजलचक्र पाया जाता है, जबकि दक्षिणी अटलांटिक में वामावर्त गर्मजलचक्र मिलता है। अटलांटिक महासागर के अंतर्गत आने वाले प्रमुख सागरों में नार्वेजियन सागर, बाल्टिक सागर, उत्तरी सागर, लेब्राडोर सागर, काला सागर, सेंटलारेंस खाड़ी, फंड का खाड़ी, मेनखाड़ी, भूमध्यसागर, मेक्सिको की खाड़ी और

केरेबियन सागर शामिल हैं। अटलांटिक महासागर में मिलने वाले द्वीप में प्रमुखतया न्यूफाउण्डलैंड, ग्रीनलैंड, आइसलैंड, फारोद्वीप, ग्रेटब्रिटेन, आयरलैंड, रॉकाल, सेबल द्वीप, एजोर्स, सेंट पियरेएंडमिकेलोन, मेडेरिया, बरमुडा, केनरी द्वीप, कैरेबियन, दक्षिण जार्जिया द्वीप, दक्षिण सैंडविच द्वीप आदि आते हैं। दुनिया में समुद्री दुर्घटनाओं के लिए प्रसिद्ध बरमुडा ट्रांगल अटलांटिक महासागर में ही है, जो अब तक रहस्य का विषय बना हुआ है।

विश्व का तीसरा बड़ा महासागर हिंद महासागर है। दुनिया की प्राचीन मानव सभ्यताएँ जैसे मेसोपोटामिया, प्राचीन मिश्र और सिंधु घाटी सभ्यताएँ हिंद महासागर के चारों ओर ही विकसित हुई हैं। पहली या दूसरी शताब्दी में यूडोक्सस ऑफ साइजिकस पहला मिश्र समुद्रअन्वेषक था, जिसने हिंद महासागर को पार किया था। हिंद महासागर में पृथ्वी की सतह का लगभग 20% जल शामिल है। यह उत्तर में एशिया द्वारा घिरा हुआ है। भारत हिंद महासागर में ही आता है और इस महासागर के हिंद नाम के पीछे भारत का अरबी में लिया जाने वाला नाम हिन्दोस्तां शब्द ही है। भारत के अलावा इरान, पाकिस्तान, बंगलादेश राष्ट्र भी हिंद महासागर में आते हैं। हिंद महासागर पश्चिम में पूर्वी प्रायद्वीप और अफ्रीका से, पूर्व में इण्डोचीन, सुण्डाद्वीप, मलेशिया, ऑस्ट्रेलिया से उत्तर में भारतीय उपमहाद्वीप से और दक्षिण में दक्षिणी महासागर से घिरा हुआ है। दक्षिण पश्चिम में यह अटलांटिक महासागर से और पूर्व व दक्षिण पूर्व में प्रशांत महासागर से जुड़ा हुआ है। सन् 2000 में इंटरनेशनल हाइड्रोग्राफिक आर्गेनाइजेशन द्वारा पाँचवे महासागर दक्षिणी महासागर की सीमाओं के निर्धारण के समय हिंद महासागर के 60° दक्षिण के भाग को अलग करके दक्षिणी महासागर से जोड़ दिया गया है। हिंद महासागर के स्वरूप की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका अधिकांश भाग दक्षिणी गोलार्ध में आता है। प्रशांत व अटलांटिक महासागरों से यह अपने आकार के कारण भिन्नता प्रदर्शित करता है क्योंकि यह उत्तर में भूभाग से घिरा है और इसलिए यह कर्क रेखा से परे भी फैला हुआ है। उत्तर पूर्व भाग को छोड़कर, उसके शेष किनारों में गोंडवाना के अवशेष शामिल हैं अर्थात् हिंद महासागर के इन भागों में अफ्रीका, अरब, दक्षिण व पश्चिम आस्ट्रेलिया के प्राचीन पठार शामिल हैं। हिंद महासागर का आयतन 292,131,000 घन कि.मी. है। अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के दक्षिणी छोरों पर हिंद महासागर की चौड़ाई लगभग 10,000 कि.मी. है और लाल सागर व परसियन खाड़ी को मिलाकर इसका क्षेत्रफल लगभग 73,556,000 वर्ग कि.मी. है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कोरल रीफ जैसे फ्रिजिंग रीफ, बेरियर रीफ और एटोल हिंद महासागर के महाद्वीपीय मग्नतटों पर पाए जाते हैं। हिंद महासागर के महाद्वीपीय मग्नतट अपनी अनेक समुद्र निमज्ज घाटियों व दर्रों और अनेक पर्वतश्रेणियों के लिए विख्यात है। हिंद महासागर के उत्तर पश्चिम भाग में मोड़दार पर्वतश्रेणियों की श्रृंखला इसको एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है। हिंद महासागर में पाई जाने वाली इन समस्त पर्वत श्रृंखलाओं के कारण संपूर्ण महासागर को तीन विशिष्ट भागों में बाँटा जा सकता है – (1) अफ्रीकी भाग, (2) आस्ट्रेलियाई भाग तथा (3) दक्षिणी महासागर के माध्यम से अंटार्कटिका से संलग्न भाग। हिंद महासागर में समुद्रतल पर अनेक ट्रेंच भी हैं, जिनमें पूर्वी हिंद ट्रेंच, चागोस तथा एमेरेण्टे ट्रेंच प्रमुख हैं। हिंद महासागर के महासागरीय तल का लगभग 50% भाग चौड़े व समतल गहरे-समुद्री मैदानों के रूप में है, जिसकी गहराई 4000 से 6000 मीटर की सीमा में है। बँगाल की खाड़ी में स्थित अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह अरकान योमा समुद्री पर्वत की बाहरी श्रेणियों पर स्थित है। लक्षद्वीप व मालदीव कोरल द्वीप हैं, जो अरब सागर में स्थित हैं। मेडागास्कर के पूर्व में मॉरीशस व रीयूनियन नामक दो मात्र ऐसे द्वीप हैं, जो गहरे ढलाव के साथ साथ वास्तव में ज्वालामुखीय शंकु हैं। हिंद महासागर के पूर्वी भाग में द्वीप की कमी के कारण महासागरीय तल एक समान रूप से गहरा है। सामान्यतया हिंद महासागर का तटीय क्षेत्र पठारीय है। अतः इसमें मिलने वाले सीमांतिय समुद्र भी कम हैं। हिंद महासागर कृत्रिम रूप से लाल सागर के मार्ग से प्रवेश करते हुए स्वेज नहर के माध्यम से भूमध्यसागर से जुड़ा हुआ है।

विश्व का चौथा महासागर आर्कटिक महासागर है। एफ. नेन्सन ने सन् 1896 में पहली बार आर्कटिक महासागर को पार किया था। इसी तरह सन् 1969 में वेली हरबर्ट ने आर्कटिक महासागर की सतह को पहली बार पार किया था। आर्कटिक महासागर दुनिया का सबसे छोटा और उथला महासागर है, जो

कि दक्षिणी गोलार्ध में प्रमुखतया आर्कटिक उत्तर ध्रुव क्षेत्र में स्थित है। इंटरनेशनल हाइड्रोग्राफिक आर्गेनाइजेशन (आईएचओ) ने इसे आर्कटिक महासागर के रूप में मान्यता प्रदान की है। आर्कटिक महासागर चारों ओर से पूर्णतया यूरोशिया व उत्तरी अमेरिका से घिरा हुआ है। पूरे वर्ष भर यह महासागर आँशिक रूप से 1 से 10 मीटर मोटाई की समुद्री हिम द्वारा आच्छादित रहता है। आर्कटिक में प्रवाही हिमपुँज दो रूपों में पाए जाते हैं। एक स्थाई बहुवर्षीय हिमपुँज और दूसरे शीतकालीन वार्षिक हिमपुँज। शीतकालीन वार्षिक हिमपुँज वार्षिक बर्फ से बने होते हैं, जो वसंत ऋतु में पिघल जाते हैं और शीतकाल में पुनः जम जाते हैं। वार्षिक हिम की मोटाई शीतकाल के चरम पर लगभग 2 मीटर हो जाती है। इस तरह की बर्फ सितंबर के मध्य में बनना शुरू होने लगती है और अक्टूबर के अंत तक द्वीप के तटों के समानांतर सख्त हिम के रूप में जमा हो जाती है। ग्रीष्मकाल आने पर यह वार्षिक बर्फ पिघलना शुरू हो जाता है। स्थायी बहुवर्षीय हिमपुँज पूरे वर्ष भर जमे रहते हैं। यहाँ तक कि ग्रीष्मकाल में भी नहीं पिघलते। आर्कटिक महासागर ऊबड़ खाबड़ वृत्ताकार बेसिन से भरा हुआ है और इसका क्षेत्रफल 14,056,000 वर्ग किलोमीटर है। इसकी तटरेखा 45,390 कि.मी. लंबी है। यह यूरोशिया के भूखंडों, उत्तरी अमेरिका, ग्रीनलैंड और अनेक द्वीप द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। आर्कटिक बेसिन ब्यूफोर्ट समुद्र के उत्तरी भाग में स्थायी हिमपुँज के सीमांतों से लेकर ग्रीनलैंड के उत्तरी छोर तक फैला हुआ है। यह क्वीन एलिजाबेथ द्वीप के उत्तरी सीमांत से लेकर एलेसमियर द्वीप के अंतिम छोर तक भी विस्तारित है। आर्कटिक महासागर में बाफिन खाड़ी, बेरेण्ट्स सागर, ब्यूफोर्ट सागर, चुकची सागर, पूर्व साइबेरियाई सागर, ग्रीनलैंड सागर, हडसन खाड़ी, हडसन जलडमरूमध्य, कारा सागर, लापटेव सागर, श्वेत सागर और जल के अन्य सहायक निकाय शामिल हैं। यह बेरिंग जलडमरूमध्य द्वारा प्रशांत महासागर से और ग्रीनलैंड सागर व लेब्रेडोर सागर के माध्यम से अटलांटिक महासागर से जुड़ा हुआ है। आर्कटिक महासागर के अंतर्जलीय स्वरूप भी रिजों से भरपूर हैं। आर्कटिक महासागर की औसत गहराई 1,038 मीटर है। सबसे गहरी बिंदु यूरोशियन बेसिन में 5,450 मीटर गहराई पर स्थित है।

विश्व महासागरों में अंतिम दक्षिणी महासागर है। दक्षिणी महासागर की जलीय सीमाओं को निर्धारित करते हुए इंटरनेशनल हाइड्रोग्राफिक आर्गेनाइजेशन (आईएचओ) ने अटलांटिक महासागर, हिंद महासागर तथा प्रशांत महासागर के दक्षिणी भागों को मिलाकर इसकी रचना की है। सन् 2000 में आईएचओ ने दक्षिणी महासागर के स्वरूप के अस्तित्व के लिए एक सर्वेक्षण करवाया। आईएचओ में शामिल कुल 68 राष्ट्रों में से 28 ने दक्षिणी महासागर के अस्तित्व के पक्ष में अपना समर्थन दिया। इसी तरह से जब इसके दक्षिणी महासागर नामकरण हेतु प्रस्ताव रखा गया, तो 18 वोटों से इस नाम को भी स्वीकृति मिली। दक्षिणी महासागर अंटार्कटिक महाद्वीप को घेरे हुए 60° दक्षिण अक्षांश तक फैला है। प्रायः तो दक्षिणी महासागर 4000 से 5000 मीटर तक गहरा है, केवल कुछ सीमित क्षेत्रों पर ही इसका जल उथला है। दक्षिणी महासागर की अधिकतम गहराई 7236 मीटर मापी गई है, जो 60° दक्षिण व 24° पश्चिम पर साउथ सैंडविच ट्रेंच के दक्षिणी छोर में स्थित है। दक्षिणी महासागर पूर्णतया दक्षिणी गोलार्ध में स्थित है। दक्षिणी महासागर के अंतर्गत ड्रेक मार्ग का अंटार्कटिक परिध्रुवीय प्रवाह, स्कोशिया सागर, वेडेल सागर, किंग हेकान VII सागर, लाज़ारेव सागर, राइज़र-लार्सेन सागर, कास्मोनाट सागर, कोआपेरेशन सागर, डेविस सागर, मॉसन सागर, डी'उरविले सागर, सोमोव सागर, रॉस सागर, अमण्डसेन सागर, बेलिंगशॉसेन सागर शामिल हैं। दक्षिणी महासागर के अंदर भी अन्य महासागरों की भाँति महासागरीय बेसिन, पर्वत श्रृंखलाएँ, ट्रेंच, वितलीय मैदान पाए जाते हैं। दक्षिणी महासागर वेमा चैनल के माध्यम से अटलांटिक महासागर से जुड़ा है। इसी तरह क्रोजेट-करगुएलेन गेप द्वारा यह हिंद महासागर से जुड़ा है।

इन पांचों महासागरों में दस लाख से भी अधिक विविध जैव प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इन विशाल महासागरों की अथाह जलराशि सूर्य से आने वाली ऊष्मा के एक बड़े भाग को अवशोषित कर लेती है। महासागरों में कार्बन अवशोषण की भी अद्भुत क्षमता होती है पर्यावरण संतुलन के कारण जिसके माने नियंत्रक प्राकृतिक के जाते हैं सर्वाधिक गहराई की। महासागरों वाले क्षेत्रों में काले मैगनीज,

सोना, तांबा, मोलिब्डेनम, जस्ता, निकेल, टिन, लोहा आदि जैसी धातुओं के प्रचुर भंडार भरे पड़े हैं।

विश्व महासागरों में समुद्र के भीतर की प्रक्रियाओं को समझने के लिए समुद्रविज्ञान का विज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ गहरा संबंध होता है जिनमें खगोल विज्ञान, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, जलवायुविज्ञान, भूगोल, भूविज्ञान, जल विज्ञान, मौसम विज्ञान और भौतिकी आदि हैं। अतः समग्र रूप में समुद्रविज्ञान इन समस्त विषयों का मिश्रण है। स्पष्ट है कि समुद्र विज्ञान के अध्ययन के लिए समुद्र विज्ञान के विभिन्न विषयों का अध्ययन भी उतना ही आवश्यक है, अतः समुद्रविज्ञान एक अंतर्विषयक विज्ञान है जो समस्त वैज्ञानिक शाखाओं के सिद्धांतों को एकीकृत करता है। समुद्रविज्ञान के अध्ययन के लिए विश्व में प्रथम इंटरनेशनल आर्गेनाइजेशन ऑफ ओशिनोग्राफी का निर्माण इंटरनेशनल काउंसिल फॉर एक्सप्लोरेशन ऑफ द सी के रूप में सन् 1902 किया गया था। इसके तुरंत बाद ही सन् 1903 में स्क्रिप्स इन्सटिट्यूट ऑफ ओशिनोग्राफी, सेन डियागो, कैलीफोर्निया की स्थापना हुई। सन् 1930 में वुड्स होल ओशिनोग्राफिक इन्सटिट्यूशन, वुड्स होल, मैसाचुसेट्स, संयुक्त राज्य अमरीका और 1938 में वर्जीनिया इन्सटिट्यूट ऑफ मेरीन साइंस स्थापित किए गए। इसके बाद कोलंबिया यूनिवर्सिटी में लेमॉण्ट-डोहरटी अर्थ ऑब्ज़रवेटरी और यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन में स्कूल ऑफ ओशिनोग्राफी की स्थापना की गई। इनके अलावा, ब्रिटेन में नेशनल ओशिनोग्राफी सेंटर, साउथेम्प्टन तथा ऑस्ट्रेलिया में सीएसआईआरओ में रीन एंड एटमास्फेरिक रिसर्च भी समुद्रविज्ञान अध्ययन के प्रमुख केंद्र हैं। सन् 1921 में इंटरनेशनल हाइड्रोग्राफिक ब्यूरो का गठन मोनाको में किया गया था।

वर्तमान में अनेक ऐसे ज्वलंत वैज्ञानिक विषय जैसे गैस हाइड्रेट्स, पर्यावरण प्रभाव आकलन मूल्यांकन, बहु-धात्विक पिंडिका, अनन्य आर्थिक क्षेत्र (ईईजेड) आदि के अलावा आधारभूत समुद्रवैज्ञानिक विषय जैसे समुद्री प्रेक्षण, समुद्र विज्ञान तथा सेवाएं, समुद्री सर्वेक्षण तथा खनिज संसाधन, समुद्र प्रौद्योगिकी जलयान हैं, जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध महासागरों तथा समुद्रविज्ञान से है। अतः इन विषयों से संबद्ध तथा समुद्री अनुसंधान तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए भारत में भी विभिन्न समुद्र-वैज्ञानिक संस्थानों में अलग-अलग शोधकार्य हो रहे हैं। भारत में प्रमुख समुद्री संस्थान राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा, राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा, भारतीय राष्ट्रीय महासागर सूचना सेवा केंद्र, हैदराबाद, राष्ट्रीय महासागर प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नै, एकीकृत तटीय एवं समुद्री क्षेत्र प्रबंधन परियोजना निदेशालय, चेन्नै, और समुद्री जीवित संसाधन और पारिस्थितिकीय केंद्र, कोच्चि हैं।

कुछ अति विशिष्ट समुद्रवैज्ञानिक कार्यक्रमों के साथ साथ विभिन्न भारतीय समुद्र-वैज्ञानिक संस्थानों में समुद्री आपदा पूर्व चेतावनी सहायता, चक्रवात पूर्वानुमान, भूकंप प्रेक्षण, पूर्वानुमान और प्रशमन, पूर्वानुमान प्रदर्शन, मानसून परिवर्तनीयता, तूफान महोर्मि, सुनामी चेतावनी प्रणाली, समुद्री प्रेक्षण प्रणाली, समुद्र विज्ञान व समुद्री सेवाएं, समुद्री रंग अनुसंधान, समुद्री मॉडलिंग, समुद्री प्रेक्षण प्रणाली, समुद्री सर्वेक्षण संसाधन और प्रौद्योगिकी, गहरा समुद्र-प्रौद्योगिकी विकास, एकीकृत गहरा समुद्र खनन प्रणाली का विकास, एकीकृत महासागर वेधन कार्यक्रम (आईओडीपी), प्रौद्योगिकी प्रदर्शित जलयानों की आरम्भण, समुद्री सेंसरों, इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों और समुद्री ध्वानिकी यंत्रों की स्थापना, समुद्री ऊर्जा के दोहन का अध्ययन, अपतटीय अवसंरचनाओं एवम् समुद्र संस्तर खनिजों के अध्ययन तटीय और समुद्री परिप्रणाली विषयों पर गंभीर रूप से अनुसंधान कार्य व अध्ययन चल रहे हैं।



हमारे जीवन में महासागरों की महत्वपूर्ण भूमिका और उनकी सुरक्षा और समुद्री संसाधनों के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए वर्ष 2008 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 8 जून को विश्व महासागर दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया है।

### संदर्भ

- Emily A. et.al., (2019) An introduction to the 'Oceans and Society: Blue Planet' initiative. Journal of Operational Oceanography <https://doi.org/10.1080/1755876X.2019.1634959>
- डीकॉन, जी.ई.आर., 1964. इंटरनेशनल इंडियन ओशन एक्सपीडीशन। नेचर 201:561-562.
- देसाई, बी.एन.एंडएम. कृष्णन कुट्टी, (1967) अ कम्पेरिज़न ऑफ़ द मेरीन एंड एस्चुरीन बेथिक फोना ऑफ़ द नियर शोर रीजन्स ऑफ़ द अरेबियन सी। आईबिड IV (4); 11
- पीटरसन, बी.एंडएन. सिर. (2010) द रोल ऑफ़ आईओसी इन प्रमोटिंग कोआपरेटिव रिसर्च ऑन मेरीन इकोसिस्टम्स एंड लिविंग मेरीन रिसोर्सेस। ओशिनोग्राफी 23(3):62-71, डीओआई:10.5670/ओशिनोग.2010.24.
- राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान (एनआईओ), गोवा की वार्षिक रिपोर्ट 1965-66.
- राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान (एनआईओ), गोवा की वार्षिक रिपोर्ट 1966-67.
- शुभ्रता मिश्रा (2017) अंतर-राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान स्वर्णिम पचास वर्ष। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित। (पृष्ठ 1-142)
- हुड आर. एंड एन. डी'अडेमो, (2013) इंटरनेशनल इंडियन ओशन एक्सपीडीशन 50 एनिवर्सरी इनिशिएटिव (आईआईओई-2)। मीटिंग नोट्स फ्राम द आईआईओई-2 रिफेरेंस ग्रुप मीटिंग न. 1, हैदराबाद, इण्डिया, 14-15 मई 2013।

## 4 . हिमालय के हिमनदों और जलवायु परिवर्तन और हिमनद स्वास्थ्य

परमानंद शर्मा\* और लवकुश पटेल

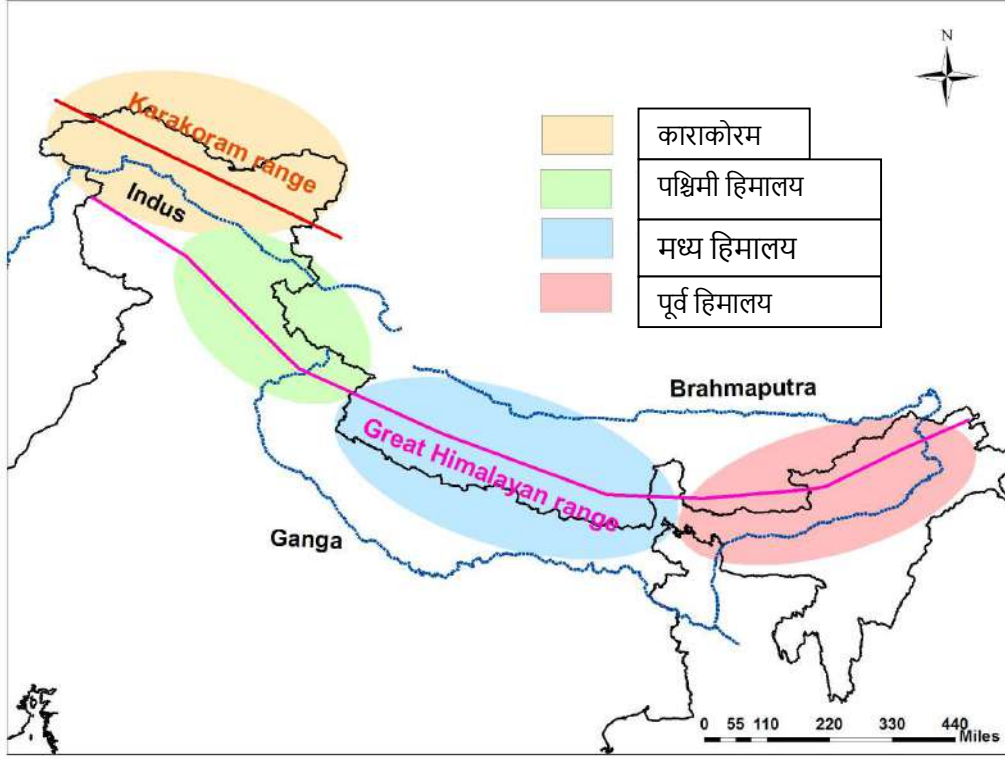
राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा



### परिचय

'हिमालय' संस्कृत के 'हिम' तथा 'आलय' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ 'बर्फ का घर' होता है। हिमालय एक युवा और विवर्तनिक रूप से सक्रिय, सबसे अधिक आबादी वाला पर्वत पारिस्थितिकी तंत्र है एवं इस पर पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों के बाद सबसे ज्यादा बर्फ पाई जाती है। हिंदू-कुश हिमालय क्षेत्र को विश्व का तीसरा ध्रुव (थर्डपोल) माना जाता है तथा यह जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से अत्यंत सुभेद्य है। बर्फ तापमान परिवर्तन के लिए बहुत ही संवेदनशील है, चूंकि हिमालय का एक बड़ा हिस्सा बर्फ से आच्छादित है, जलवायु परिवर्तन की वजह से काफी प्रभावित हुआ है। पृथ्वी की सतह का वह भू-भाग जहाँ हिमनद (ग्लेशियर), मौसमी बर्फ, झील और नदी बर्फ, पर्माफ्रॉस्ट, महाद्वीपीय बर्फ की चादरें, समुद्री बर्फ आदि रहता है, वह क्रायोस्फीयर कहलाता है। क्रायोस्फीयर पृथ्वी के सतह क्षेत्र (68 मिलियनवर्गकिमी) का एक महत्वपूर्ण हिस्सा (13%) है (Barry and Gan, 2011; Ohmura, 2014; Ohmura, 2014) और सतह ऊर्जा बजट, तापमान, जलचक्र आदि को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित एवं नियंत्रित कर पृथ्वी की जलवायु प्रणाली में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिमालयन क्रायोस्फीयर का जलवायु के नियंत्रण में काफी महत्व है और हिमनद जलवायु परिवर्तन के सूचक के तौर पर माने जाते हैं। हिमालयन क्रायोस्फीयर में दुनिया की सबसे बड़ी और उच्चतम ग्लेशियर प्रणाली पाई जाती है और दक्षिण एशिया की अधिकांश बारहमासी नदी का उदगम स्रोत है और इसे एशिया के "वाटरटॉवर" के रूप में जाना जाता है। हिमनद, हिमालयी क्रायोस्फीयर का एक महत्वपूर्ण घटक है जो 33,000 वर्ग किमी क्षेत्र (Dyurgerov & Meier, 2005; Rai & Gurung, 2005) में फैला है और केवल भारत ही नहीं बल्कि पूरे एशिया के लिए प्रमुख नदी प्रणाली के संसाधन हैं। इन हिमनदों का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि ये वर्ष भर बहने वाली हिमालयी नदियों के स्रोत हैं। हिमनद हिंदू-कुश-हिमालय (HKH) क्षेत्र में लगभग 1.9 बिलियन आबादी के लिए पीने के पानी, सिंचाई और जलविद्युत उत्पादन के लिए प्रमुख जल संसाधनों में से एक हैं (Immerzeel et al, 2019; Bolch et al, 2012, ICMOD रिपोर्ट, 2019); परंतु वैश्विक

औसत की तुलना में तेज दर से कम हो रहे हैं (Rathore et al, 2018; Negi et al, 2018)। ग्लेशियर जलवायु परिवर्तन के बहुत संवेदनशील संकेतक हैं और थर्मामीटर की तरह काम करते हैं, इन ग्लेशियरों का स्वास्थ्य उनकी जलवायु के प्रति प्रतिक्रिया के महत्वपूर्ण संकेत देता है। जलवायु क्षेत्र जहां जलवायु परिवर्तन के संकेत स्पष्ट नहीं हैं, ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन, लंबाई और क्षेत्रफल में परिवर्तन आदि जलवायु संकेतक के रूप में उपयोग करते हैं (Roy & Balling, 2005; Yadav et al., 2004)। ग्लेशियर ग्लोबल वार्मिंग, वायुमंडलीय परिवर्तनों और मानव जनित गतिविधियों के बारे में सुरागों का खुलासा करता है, इसलिए हिमालय के ग्लेशियरों का उपयोग जलवायु परिवर्तन के प्रमुख संकेतक के रूप में किया जा सकता है। वैश्विक तापमान कई दशकों से हिमालय ग्लेशियरों (हिमनद) को प्रभावित कर रहा है एवं जलवायु परिवर्तन न केवल हिमालय क्षेत्र के अधिकांश ग्लेशियर के स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है, बल्कि हिमालय के उच्चपर्वतीय क्षेत्र में पानी की सतत/लगातार आपूर्ति के लिए भी खतरा पैदा कर रहा है (Beniston 2003; Cruz et al. 2007)। ग्लेशियरों की तेजी से कमी का सबसे व्यापक प्रभाव भविष्य में निचले क्षेत्र में पानी की आपूर्ति पर पड़ेगा (Yao et al. 2004; Barnett et al. 2005; IPCC 2007b; Nogues-Bravo et al. 2007)। हिमनदों के अलावा, हिम-आवरण, पर्माफ्रॉस्ट और हिमनदी झीलें हिमालय क्रायोस्फीयर के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र घेरती हैं। भारत में हिमालय का फैलाव क्षेत्र काफी विशाल है और विभिन्न भौगोलिक और जलवायु क्षेत्रों में बंटा हुआ है। यह पर्वत तंत्र मुख्य रूप से तीन समानांतर श्रेणियां- महान हिमालय, मध्य-हिमालय और शिवालिक से मिलकर बना है जो पश्चिम से पूर्व की ओर एक चाप की आकृति में लगभग 2400 कि॰मी॰की लंबाई में फैली हैं। [2] इस चाप का उभार दक्षिण की ओर अर्थात् उत्तरी भारत के मैदान की ओर है और केंद्र तिब्बत के पठार की ओर है। इन तीन मुख्य श्रेणियों के अलावा चौथी और सबसे उत्तरी श्रेणी को पराहिमालय या ट्रांसहिमालय कहा जाता है जिसमें कराकोरम तथा कैलाश श्रेणियाँ शामिल हैं। हिमालय-पर्वत 7 देशों की सीमाओं में फैला है। ये देश हैं- पाकिस्तान, अफगानिस्तान, भारत, नेपाल, भूटान, चीन और म्यांमार। हिमालय भारतीय उपमहाद्वीप के मानसून जलवायु को काफी प्रभावित करता है और भारत-गंगा के मैदानी इलाकों के मौसम को विशेष रूप से भी नियंत्रित करता है। यह आम तौर पर उष्णकटिबंधीय मानसूनी जलवायु से युक्त होता है, जिसमें कुछ भाग अर्ध-शुष्क और आर्द्रस्थिति वाले होते हैं और क्रमशः पश्चिमोत्तर और उत्तरी क्षेत्रों में पश्चिमी विक्षोभ का प्रभाव डालते हैं। हिमालय में पिछले दो दशकों के दौरान हवा के तापमान में 2.2 ° C की वृद्धि हुई है जो पूरी शताब्दी के लिए 1.7 ° C से बहुत अधिक है (Bajracharya et al, 2011; Frey et al, 2014)। हाँलाकि वैश्विक औसत तापमान भी 0.3-0.6°C (IPCC) के बीच बढ़ गया है, परंतु हिमालयन क्षेत्र में तापमान की वृद्धि महत्वपूर्ण है। एक हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया है कि अगर वैश्विक तापमान 1.5 डिग्रीसेल्सियस [Bolch et al, 2012; Sattar et al, 2019] के आसपास रहता है तो एचकेएच तापमान वैश्विक औसत से अधिक 0.3 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाएगा। हाल के बहुत सारे अध्ययन भी हिमालय में अत्यधिक गर्म घटनाओं में महत्वपूर्ण वृद्धि दिखा रहे हैं। हिमालय के ग्लेशियरों के तेजी से पीछे हटने से पानी से संबंधित खतरों, जैसे ग्लेशियर झील टूटने से उत्पन्न बाढ़, गरमी के मौसम के दौरान ताजे पानी की आपूर्ति में गिरावट आदि की घटनाएं बढ़ जाएंगी। आगे आने वाले दशकों में जलवायु परिवर्तन से इन पहाड़ों पर नदी के प्रवाह, भूजल पुनर्भरण, प्राकृतिक खतरों, जैव-विविधता, पारिस्थितिकी तंत्र और मानव आजीविका पर अतिरिक्त नकारात्मक प्रभाव पड़ने की संभावना है (Nijssen et al. 2001; Parmesan 2006; Bates et al. 2008; Ma et al. 2009)। यह हिंदूकुश-हिमालयी क्षेत्र से नीचे नदी की प्रमुख घाटियों में रहने वाले 1.9 बिलियन से अधिक लोगों की भेद्यता को कम करने की चुनौती है। पर्यावरण परिवर्तन के एक चालक के रूप में जलवायु परिवर्तन का अत्यधिक महत्व, हिमालयी बेसिन में ग्लेशियर स्वास्थ्य को संबोधित करना महत्वपूर्ण बनाता है।



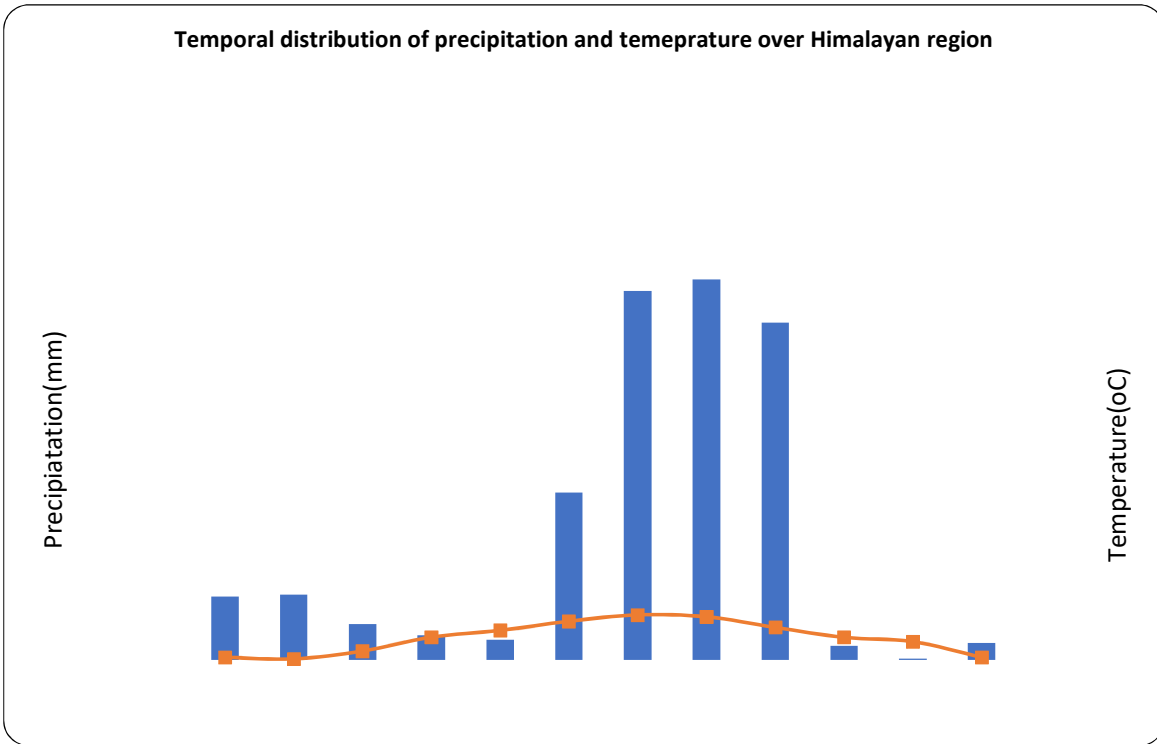
चित्र 1. हिमालय का हिमनदों से आच्छादित क्षेत्र (थर्डपोल)

### हिमालयी-जलवायु

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के बाद सबसे अधिक बर्फ का इलाका होने के कारण हिमालय को तीसरा ध्रुव भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। हिमालय काफी जटिल एवं विशाल है तथा विभिन्न प्रकार का जलवायु पाया जाता है (परिवर्तनशीलता प्रदर्शित करता है)। हिमालय गर्मियों के मानसून और सर्दियों के मौसम दोनों के लिए वायुमंडलीय परिसंचरण को प्रभावित करता है। ग्रीष्मकालीन मानसून जलवायु पूर्वी-हिमालय में आठ महीने (मार्च-अक्टूबर), मध्य-हिमालय में चार महीने (जून-सितंबर), और पश्चिमी हिमालय में दो महीने (जुलाई-अगस्त) तक प्रभाव डालता है (Chalise and Khanal, 2001)। पूर्व एवं पश्चिम-हिमालयन क्षेत्र में भिन्नता, विभिन्न मौसम के प्रभाव की वजह से होती है, जिसके कारण मानसून पूर्व से पश्चिम की ओर कमजोर हो जाता है। मानसून उत्तर-पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के साथ दक्षिण-पूर्व तिब्बती पठार में प्रवेश करता है, लेकिन काराकोरम तक शायद ही पहुँच पाता है (Hofer and Messerli, 2006; Rees and Collins, 2006)। भारत के मांसवराम जो पूर्वी हिमालय का क्षेत्र है, उसमें सबसे अधिक वार्षिक वर्षा (>12,000 मिमी) होती है। हिमालय के दक्षिणी ढलानों और तिब्बती पठार पर वर्षा की मात्रा में काफी भिन्नता पाई जाती है जो कि उस क्षेत्र की भौगोलिक प्रकृति की वजह से होता है (Mey'e, 1985)। मानसून वर्षा मुख्य रूप से उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति (स्थानीय स्थलाकृतिक विशेषताओं) पर निर्भर करता है, जिसके परिणामस्वरूप शुष्क भीतरी घाटियों के पिछले हिस्से में आसन्न पहाड़ी ढलानों की तुलना में बहुत कम वर्षा होती है (Chalisa and Khanal, 2001)। स्थानीय और क्षेत्रीय जलवायु का ग्लेशियरों के व्यवहार और उनसे जुड़ी प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उसी तरह ग्लेशियर भी बदले में स्थानीय और क्षेत्रीय जलवायु को नियंत्रित करते हैं, इसी तरह दोनों के बीच मजबूत संबंध भी हैं। एक में परिवर्तन निश्चित रूप से दूसरों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है तथा उसमें बदलाव लाता है। हिमालय में दो जलवायु परिस्थितियों महत्वपूर्ण

रूप से प्रभावी है , एक इंडियन समर-मॉनसून (ISM) और दूसरा पश्चिमी-विक्षोभ (वेस्टर्लीडिस्टर्बेंस-WD)। पूर्वी और मध्य हिमालय में ज्यादातर भारतीय मानसून से वर्षा होती है जबकि पश्चिमी हिमालय में पश्चिमी-विक्षोभ का अधिक प्रभाव होता है। मध्य और पूर्वी-हिमालय में वर्षा की प्रवृत्ति समान होती है लेकिन मानसून से हवा की दूरी पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ जाने की वजह से मध्य-हिमालय में वर्षा की मात्रा पूर्वी हिमालय से कम होती जाती है। टीआरएमएम (TRMM) वर्षा के आंकड़ों से पता चला है कि पूर्वी और मध्य-हिमालय में वार्षिक वर्षा की प्रवृत्ति पिछले दो दशकों (1998 से 2017) के दौरान कम हो गई है। जबकि पश्चिमी-हिमालय में वार्षिक वर्षा 2000 और 2005 में कम हुई लेकिन 2010 के बाद बढ़ गई है। इस वर्षा में बदलाव के परिणामस्वरूप पूर्वी-हिमालय के हिमनद पश्चिमी-हिमालय के हिमनद की तुलना में तेजी से कम हो रहे हैं। सतही तापमान डेटा (1891-2011) ने दिखाया कि पश्चिमी-हिमालय की तुलना में पूर्वी-हिमालय में तापमान अधिक बढ़ा है। ग्लेशियर क्षेत्र में परिवर्तन उसकी स्थलाकृति और ग्लेशियर विशेषताओं की तुलना में जलवायु पर अधिक निर्भर करता है। एचकेएच क्षेत्र वैश्विक औसत से कम से कम 0.3 डिग्रीसेल्सियस अधिक होगा, भले ही ग्लोबल-वार्मिंग 1.5 डिग्रीसेल्सियस की निरंतर दर के साथ जारी रहे। एचकेएच क्षेत्र ने पिछले 5-6 दशकों के दौरान चरम गर्म घटनाओं की बढ़ती प्रवृत्ति को दिखाया है, और अत्यधिक ठंड की घटनाओं की गिरती प्रवृत्ति भी। पश्चिमी विक्षोभ में बढ़ती परिवर्तनशीलता, काराकोरम और पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में बर्फबारी की संभावना बढ़ जाएगी और उन क्षेत्रों में ग्लेशियर के बढ़ने की संभावना बढ़ जाएगी (Krishnan et al., 2019)। निरंतर जलवायु परिवर्तन की भविष्यवाणी की जाती है, जिससे एशियाई मानसून, आंतरिक एशियाई उच्च दबाव प्रणालियों और सर्दियों के मौसमों की ताकत और समय में बड़े परिवर्तन होते हैं – हिमालयी क्षेत्र की जलवायु को प्रभावित करने वाली मुख्य प्रणाली निरंतर जलवायु परिवर्तन से एशियाई मानसून, आंतरिक एशियाई उच्च दबाव प्रणालियों, और सर्दियों की ताकत और समय में बड़े बदलाव की भविष्य वाणी की जाती है। पश्चिमी विक्षोभ – हिमालयी क्षेत्र की जलवायु को प्रभावित करने वाली मुख्य प्रणाली। ग्लेशियर गतिशील और नाजुक बर्फ द्रव्यमान हैं, जो बदलती जलवायु के जवाब में बढ़ते और सिकुड़ते हैं। जलवायु में बदलाव का सीधा असर ग्लेशियर पर पड़ता है और इससे जल संसाधन प्रभावित होते हैं। हिमालय में जल संसाधन हिमनदों के रूप में संग्रहीत हैं। सर्दियों के दौरान, अधिकांश ऊंचाई वाले क्षेत्रों में भारी हिमपात होता है। यह हिम आवरण क्षेत्र की पारिस्थितिकी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और एक अद्वितीय जलाशय बनाता है। गर्मियों के दौरान बर्फ से बंधे क्षेत्रों से पिघलने से उच्च हिमालय में उत्पन्न होने वाली कई बारहमासी नदियों का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनता है। ताजा पानी एक परिमित और कमजोर संसाधन है, जो जीवन और विकास को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। ग्लेशियर की प्रगति और मंदी को समझना इसके विस्तार और गतिशीलता और अंत में ग्लेशियर के स्वास्थ्य में परिवर्तन के महत्वपूर्ण सबूत हैं। वैश्विक तापमान सतहों से हिमालय ग्लेशियरों (हिमनद) को प्रभावित कर रहा है परंतु हाल के दशकों में वैश्विक तापमान के तेजी से बढ़ने की वजह से हिमालय ग्लेशियरों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

Temporal distribution of precipitation and temperature over Himalayan region

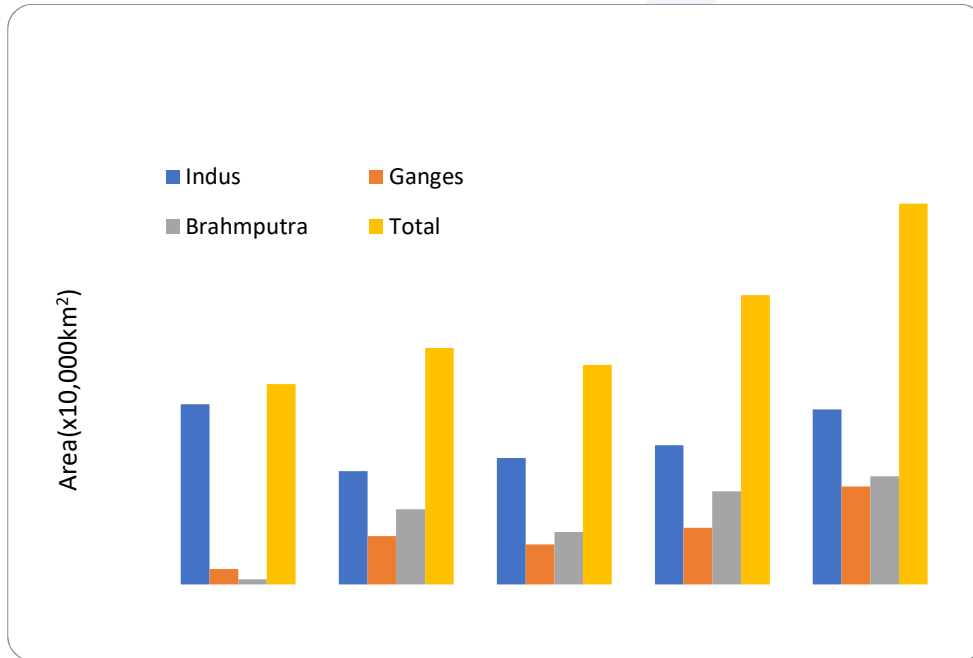


चित्र 2. हिमालय में औसत मासिक तापमान और वर्षा का वितरण

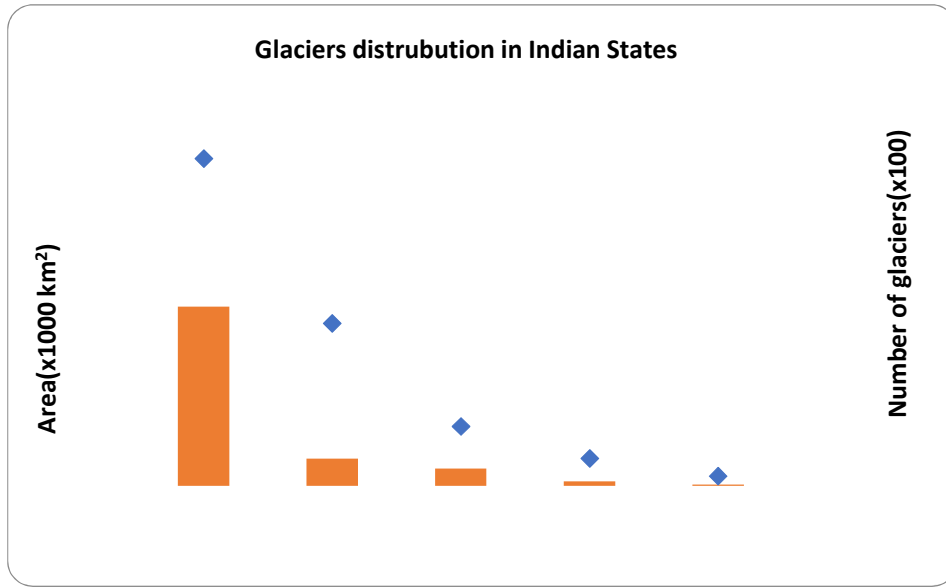
### हिमालय (IHR) में ग्लेशियरों का स्थानिक वितरण:

तिब्बती पठार के दक्षिण में हिमालय, ध्रुवीय क्षेत्र के बाहर ग्लेशियरों और स्थाई बर्फ क्षेत्र स्नोफ्रील्ड की सबसे बड़ी क्षेत्र में से एक है और भारतीय उप-महाद्वीप के जलस्रोत और जलवायु को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। हिमालय की निम्न अक्षांश और उच्च ऊंचाई वाली भौगोलिक विशेषताएं बर्फ और ग्लेशियर के लिए उपयुक्त वातावरण बनाती हैं और कई प्रमुख नदी प्रणालियों के लिए एक अद्वितीय एवं अनवरत जल स्रोत प्रदान करती हैं। हिमालय का लगभग 17% क्षेत्र और काराकोरम का 37% क्षेत्र हिमनद बर्फ से ढका है और लगभग 30 से 40% का अतिरिक्त क्षेत्र ताजा बर्फ/बर्फ के आवरण से आच्छादित रहता है और सर्दी गर्मी में घटता-बढ़ता रहता है। अधिकांश हिमनद हिमालय के मुख्य श्रृंखला पर स्थित हैं, लेकिन अन्य पर्वतमाला, जैसे पीरपंजाल, धौलाधार और लद्दाख पर्वत माला में भी बहुत सारे हिमनद मौजूद हैं। आड़ा-तिरछा क्रिस-क्रॉस पहाड़ों की श्रृंखला, ऊंचाई भिन्नता और विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के कारण हिमालय में हिमनदों का वितरण काफी असमान है। उत्तर-पश्चिम में हिमनदों का घनत्व उत्तर-पूर्व से ज्यादा है। ऐसी जटिलता एवं विशेषताओं के कारण हिमालयन क्षेत्र में क्षेत्रीय बर्फ रेखा / फ़र्नलाइन के ऊंचाई की सीमा में काफी परिवर्तन (उतार-चढ़ाव-4500 से 5700 मीटर) देखने को मिलता है (Mullar, 1958; Mayewski&Jeschaka, 1979; Dobhal, 1993; Millap C, et.al, 1996)। हालांकि हिमालय में हिमनदों का स्थानिक वितरण के कई आकलन विभिन्न इंस्टीट्यूशन जैसे जीएसआई, आईसी मोड, सैक (एसएसी), आरजीआई 4, जीजीआई आदि (GSI, 2009; Bajracharya et al, 2011; Sharma et al, 2013; Pfeffer et al, 2014; Nuimura et al, 2015) द्वारा किए गए हैं एवं कई शोधकर्ताओं ने ग्लेशियर क्षेत्र का अलग से भी अनुमान लगाया है। भारत में भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण की सूची (जीएसआई, 2009) द्वारा किया गया आकलन का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इसके अनुसार हिमालय के भारतीय भाग में लगभग 9575 ग्लेशियर हैं जो लगभग 37,500 वर्ग किमी क्षेत्र को घेरते हैं (Raina and Srivastva, 2008)। इसी तरह कई अन्य आकलन के अनुसार भारतीय हिमालय (नेपाल,

भूतान और काराकोरम को छोड़कर) में ग्लेशियर सीमा 20,785 से 37,492 वर्ग किमी के बीच में आकलन किया गया है। (GSI, 2009; Bajracharya et al, 2011; Mark, 2013; Sharma et al, 2013; Kulkarni & Karyakarte, 2014)। इन सभी आकलन से पता चलता है कि सबसे अधिक ग्लेशियर सिंधु बेसिन के क्षेत्र में है (figure 3 एवं को ग्लेशियर क्षेत्र के 50 % से अधिक घेरता है। सिंधु बेसिन में औसतन हिमाच्छादित क्षेत्र  $26,150 \pm 3$  किमी<sup>2</sup> है, जबकि गंगा और ब्रह्मपुत्र बेसिन में औसतन हिमाच्छादित क्षेत्र क्रमशः  $11,621 \pm 3,773$  km<sup>2</sup> and  $15,606 \pm 3,584$  km<sup>2</sup> हैं। ये ग्लेशियर भारत के चार राज्यों और दो केंद्र शासित प्रदेशों में वितरित हैं, जिसमें सबसे ज्यादा हिमनद वाला क्षेत्र (लगभग 55% ) जम्मू – कश्मीर और लद्दाख में है, जो भारतीय हिमालय (figure 4) है। हिमालय के कुछ बड़े ग्लेशियर जैसे सियाचिन, गंगोत्री, जेमू, मिलम और बराशिगरी की लंबाई क्रमशः लगभग 72 किमी, 30 किमी, 26 किमी, 19 किमी और 30 किमी हैं।



चित्र 3. हिमालय में हिमनदों का तीन प्रमुख बेसिन में स्थानीय वितरण



चित्र 4. भारत के चार राज्यों और दो केंद्र शासित प्रदेशों में हिमनदों का स्थानीय वितरण

### ग्लेशियर स्वास्थ्य:

ग्लेशियरों के लिए बहुत विशिष्ट और अनुकूल जलवायु परिस्थितियों की आवश्यकता होती है जो इसको अपने विशेषताओं को बनाए रखने के लिए जरूरी होता है। अधिकांश ग्लेशियर उच्च अक्षांश (ध्रुवीयक्षेत्र) या उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों (अल्पाइन) में पाए जाते हैं जहां कम से कम एक मौसम (सर्दियों / गर्मी) में उच्च बर्फबारी होती है ताकि उस मौसम में जमा होने वाली कुल बर्फ के कुछ हिस्से साल के अंत तक बचा रह जायें। जब समय के साथ ताजा बर्फ जमने के बाद सिन्ट्रिंग प्रक्रिया द्वारा बर्फ में बदल जाता है, और अपने स्वयं के वजन और गुरुत्वाकर्षण के दबाव में नीचे की ओर बहना शुरू कर देता है तो वो ग्लेशियर कहलाता है। प्रत्येक वर्ष की नई बर्फबारी चाहे बर्फबारी, हिमपात, हिमस्खलन या हवा-बहाव वाली बर्फ के रूप में क्यों ना हो, अंतर्निहित परतों को संकुचित करती रहती है, जोकि ग्लेशियर के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। ग्लेशियर के बर्फ बढ़ते तापमान, वाष्पीकरण, हवा के झोंके आदि के कारण पिघलते भी रहते हैं और ग्लेशियर सिस्टम से बाहर निकलते रहते हैं। बर्फ पिघलाव ग्लेशियर जीवन का एक प्राकृतिक और मौसमी हिस्सा है। संतुलित या बढ़ने वाला ग्लेशियर स्वस्थ ग्लेशियर कहा जाता है जबकि घटने वाला ग्लेशियर असंतुलित तथा अस्वस्थ ग्लेशियर कहलाता है। जब तक हिम संचय पिघल या अपघटन के बराबर या अधिक होता है, तब तक ग्लेशियर संतुलन में रहता रहेगा या विकसित होगा। लेकिन जब ग्लेशियर का पिघलना (सर्दियों में बर्फबारी कम होने या गर्मियों में तापमान ज्यादा बढ़ने के कारण), हिम संचय से अधिक हो जाएगा, ग्लेशियर घटने लगता है तथा आकार एवं द्रव्यमान में कम होने लगता है। तापमान के अलावा, ग्लेशियर की सतह पर ब्लैक कार्बन, डस्टपार्टिकल, एयरोसोल, माइक्रोब्स, क्रायोनाइट पॉकेट्स आदि ग्लेशियर बर्फ के पिघलने और अपघटन को संभावित रूप से बढ़ाते हैं और ग्लेशियर के स्वास्थ्य को बड़े पैमाने पर नुकसान पहुंचाते हैं। जब ग्लेशियर साल दर साल बार-बार नकारात्मक संतुलन में रहता है तब ग्लेशियर संतुलन से असंतुलन की स्थिति में आ जाती है और तेजी से घटने लगती है। समय के साथ-साथ ग्लेशियर टर्मिनल (थूथन) में व्यापक रूप से परिवर्तन को ग्लेशियर रिट्रीट और ग्लेशियर एडवांस के रूप में जाना जाता है (Haeberli et al., 1998)। हालांकि ग्लेशियर टर्मिनल के घटने के अकेले आंकड़े साल-दर-साल जलवायु परिवर्तन के कारण ग्लेशियर पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी प्रदान नहीं करते हैं, फिर भी ग्लेशियर टर्मिनल के घटने/बढ़ने के आंकड़े ग्लेशियर के स्वास्थ्य को प्रभावी रूप से चिह्नित करता है। ग्लेशियर द्रव्यमान/आयतन में परिवर्तन जलवायु परिवर्तन को अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित करता है। पिछले कुछ दशकों के दौरान ग्लेशियर बर्फ के तेजी से पिघलने की वजह से वैश्विक ग्लेशियर का संकुचन तीव्र गति से



बढ़ा है। एक सामान्य प्रश्न यह है कि क्या पिछले दो दशकों के दौरान ये ग्लेशियर बर्फ द्रव्यमान का नुकसान केवल प्राकृतिक प्रक्रिया (Meier et al, 2003) के कारण हुए हैं या मानवजनित ग्रीनहाउस वार्मिंग / हालिया जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप हैं। इस सवाल का सही जवाब देना मुश्किल है लेकिन हाल ही में सामने आए कई सबूत बताते हैं कि ग्लेशियरकी हालिया पिघलने की दर पिछले कई सदियों की सामान्य जलवायु परिवर्तन- शीलता में ग्लेशियर की पिघलने की दर से बहुत ज्यादा है। उदाहरण के लिए, मध्यहिमालय में गंगोत्री ग्लेशियर की लंबाई 1563 -1958 और 1563-1995 के बीच में लगभग 1.60 और 2.0 किमी घटा परंतु मात्र 20 साल (1982 to 2002) में 200 मी घट गया और अभी भी घटना जारी है। यह परिणाम हिमालयी के अधिकांश क्षेत्र के ग्लेशियरों में दिख रहा है। जलवायु परिवर्तन का ग्लेशियर पर प्रभाव जानने के लिए विभिन्न तकनीकों द्वारा ग्लेशियर की व्यवस्थित रूप से निगरानी की जाती है, जिनमें से कुछ अधिक प्रचलित और व्यावहारिक हैं, जैसे ग्लेशियर टर्मिनल (Snout) का माप, द्रव्यमान संतुलन (मासबैलेंस), हिमनदों का एरियल माप और हिमनदों का विखंडन आदि।

### ग्लेशियर टर्मिनल (स्नाउटरिट्रीट):

समय के साथ बर्फ पिघलने तथा जलवायु के उतार-चढ़ाव के कारण ग्लेशियर स्नाउट की स्थानिक स्थिति में परिवर्तन होता है जिससे ग्लेशियर जिससे स्नाउट आगे या पीछे की तरफ खिसक जाता है एवं ये ग्लेशियर के बढ़ने या घटने का सबसे सरल संकेतक है। ग्लेशियर के निचले टर्मिनल (स्नाउट) के पुराने उतार-चढ़ाव (घटने-बढ़ने) के रिकॉर्ड का अनुमान पुराने मानचित्रों, तस्वीरों, भू-स्थानिक तस्वीरों का उपयोग और स्नाउट के निरंतर सर्वेक्षण की मदद से लगाया जाता है। ग्लेशियर स्नाउट उतार-चढ़ाव से संबंधित शुरूआती अध्ययन 1812 ईस्वी में इज़्ज़त उल्लाह (Izzet Ullah, 1842) द्वारा चोंगकुमदन ग्लेशियर के लिए और उसके बाद 1817 में हॉजसन (Hodgson, 1822) द्वारा मिलम और गंगोत्री ग्लेशियर के लिए किए गए थे। हालाँकि 1840 में डब्ल्यू. टी. ब्लैफोर्ड (W.T. Blanford) द्वारा हिमरेखा के सीमांकन से हिमालय में ग्लेशियोलॉजिकल अध्ययनों को वास्तविक अर्थों में शुरूआत दी गई (Blanford, 1873, 1891)। सर्वे ऑफ इंडिया से राइट और रॉस ने 1935 में स्नाउट सहित ग्लेशियर का सर्वेक्षण किया। आगे अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकीय वर्ष (1957-1958) के दौरान, जब दुनिया भर से भू-भौतिकीय आंकड़ों के संग्रह को समन्वित करने का एक अंतर्राष्ट्रीय प्रयास किया गया था उसी समय से भारत में ग्लेशियर की निगरानी में एक नए युग की शुरूआत हुई थी। कई हिमनदों जैसे गंगोत्री, सतोपंथ, मिलम, पोटिंग, शंकाल्या, पिंडारी, कपहनी, मृगथुनी, बुरहगल, मिकतोली, माचोई, सोनापानी, बाराशिगरी, छोटाशिगरी, आदि की व्यवस्थित रूप से निगरानी की शुरूआत की गई (Vohra, 1981; Raina and Srivastava, 2008)। मेयस्वकी और जेसचके (Mayeswki and Jeschke, 1979) ने हिमालय में 122 ग्लेशियरों के उतार-चढ़ाव रिकॉर्ड का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि अधिकांश ग्लेशियर पीछे हट रहे हैं। गंगोत्री ग्लेशियर का स्नाउट 1935-1996 के दौरान 22 मीटर प्रति वर्ष की औसत दर के साथ लगभग 1400 मीटर पीछे खिसक गया। सत्तर और अस्सी के दशक के मध्य में पीछे हटने में तेजी आई थी और नब्बे के दशक में यह धीमा हो गया। रैना (Raina, 2009) के अनुसार, ग्लेशियर का स्नाउट 2007 से 2009 तक लगभग स्थिर रहा है। हाल ही में टर्मिनल के उतार-चढ़ाव तक जानकारी के लिए कई ग्लेशियरों की लगातार निगरानी की गई है, उनमें से अधिकांश ग्लेशियर का स्नाउट 0-61 मीटर प्रति वर्ष की बदलती औसत दर से पीछे हट रहे हैं। सुत्रीढाका औरचंद्रा बेसिन के बातल ग्लेशियर के हालिया अध्ययनों में क्रमशः 11.4 मी और 7.3 मी प्रति बर्केदर से 1962-2013 के दौरान पीछे खिसक रहा है (Sharma et al, 2016; Patel et al, 2016)। इसी प्रकार उत्तराखंड हिमालय में एक ग्राउंड आधारित अध्ययन से पता चलता है कि भागीरथी बेसिन में डोकरीनी ग्लेशियर 1995 से

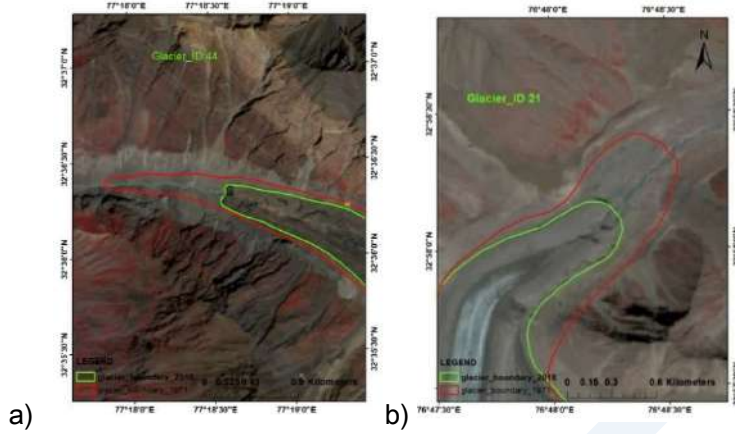
15 और 20 मीटर / वर्ष के बीच पीछे हट रहा है, जबकि मंदाकिनी ग्लेशियर में चोराबाड़ी ग्लेशियर 9-11 मीटर / वर्ष (2003-2016) से पीछे हट रहा है। स्पेस एप्लीकेशन सेंटर (एसएसी) के अध्ययन से पता चलता है कि इसरो ने क्रमशः 1989-2001 और 2001-2010 के दौरान हिमालय के 87% और 12.3% के साथ हिमालय के पीछे हटने के बहुत विपरीत परिणाम दिखाए हैं (Ajai, 2018)। अजय (Ajai,2018) के अनुसार, अधिकांश ग्लेशियर (86.6%) के स्नाउट में 2001-2010 के दौरान कोई उतार चढ़ाव नहीं देखा गया और स्नाउट की स्थानिक स्थिति स्थिर पायी गयी। हाँलाकि कई वैज्ञानिक इस स्थिर स्नाउट के आंकड़े से सहमत नहीं हैं और इन परिणामों के लिए कई वैज्ञानिक तर्क एवं सुझाव दिए हैं। जोशेफ माइकल शी (Joseph Michael Shea) ने तर्क दिया कि चूंकि मलबे से ढके ग्लेशियरों पर स्नाउट की स्थिति की व्याख्या करना मुश्किल हो सकता है, और मलबे से ढके ग्लेशियरों के लिए पक्षपाती नमूने पूरे ग्लेशियर के स्नाउट आंकड़े लिए समस्या का कारण बन सकते हैं।

हिमालयी ग्लेशियर के समग्र अध्ययन से संकेत मिलता है कि संपूर्ण पर्वत श्रृंखलाओं के बेसिन स्तर में भी टर्मिनस के पीछे हटने की दर में विभिन्न स्थलाकृति और जलवायु की वजह से व्यापक स्थानिक एवं सामायिक परिवर्तन शीलता है (Fig.3)। 119 ग्लेशियरों की स्नाउट के घटने की दर से पता चलता है कि पश्चिमी हिमालय में ग्लेशियरों के स्नाउट के घटने की दर सबसे अधिक 18m / y है, इसके बाद मध्य हिमालयी ग्लेशियर की दर 16.8m/y है और पूर्वी-हिमालय में सब से कम 11.6 m/y है। हालाँकि 1997 से 2001 की अवधि के दौरान मध्य काराकोरम क्षेत्र में 30 ग्लेशियरों के एक अध्ययन में 5-20 मीटर की बढ़ोतरी दिखाई गई है और इस विषम व्यवहार को काराकोरम विसंगति कहा गया है - हेवित (Hewitt, 2005)। जैसीकि ऊपर चर्चा की गई है, हिमालय के अधिकांश भाग में बर्फ नमी का प्रमुख स्रोत दक्षिण -पश्चिमी भारतीय मानसून (भारतीय समर मानसून) और पश्चिमी विक्षोभ है (Khan et al, 2018)। यद्यपि काराकोरम क्षेत्र दक्षिण -पश्चिमी भारतीय मानसून के प्रभाव से बहुत दूर है परंतु सर्दियों में पश्चिमी विक्षोभ के दौरान तुलनात्मक रूप से ज्यादा बर्फ (नमी) प्राप्त करता है (Sharma,2016, 2020; Treydte et al., 2006)।

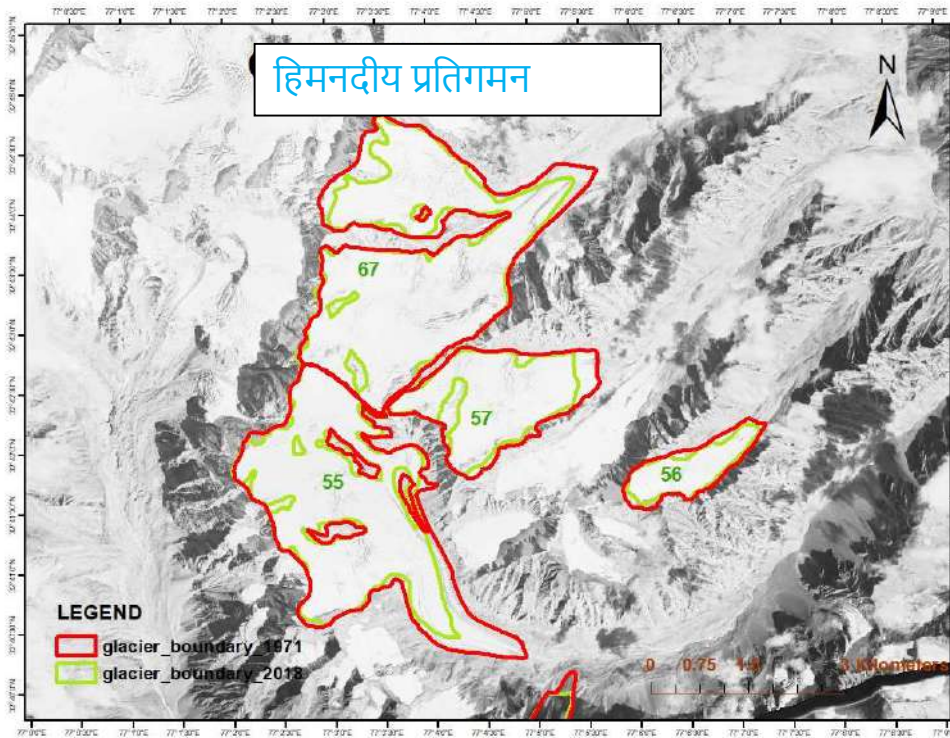
पश्चिमी- हिमालय के ग्लेशियरों को अधिकांश बर्फ सर्दियों में वेस्टरलिस से तथा आंशिक रूप से गर्मियों में आई एस एम से भी प्राप्त होते हैं और इस प्रकार पश्चिमी हिमालय का ग्लेशियर दो मौसम में बर्फ प्राप्त करता है। एक अध्ययन से पता चलता है कि इस क्षेत्र के बड़े ग्लेशियर > 10 वर्गकिमी धीमी गति से पीछे हट रहे हैं जबकि < 2 वर्ग किमी के छोटे ग्लेशियर के शुद्ध द्रव्यमान, लंबाई, क्षेत्र में तेजी से बदलाव दिख रहे हैं (Dobhal et al,2008)। ग्लेशियर स्नाउट के ऊपर मलबे का आवरण इसके पीछे हटने की दर को नियंत्रित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्तमान जलवायु परिवर्तन की प्रवृत्ति को देखते हुए, यह व्यापक रूप से कहा जा सकता है कि आने वाले भविष्य में इस क्षेत्र के ग्लेशियरों में तेजी से कमी आने की संभावना है।

वास्तव में ग्लेशियर स्नाउट की स्थिति बहुत जटिल कारकों, जैसे जलवायु, हिमनद गतिशीलता ग्लेशियर डायनामिक्स, ग्लेशियर रेस्पॉन्स टाइम, लैगटाइम, डेब्रिस कवर इत्यादि द्वारा निर्धारित और नियंत्रित की जाती है। इसलिए ग्लेशियर स्नाउट हिमनद धूथन में उतार-चढ़ाव (पीछे हटना या आगे बढ़ना) हमेशा ग्लेशियर के स्वास्थ्य की सही तस्वीर को व्यक्त नहीं करता है। कम समय में टर्मिनस का व्यवहार ग्लेशियर के समग्र स्वास्थ्य का संकेत नहीं हो सकता है। हाँलाकि ग्लेशियर स्नाउट में उतार-चढ़ाव ग्लेशियर के लंबे समय के व्यवहार को कुछ हद तक प्रदर्शित करने में सक्षम है। ग्लेशियर मास बैलेंस (द्रव्यमान संतुलन) ग्लेशियर के व्यवहार को जानने का एक बेहतर तरीका और साधन है जो ग्लेशियर स्नाउट के पीछे हटने या आगे बढ़ने से बहुत अलग है। बर्फ पिघलने और अंततः सतह के कम होने के कारण ग्लेशियर जो अपना द्रव्यमान/आयतन को खो रहे हैं तथा बर्फ पड़ने के कारण जो द्रव्यमान/आयतन प्राप्त कर रहे हैं उसका मापन ग्लेशियर मास बैलेंस कहलाता है जो टर्मिनस के पीछे हटने और आगे बढ़ने से अलग है। ग्लेशियर के स्वास्थ्य को मापने के लिए ग्लेशियरों का

द्रव्यमान संतुलन एक बेहतर मापक उपकरण है, जो मुख्य रूप से बर्फ पिघलने की वजह से सतह के कम होने के कारण बड़े पैमाने पर अपना द्रव्यमान खो देता है।

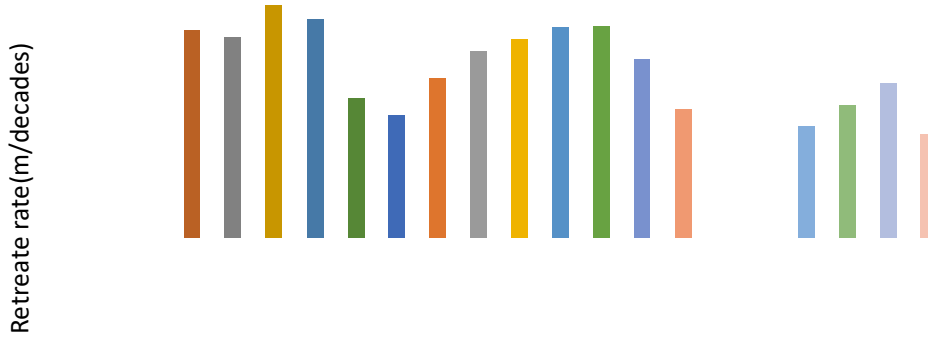


चित्र 5. a) मियार और b) भागा बेसिन में हिमनदों के साउट रिट्रीट (सेंटिनल 2 बी उपग्रह चित्र)



चित्र 6. भागा बेसिन में 1971 से 2018 के दौरान ग्लेशियर के पीछे हटने का एक उदाहरण (कोरोनाबेस इमेज)

### Terminal retreat over Himalaya during last 6 decades



चित्र 7. पूर्वी, मध्य एवं पश्चिमी हिमालयन हिमनदों के स्नाउट (लोअर टर्मिनस) का पिछले छह दशक में रिट्रीट (पीछे खिसकने) की औसत दर।

#### ग्लेशियर मास बैलेंस (द्रव्यमान संतुलन):

ग्लेशियर का द्रव्यमान संतुलन जलवायु से संबंधित एक महत्वपूर्ण ग्लेशियोलॉजिकल पैरामीटर है। साधारण शब्दों में ग्लेशियर मास बैलेंस का मतलब ग्लेशियर प्रणाली में बर्फ के जमाव और पिघलाव का लेखा-जोखा है। द्रव्यमान संतुलन की गणना जमाव संचय (सॉलिड प्रिसिपिटेशन / बर्फ गिरने, हिम-स्खलन, स्नोड्रिफ्ट, बेसलफ्रीज, आंतरिक संचय आदि) और पिघलाव नुकसान (बर्फ सतह के पिघलने, फ्रॉन्टलअबलेशन, काल्विंग, स्नोड्रिफ्ट) के योग के रूप में की जाती है।

ग्लेशियर के बर्फ संचय और विघटन का वार्षिक चक्र होता है जो उस क्षेत्र के भू-स्थानिक एवं मौसमी जलवायु पर निर्भर करता है और इसी वजह से अलग अलग क्षेत्र और जलवायु में ग्लेशियर के वार्षिक द्रव्यमान संतुलन में भिन्नता पाई जाती हैं। ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन, ग्लेशियर या ग्लेशियर के कि हिस्से के द्रव्यमान/आयतन में समय की एक निश्चित अवधि में परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया गया है (Hock R, 2018)। द्रव्यमान संतुलन को परिभाषित करने के लिए कई समान शब्द हैं जैसे कि सतह द्रव्यमान संतुलन, जलवायु द्रव्यमान संतुलन, वार्षिक संतुलन, विशिष्ट संतुलन, शीतकालीन संतुलन, ग्रीष्म संतुलन आदि उपयोग किए जाते हैं। सतह द्रव्यमान संतुलन ग्लेशियर की सतह पर बर्फ के संचय और विघटन का योग है। जब कि सतह द्रव्यमान संतुलन और आंतरिक द्रव्यमान संतुलन के योग को जलवायु द्रव्यमान संतुलन कहा जाता है (Cogley et al, 2011)। वार्षिक द्रव्यमान संतुलन ( $b_a$ ), एक वर्ष (हाइड्रोलॉजिकलकैलेंडरवर्ष) के अंत में आकलन किए गए द्रव्यमान संतुलन को कहते हैं तथा इसे सर्दियों के द्रव्यमान संतुलन ( $b_w$ ) और गर्मियों के द्रव्यमान संतुलन ( $b_s$ ) के योग रूप में भी वर्णित किया जा सकता है।

$$b_a = b_w + b_s = c_t + a_t = c_w + a_w + a_s + a$$

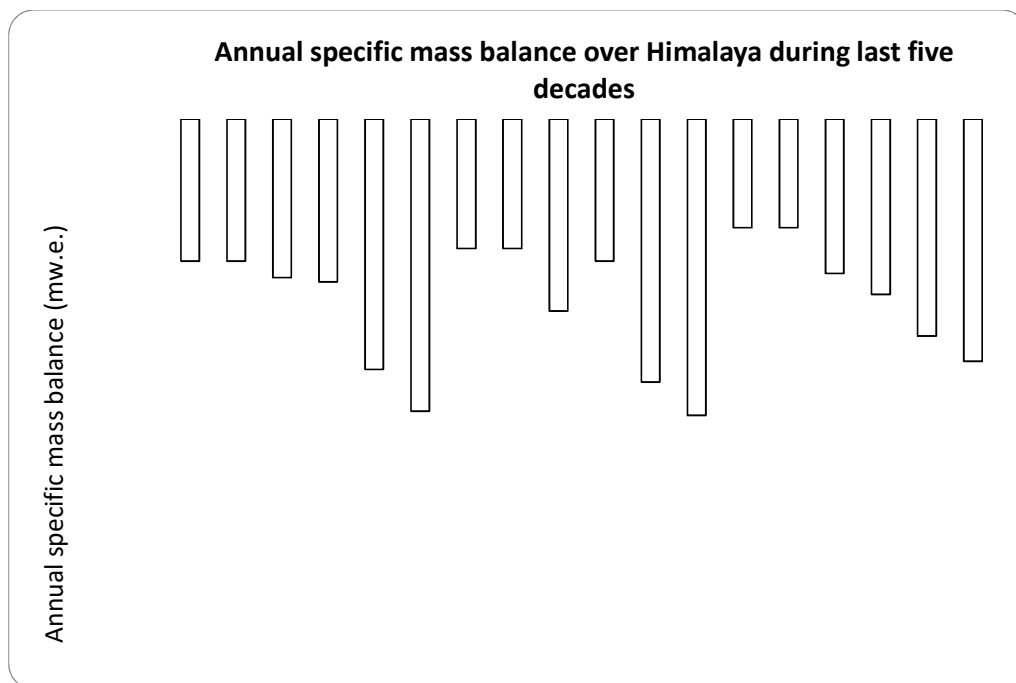
पूरे ग्लेशियर क्षेत्र (A) का वार्षिक संतुलन ( $B_a$ )

$$B_a = \int b_a dA$$

ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन को सीधे 'ग्लेशियर के स्वास्थ्य' के साथ जोड़ा जा सकता है यदि ग्लेशियर प्राप्त बर्फ के मात्रा द्रव्यमान से अधिक बर्फ का मात्रा द्रव्यमान खो देते हैं, तो ग्लेशियर नकारात्मक द्रव्यमान संतुलन का अनुभव करता है और ग्लेशियर घटने लगता है। इसी तरह यदि ग्लेशियर बर्फ की मात्रा खोने की तुलना में अधिक द्रव्यमान प्राप्त करता है तो ग्लेशियर सकारात्मक द्रव्यमान संतुलन में होंगे और बढ़ेंगे। चूंकि बर्फ तापमान परिवर्तन के प्रति बहुत ही संवेदनशील है इसलिए जलवायु परिवर्तनों को समझने के लिए ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन एक महत्वपूर्ण सूचक है। यह क्षेत्रीय पैमाने पर जलवायु परिवर्तनों के कारण ग्लेशियरों के स्वास्थ्य की प्रकृति और परिणामों को दिखाता है तथा इस क्षेत्र के जल संसाधनों की योजना और प्रबंधन में सहायक होते हैं। हिमालय के ग्लेशियरों का ऊबड़-खाबड़ और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी इलाकों में होने की वजह से एवं खराब मौसम होने की वजह से कठोर चुनौतियों और राजनीतिक कारणों के कारण सामान्य रूप से अध्ययन करना काफी कठिन है (Baghel and Nusser, 2015)। हिमालयी क्षेत्र के भारतीय भाग में स्थित ग्लेशियरों के द्रव्यमान संतुलन पर बहुत कम अध्ययन किए गए हैं। उच्च हिमालयी ग्लेशियरों में फील्ड आधारित द्रव्यमान संतुलन का दीर्घकालिक अध्ययन बहुत ही विरल है (Armstrong, 2010), और अधिकांश अध्ययन ग्लेशियर का क्षेत्रफल, लंबाई और स्नाउट निचले टर्मिनल के माप पर केंद्रित हैं (Kulkarni, 1992)। ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन का अध्ययन अलग-अलग तकनीकों, जैसे ग्लेशियोलॉजिकल, जियोमेट्रिक, ग्रेविमेट्रिक, एनर्जिबिलिंस, डिग्रीडे, कोसिमा COSIMA, एक्वूमलेशन एरिया रेशियो (AAR), इम्प्रूव्ड-एएआर AAR आदि का उपयोग करके किया जा सकता है (Azam et al, 2018; Sharma et al, 2016; Mandal et al, 2020; Soheb et al, 2020; Prtap et al, 2019)। ग्लेशियोलॉजिकल पद्धति में ग्लेशियर के अपघटन एवं संचय का मापन क्रमशः स्टेक नेटवर्क एवं पीटकोर की सहायता से किया जाता है। जियोडेटिक विधि में ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन का अनुमान लगाने के लिए एक अवधि के दौरान ग्लेशियर सतह की ऊंचाई में परिवर्तन को ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम की सहायता से बनाया गया। डिजिटल एलीवेशन मॉडल (डीईएम) का उपयोग कर मापा जाता है। चूंकि इस तकनीक में डिजिटल एलीवेशन मॉडल (डीईएम) का उपयोग किया जाता है जिसकी वजह से उपग्रह छवियों में होने वाली कोई भी अशुद्धियां द्रव्यमान संतुलन के अनुमानों की सटीकता को कम कर सकती हैं। इसलिए इस तकनीक द्वारा ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन के आकलन के सटीकता में सुधार के लिए जमीनी नियंत्रण बिंदुओं की भी आवश्यकता होती है। ग्रेविमेट्रिक तकनीक में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में परिवर्तन को माप कर सीधे ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन का अनुमान लगाते हैं। ध्रुवीय उपग्रह ग्रेविटी रिकवरी और क्लाइमेट एक्सपेरिमेंट (GRACE) लगातार ग्रेविटी डेटा उपलब्ध कराता है परंतु वर्तमान में इसका रेसोलुशन अच्छा नहीं है, इस वजह से ग्रेविमेट्रिक तकनीक का उपयोग ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन के आकलन में कम ही होता है। एक्वूमलेशन एरिया रेशियो (एएआर) पद्धति द्रव्यमान संतुलन और एएआर के बीच के संबंध पर निर्भर करती है। इस पद्धति में इक्विलिब्रियम लाइन एल्टिट्यूड (ईएलए) का निर्धारण, बादल मुक्त उपग्रह चित्रों में उच्चतम स्नोलाइन द्वारा किया जाता है। चूंकि इक्विलिब्रियम लाइन एल्टिट्यूड बादलमुक्त उपग्रह चित्रों की उपलब्धता पर निर्भर करता है जिसकी वजह से इक्विलिब्रियम लाइन एल्टिट्यूड में सटीकता कम हो जाती है और ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन के अनुमान को ज्यादा या कम कर सकता है। AAR का एक संशोधित संस्करण जिसे इम्प्रूव्ड-एएआर (IAAR) कहा जाता है, इसमें द्रव्यमान संतुलन अनुमानों को बेहतर बनाने के लिए उपग्रह चित्रों के साथ-साथ मौसम संबंधी डेटा और स्नोमेल्ट मॉडल का भी समन्वित उपयोग करता है।

भारतीय हिमालय में ग्लेशियर के लिए दीर्घकालिक द्रव्यमान संतुलन का आंकड़ा डेटा बहुत ही विरल है और पूरे भारतीय हिमालय में मात्र 2-3 ग्लेशियर का 10 या इससे अधिक वर्ष का द्रव्यमान संतुलन आंकड़ा उपलब्ध है। हालाँकि, ग्लेसिओलॉजिकल पद्धति द्वारा आकलित भारतीय हिमालय में 1 और 1 से अधिक वर्षों के लिए द्रव्यमान संतुलन का आंकड़ा लगभग 30 ग्लेशियरों के लिए उपलब्ध हैं (Kulkarni & Shirsat, 2019)। हिमाचल हिमालय में गारा-ग्लेशियर पर सबसे पहले संतुलन अध्ययन किया गया था (Raina et.al, 1977) और तब से कई अन्य ग्लेशियरों पर छोटी अवधि के लिए वार्षिक आधार पर द्रव्यमान संतुलन डेटा ग्लेसिओलॉजिकल पद्धति द्वारा एकत्र किए गए हैं (Singh and Sangewar, 1989; Gautam and

Mukherjee, 1989; Dobhal et.al, 1995; Srivastava et.al, 1999; Bhutiyani, 1999; Srivastava et.al, 2001)।



चित्र 8. पूर्वी, मध्य एवं पश्चमी हिमालयन हिमनदों के पिछले पांच दशक में द्रव्यमान संतुलन (मास बैलेंस) औसत दर।

हिमालय में, 1990 के दशक तक ग्लेशियोलॉजिकल मास बैलेंस का निरंतर और लंबे वर्षों तक फ्रील्ड डेटा उपलब्ध नहीं है लेकिन 21 वीं शताब्दी की शुरुआत से कुछ ग्लेशियरों (डोकरियानी, छोटा शिगरी, हमता, नारडु, सूत्रीढाका, बातलबा समुद्रटापू, बड़ाशिगरी, गोपांगगाथ और मेराग्लेशियर) का द्रव्यमान संतुलन आंकड़ों की लंबी श्रृंखला उपलब्ध हैं। इन ग्लेशियरों के कुमुलेटिव द्रव्यमान संतुलन का विश्लेषण सभी ग्लेशियरों के द्रव्यमान संतुलन में महत्वपूर्ण गिरावट का संकेत देता है। एक हाल ही में प्रकाशित रिसर्च पेपर में बताया गया है कि 1975 के बाद ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन के 211 मापों में से केवल 16 माप सकारात्मक द्रव्यमान संतुलन को दिखाता है और बाकी सब नकारात्मक प्रवृत्ति का संकेत देता है जो द्रव्यमान संतुलन 1970 के दशक (1970-2000 के बीच में) 0.42 मीवाएकी प्रति वर्ष था वो 2000-15 में -0.78 मीवाएकी प्रति वर्ष हो गया है (Sharma et al, 2019, Azam et al, 2018; Pratap et al, 2016)। पिछले दशक में हिमालयन ग्लेशियर का जियोडे टिक विधि द्वारा अनुमानित द्रव्यमान संतुलन ग्लेशियर बर्फ के बड़े पैमाने पर नुकसान एवं उसकी प्रवृत्ति में तेजी को दर्शाता है [30]। इसके अलावा, आरसीपी 8.5 परिदृश्य के तहत भविष्य में सतलुज बेसिन में भी ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन में बड़ी नुकसान अनुमानित हैं [19]। CNRM-CM5 और GFDL-CM3 का अनुमान है कि इस सदी में ग्लेशियर बर्फ बड़े पैमाने पर खत्म होंगे जो क्रमशः 2.6 और 45.6 गीगा टन होंगे।

कई अध्ययनों ने 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के साथ-साथ 21 वीं सदी के प्रारंभ के दौरान समग्र नकारात्मक ग्लेशियर मास संतुलन का संकेत दिया है (Dobhal et al., 2008, 2013, Pratap et al., 2015; Brun et al., 2015)। यह देखते हुए कि हिमालय के अधिकांश ग्लेशियर अस्थिरता की स्थिति में हैं, यह परिकल्पना की गई है कि यदि वर्तमान स्थिति में जलवायु स्थिर रहे तो ग्लेशियर बर्फ की मात्रा काफी कम हो सकती है (Gaddam et al., 2016, 2017)। वर्तमान में, कुछ चुनिंदा ग्लेशियरों पर जैसे सूत्रीढाका, बातल समुद्रटापू, बड़ा शिगरी और गोपांगगाथ (एनसीएओआर), डोकरियानी और चोराबारी (WIHG), हमता (जीएसआई), छोटा

शिगरी (जेएनयू) द्रव्यमान संतुलन का अध्ययन ग्लाइसिओलॉजिकल पद्धति द्वारा जारी है। पिछले कुछ दशकों के दौरान हिमालय का द्रव्यमान संतुलन ग्रेडिएंट (ढाल) आल्प्स और नेपाल हिमालय ((Sharma et al, 2016a; Mandal et al., 2014) के समान है। हिमालय के ग्लेशियरों पर काम कर रहे अधिकांश शोधकर्ताओं का मानना है कि ग्लेशियर का द्रव्यमान संतुलन, सौर-विकिरण, मलबे के आवरण, स्थानीय और क्षेत्रीय वर्षा, ढलान और आसपास की ढलानों की छाया का प्रभाव आदि द्वारा नियंत्रित होता है (Sharma et al., 2016; Patel et al., 2016)। हिमालय में द्रव्यमान संतुलन में परिवर्तनशीलता क्षेत्र की जलवायु और स्थलाकृतिक स्थिति के कारण होती है। मलबे के आवरण की सतह, महत्वपूर्ण रूप से बर्फ के पिघलाव की दर को नियंत्रित करते हैं और बर्फ के पिघलाव की स्थानिक परिवर्तनशीलता के लिए महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। सामान्य एब्लेशन पैटर्न के विपरीत, मलबे से ढके ग्लेशियरों में ऊंचाई के साथ ऋणात्मक एब्लेशन रेट देखा गया है (Sharma et al., 2016)। मोटा मलबा बर्फ की सतह को पिघलाने से बचाता है (Sharma et al., 2016; Pratap et al., 2015)। इसी तरह, हिमालयन ग्लेशियरों में गर्मियों के तापमान और सर्दियों के बर्फबारी ग्लेशियर द्रव्यमान संतुलन को नियंत्रित करने के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है (Azam et al., 2014; Thayyen et al., 2010);

### ग्लेशियरों का क्षेत्र संकोचन और विघटन:

गढ़वाल हिमालय में लगभग 80 ग्लेशियरों का रिमोटसेंसिंग आधारित अध्ययन बताता है कि 1968 से 2006 बीच में ग्लेशियर का क्षेत्रफल लगभग 4.6% 600 वर्ग किलोमीटर से घटकर 573 वर्ग किलोमीटर रह गया है। दूसरी ओर, अलकनंदा और ऊपरी भागीरथी बेसिन में ग्लेशियर, 1968 से 2006 बीच में ग्लेशियर का क्षेत्रफल क्रमशः 18.5 वर्ग किलोमीटर ( 5.7%) और 9.1 वर्ग किलोमीटर ( 3.3%) कम हो गया है। अजय एट अल (Ajai et al, 2011) ने 1962 और 2001/2002 के बीच की अवधि के लिए हिमालय की 11 नदी घाटियों में फैले 1868 ग्लेशियरों के अध्ययन से पता चलता है कि कुल ग्लेशियर क्षेत्र लगभग 16% घटकर 6332 वर्ग किलोमीटर से 5329 वर्ग किलोमीटर हो गया है। काराकोरम, ज़ांस्कर, हिमाचल, उत्तराखंड, नेपाल और सिक्किम क्षेत्रों में स्थित दो हजार और अठारह (2018) ग्लेशियरों का रिमोट सेंसिंग आधारित अध्ययन बताता है कि 2000 से 2010 के बीच में ग्लेशियर के क्षेत्रफल में लगभग 20.94 वर्ग किलोमीटर (0.2%) कमी आई है (Bahuguna et al., 2014)।

### संदर्भ

- Ajai, 2018. Inventory and Monitoring of Snow and Glaciers of the Himalaya using Space Data In: Science and Geopolitics of the white world Arctic, Antarctic and Himalaya (SaGAA) (Eds) P S Goel, Rasik Ravindra and Sulagna Chattopadhyay pp101-130, Springer
- Azam M F, Wagnon P, Vincent C, Ramanathan A L, Favier V, Mandal A and Pottakkal J G, 2014. Processes governing the mass balance of Chhota Shigri Glacier (Western Himalaya, India) assessed by point-scale surface energy balance measurements. The Cryosphere 8 2195-2217, [https:// doi.org / 10.5194 /tc-8-2195-2014](https://doi.org/10.5194/tc-8-2195-2014)

- Azam, M. F., Wagnon, P., Berthier, E., Vincent, C., Fujita, K., & Kargel, J. S. (2018). Review of the status and mass changes of Himalayan-Karakoram glaciers. *Journal of Glaciology*, 64(243), 61-74.
- Bajracharya, S. R., & Shrestha, B. R. (2011). The status of glaciers in the Hindu Kush-Himalayan region. International Centre for Integrated Mountain Development (ICIMOD).
- Bolch, T., Kulkarni, A., Käab, A., Huggel, C., Paul, F., Cogley, J. G., ... & Bajracharya, S. (2012). The state and fate of Himalayan glaciers. *Science*, 336(6079), 310-314.
- Brun, F., Dumont M, Wagnon P, Berthier E, Azam, M F, Shea J Mand, Ramanathan A ,2015. Seasonal changes in surface albedo of Himalayan glaciers from MODIS data and links with the annual mass balance *The Cryosphere* 9 341-355
- D.P. Dobhal, Anil K. Gupta, Manish Mehta and D.D. Khandewal, 2013. Kedarnath Disaster: Facts and Plausible Causes, *Current Science*, 105 (2) 171-174.
- Dobhal D P, Gergan J T and Thayyen R J, 2008. Mass balance studies of Dokriani glacier from 1992 to 2000, Garhwal Himalaya, India *Bulletin of Glaciological Research*, Japanese Society of Snow and Ice 25 9-17
- Frey, H., Machguth, H., Huss, M., Huggel, C., Bajracharya, S., Bolch, T., ... & Stoffel, M. (2014). Estimating the volume of glaciers in the Himalayan-Karakoram region using different methods. *The Cryosphere*, 8(6), 2313-2333.
- Gaddam V K, Kulkarni A V and Gupta A K, 2016 .Estimation of glacial retreat and mass loss in Baspa basin, Western Himalaya *Spatial Information Research* 24 257-266
- Gaddam V K, Kulkarni, A V and Gupta A K , 2017. Reconstruction of Specific mass balance for glaciers in Western Himalaya using Seasonal Sensitivity Characteristics. *Journal of Earth System Science*, 127, 1-12
- Gurung, D. R., Giriraj, A., Aung, K. S., Shrestha, B. R., & Kulkarni, A. V. (2011). Snow-cover mapping and monitoring in the Hindu Kush-Himalayas. International Centre for Integrated Mountain Development (ICIMOD).
- H. S. Negi, N. Kanda, M. S. Shekhar, and A. Ganju, "Recent wintertime climatic variability over the North West Himalayan cryosphere," *Curr. Sci.*, vol. 114, no. 4, pp. 760-770, 2018.
- Hewitt, K., 2005; The Karakoram Anomaly? Glacier expansion and the 'Elevation Effect', *Karakoram Himalaya Mountain Research and Development* 25 332-340
- Hodgson, 1822. *Journal of a survey of the heads of the river Ganges and Yamuna*. *J. Asi. Res.* XIV. [12]
- Immerzeel, W. W., Lutz, A. F., Andrade, M., Bahl, A., Biemans, H., Bolch, T., ... & Emmer, A. (2019). Importance and vulnerability of the world's water towers. *Nature*, 1-6.
- Izzet Ullah, Mir. 1842. *Travels beyond the Himalaya*. *J. Asiatic Soc. Bengal*, 7, p 297.



- Khan A A, Pant N C, Ravindra R, Alok A, Gupta M and Gupta S.,2018; A precipitation perspective of the Hydrospherecryosphere interaction in the Himalaya Geological Society London Special Publications pp 462 <https://doi.org/10.1144/SP462.2>
- Krishnan et al. (2019) Unravelling Climate Change in the Hindu Kush Himalaya: Rapid Warming in the Mountains and Increasing Extremes. In: Wester P., Mishra A., Mukherji A., Shrestha A. (eds) The Hindu Kush Himalaya Assessment. Springer, Cham
- Kulkarni, A. V. & Buch, A. M. (1991). Glacier Atlas of Indian Himalaya, ISRO report number, SAC/RSA/RSAG-MWRD/SN/05/91.
- Kulkarni, A. V., & Shirsat, T. (2019). Snow and Glacier Hydrology. In Water Futures of India: Status of Science and Technology,
- Lavkush Kumar Patel, Parmanand Sharma, Meloth Thamban, Ajit Singh and Rasik Ravindra 2016 Debris control on glacier thinning—a case study of the Batal glacier, Chandra basin, Western Himalaya, Arabian Journal of Geoscience 9:309;
- Mandal A, Ramanathan A L and Angchuk T, 2014. Assessment of Lahaul-Spiti (western Himalaya, India) Glaciers-An Overview of Mass Balance and Climate Journal of Earth Science & Climatic Change 2 S11-001
- Mark W. Williams "The Status of Glaciers in the Hindu Kush–Himalayan Region," Mountain Research and Development 33(1), 114-115, (1 February 2013).
- Mayeswki, P.A. and Jeschke, P.A., 1979. Himalayan and Trans Himalayan glacier fluctuation since AD 1812. Arctic and Alpine Research, Vol. 11(3), 267-287.
- Mullar, F.,1958. Eight month of glacier and soil research in the Everest region. In: The Mountain world, New York, 191-200.
- Negi, H. S., Kanda, N., Shekhar, M. S., & Ganju, A. (2018). Recent wintertime climatic variability over the North West Himalayan cryosphere. Curr Sci, 114(4), 760-770.
- Nuimura, T., Sakai, A., Taniguchi, K., Nagai, H., Lamsal, D., Tsutaki, S., ... & Tsunematsu, K. (2015). The gamdam glacier inventory: a quality-controlled inventory of Asian glaciers. Cryosphere, 9(3).
- Patel L K, Sharma P, Laluraj C M, Thamban M, Singh A T and Ravindra R, 2016. A geospatial analysis of Samudra Tapu and Gepang Gath glacial lakes in the Chandra basin, Western Himalaya Natural Hazards doi:10.1007/s11069-017-2743-4
- Patel LK, Sharma P, Fathima TN, Thamban M (2018) Geospatial Observations of Topographical Control over the Glacier Retreat, Miyar Basin, Western Himalaya, India, Environ Earth Sci, 77: 190
- Patel, L.K., Sharma, P., Laluraj, C., Meloth., T., Singh, A., & Ravindra, R., (2017) A geospatial analysis of Samudra Tapu and Gepang Gath glacial lakes in the Chandra Basin, Western Himalaya. *Natural Hazards* 86: 1275-1290

- Pfeffer, W. T., Arendt, A. A., Bliss, A., Bolch, T., Cogley, J. G., Gardner, A. S., ... & Miles, E. S. (2014). The Randolph Glacier Inventory: a globally complete inventory of glaciers. *Journal of Glaciology*, 60(221), 537-552.
- Prasad, V., Kulkarni, A. V., Pradeep, S., Pratibha, S., Tawde, S. A., Shirsat, T., ... & Bannister, D. (2019). Large losses in glacier area and water availability by the end of twenty-first century under high emission scenario, Satluj basin, Himalaya. *Current Science*, 116(10), 1721.
- Pratap, B., Dobhal, D. P., Bhambri, R., Mehta, M., & Tewari, V. C. (2016). Four decades of glacier mass balance observations in the Indian Himalaya. *Regional Environmental Change*, 16(3), 643-658.
- Pratap, B., Sharma, P., Patel, L., Singh, A. T., Gaddam, V. K., Oulkar, S. and Thamban, M. (2019). Reconciling High Glacier Surface Melting in Summer with Air Temperature in the Semi-Arid Zone of Western Himalaya. *Water*, 11(8), 1561. (IF: 2.524)
- Raina V K and Srivastava D ,2008. *Glacier atlas of India* Geol.Soc. India, Bangalore, Publications 7
- Raina V K, 2009. A state-of-art review of glacial studies, glacial retreat and climate change. Discussion Paper, New Delhi: MOEF, 2009
- Raina V K, Kaul M K and Singh S., 1977. Mass balance of the Gara Glacier for 1974 75 *Journal of Glaciology* 18 415-423
- Sangewar, C. V., & Siddique, N. S. (2006). Thematic compilation of mass balance data on glaciers in Satluj catchment in Himachal Himalaya. *Rec GeolSurv India*, 141(pt 8), 159-161.
- Sattar, A., Goswami, A., & Kulkarni, A. V. (2019). Application of 1D and 2D hydrodynamic modeling to study glacial lake outburst flood (GLOF) and its impact on a hydropower station in Central Himalaya. *Natural Hazards*, 97(2), 535-553.
- Sharma P, Lavkush K Patel, Rasik Ravindra, Ajit Singh, Mahalinganathan K and MelothThamban (2016) [Role of debris cover to control specific ablation of adjoining Batal and Sutri Dhaka glaciers in Chandra Basin \(Himachal Pradesh\) during peak ablation season](#), *Journal of Earth System Science*, 125(3):459-473
- Sharma P., Patel L. K., Singh A. T., Meloth T. and Ravindra R. (2020) Glacier response to climate in Arctic and Himalaya during last seventeen years: A case study of Svalbard, Arctic and Chandra basin, Himalaya, In: Goel P., Ravindra R., Chattopadhyay S. (eds) *Climate Change and the White World*, Springer Cham ,139-15.
- Sharma S, Chand P, Bisht P, Shukla A D, Bartarya S K, Sundriyal Y P and Juyal N,2016. Factors responsible for driving the glaciation in the Sarchu Plain, eastern Zaskar Himalaya, during the late

- Sharma, A. K., Singh, S. K., & Kulkarni, A. V. (2013). Glacier inventory in Indus, Ganga and Brahmaputra basins of the Himalaya. *National Academy Science Letters*, 36(5), 497-505.
- Singh, A. T., Rahaman, W., Sharma, P., Laluraj, C. M., Patel, L. K., Pratap, B., Gaddam, V. K. and Thamban, M. (2019). Moisture sources for precipitation and hydrograph component of the Sutri Dhaka Glacier Basin, western Himalaya. *Water*, 11 (11), 2242; (IF: 2.524)
- Thayyen, R. J. and Gergan, J. T., 2010. Role of glaciers in watershed hydrology: a preliminary study of a "Himalayan catchment", *The Cryosphere*, 4, 115–128, <https://doi.org/10.5194/tc-4-115-2010>,.
- Treydte K S, Schleser G H, Helle G, Frank D C, Winger M, Huag G H and Esper J., 2006. The twentieth century was the wettest period in northern Pakistan over the past millennium *Nature* 440 1179-182, doi : 10.1038/nature04743
- V.Nagajothi, M. Geetha Priya and Parmanand Sharma (2019) Snow cover estimation of Western Himalayas using Sentinel -2, High spatial resolution data, *Indian Journal of Ecology*, 46(1), 88-93.
- Vohra, C P, 1981. Himalayan glaciers. In: *Himalayan aspects of change* Eds Lall J S and Maddie A D, Oxford University Press, Delhi, 138-151

## 5. उत्तरी ध्रुव - एक समग्र परिचय

प्रमोद भार्गव

वरिष्ठ लेखक, साहित्यकार और पत्रकार  
शिवपुरी म.प्र.



उत्तरी ध्रुव अर्थात् आर्कटिक पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव संबंधी शोध और अध्ययन लगातार आ रहे हैं। ये अध्ययन विशाल आकार के हिमखंडों के पिघलने, टूटने, दरारें पड़ने, पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के खिसकने, ध्रुवीय भालुओं के मानव आबादियों में घुसने और सील मछलियों में कमी, ऐसे प्राकृतिक संकेत हैं, जो पृथ्वी के बढ़ते तापमान का आर्कटिक पर प्रभाव प्रकट करने वाले हैं। बीते 40 सालों में एक दशक के भीतर ऐसी खबरें ज्यादा आई हैं। विशेष तौर से उत्तरी ध्रुव की स्थिति की जानकारी देने के लिए सजग प्रहरी के रूप में अनेक उपग्रहों की तैनाती दुनिया के देशों ने की हुई है। अमेरिका के 'नेशनल स्नो एंड साइंस डाटा सेंटर' के अध्ययन को सत्य मानें तो वर्ष 2014 में ही उत्तरी ध्रुव के 32.90 लाख वर्ग किमी क्षेत्र में बर्फ की परत पिघली है। यह क्षेत्रफल लगभग भारत-भूमि के बराबर है। इस संस्थान के अनुसार वर्ष 1979 में उत्तरी ध्रुव पर बर्फ जितनी कठोर थी, अब नहीं रह गई है। इसके ठोस हिमतल में 40 प्रतिशत की कमी आई है। हिमतल में एक साल में इतनी बड़ी मात्रा में आई तरलता इस बात की द्योतक है कि भविष्य में इसके पिघलने की गति और तेज हो सकती है।

### उत्तरी ध्रुव की प्रकृति-

लगभग नाशपाती के आकार की पृथ्वी के दो ध्रुव माने जाते हैं। इन्हें उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के नामों से जाना जाता है। भूमध्य या विषुवत् रेखा इन दोनों ध्रुवों से लगभग समान दूरी बनाए रखते हुए बीच से गुजरती है। इसीलिए इसे भूमध्य रेखा भी कहा जाता है। हालांकि इसे पृथ्वी की नाप के लिए काल्पनिक रेखा इसलिए माना गया है, क्योंकि यह उत्कीर्ण नहीं है। लेकिन पृथ्वी के केंद्र से गुजरने वाली इस रेखा की विशेषता यह है कि भूमध्य रेखा एक उभरे हुए भाग में दिखाई देती है। इस रेखा पर अर्धव्यास 6378.14 मीटर ध्रुवों के अर्धव्यास 6356.79 किमी से करीब 21 किमी अधिक है। यह अतिरिक्त अर्धव्यास ही पृथ्वी के समीप की कुछ कक्षाओं में अंतर उत्पन्न करता है। जैसे ही पूर्व की ओर जाने वाला उपग्रह दक्षिणी गोलार्ध से उत्तरी गोलार्ध की ओर जाता है, उसका कक्षीय तल विषुवत् रेखा पर गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के कारण पश्चिमोन्मुखी हो जाता है। यदि उपग्रह उसी दिशा में पूर्व की ओर जाता है तो कक्षीय तल पूर्वोन्मुखी हो जाता है। इस रेखा पर पूरे वर्ष दिन-रात बराबर होते हैं, इसलिए इसे विषुवत् रेखा कहा गया है। अन्य ग्रहों की विषुवत् रेखाओं को भी खगोलशास्त्रियों ने इसी

रूप में परिभाषित किया है। इस रेखा के उत्तरी ओर साढ़े 23 डिग्री पर कर्क रेखा और दक्षिणी ओर साढ़े 23 डिग्री पर ही मकर रेखा है। कर्क रेखा को उत्तरी अक्षांश रेखा भी कहा जाता है। इसी पर सूर्य दोपहर के समय लंबवत चमकता है। कर्क रेखा भारत के मध्य-क्षेत्र गुजरात, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, पश्चिम-बंगाल, त्रिपुरा एवं मिजोरम से गुजरती है। मकर रेखा, भूमध्य रेखा के समानांतर दक्षिण अक्षांश पर पश्चिम से पूर्व की ओर खींची गई है। मकर सक्रांति के दिन सूर्य मकर रेखा पर लंबवत् रहता है।

उत्तरी ध्रुव का कुल क्षेत्रफल 2.1 करोड़ वर्ग किमी है। इसमें से 1.30 करोड़ वर्ग किमी क्षेत्र की सतह बर्फ की मोटी परत से ढकी हुई है। बर्फ से आच्छादित होने के कारण यहां का औसत तापमान ऋणात्मक 10 डिग्री सेल्सियस है। जाड़ों में यह 68 डिग्री तक ऋणात्मक हो जाता है। बर्फ से ढके इसी क्षेत्र को आर्कटिक महासागर कहा जाता है। यह पांच महासागरों में से एक है। लेकिन सबसे छोटा महासागर है। सामान्यतः आर्कटिक का उल्लेख उस भाग के परिप्रेक्ष्य में होता है, जो आर्कटिक उत्तरी गोलार्ध (उत्तर में 66.30 अक्षांश) उत्तरी ध्रुव को घेरे हुए है। आर्कटिक का भू-क्षेत्र रूस के साइबेरिया के किनारों, आइसलैंड, ग्रीनलैंड, उत्तरी डेनमार्क, नार्वे, फिनलैंड, स्वीडन, अमेरिका, अलास्का, कनाडा का अधिकांश उत्तरी महाद्वीपीय भाग और आर्कटिक टापुओं के समुदाय तथा अन्य अनेक द्वीप तक फैला है। औद्योगिक विकास के लिए खनिज संपदा की लूट हेतु यहां व्यापारिक गतिविधियां तेज हुई हैं। तेल, प्राकृतिक गैस और कोयला के इस क्षेत्र में अकूत भंडार हैं। इस कारण यहां पारिस्थितिकी तंत्र गड़बड़ाने लगा है। नतीजतन यहां पाए जाने वाले जलीय व थलीय जीव ध्रुवीय भालू, सील, बैल्गाह्वेल, नरह्वेल, नीली ह्वेल और वेलर्स के लिए अस्तित्व बचाए रखने का संकट पैदा हो गया है।

### पृथ्वी का केंद्र बिंदु-

चूंकि हम उत्तरी और दक्षिण ध्रुव के साथ भूमध्य, कर्क व मकर रेखा की बात कर रहे हैं, तो यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि आखिर पृथ्वी का केंद्र बिंदु है कहां? भौगोलिक गणना के अनुसार प्राचीन आचार्यों ने उज्जैन को शून्य (0) रेखांश पर माना है। कर्क रेखा भी यहीं से गुजरती है। अर्थात्, कर्क और भूमध्य रेखा एक-दूसरे को यहीं उज्जयिनी में काटती हैं। यहां के विश्व प्रसिद्ध महाकाल मंदिर के 'महाकाल' नामाकरण से तात्पर्य काल-गणना और भौगोलिक स्थितियों को जानना भी है। इसी कारण इसे पृथ्वी का नाभी स्थल या केंद्र बिंदु भी माना जाता है। यहां सूर्य सिद्धांत के अनुसार समय गणना कर पंचांग निर्माण की भी प्राचीन परंपरा है। खगोलीय गणना के लिए यहां सम्राट विक्रमादित्य के समय निर्मित की गई वेधशाला भी है। इसे जंतर-मंतर के नाम से भी जाना जाता है। प्रसिद्ध भारतीय खगोलविद् भास्कराचार्य ने पृथ्वी की मध्य-रेखा का वर्णन इस प्रकार किया है, 'जो रेखा लंका और उज्जयिनी से होकर रोहतक और कुरुक्षेत्र को स्पर्श करती हुई सुमेरु पर्वत से मिलती है, उसे भूमध्य रेखा कहते हैं। भूमध्य रेखा, कर्क रेखा को केवल उज्जैन में ही काटती है। इसलिए उज्जैन को काल-गणना का उपयुक्त स्थल माना गया है।

### उत्तरी ध्रुव की स्थिति-

उत्तरी ध्रुव हमारे ग्रह पृथ्वी का सबसे सुंदर उत्तरी बिंदु है। मान्यता है कि यहीं पर पृथ्वी की धुरी घूमती है। यह स्थल आर्कटिक महासागर में स्थित है। यहां अत्याधिक ठंड पड़ती है, क्योंकि छह माह तक सूर्य लुप्त रहता है। यहां हमें शा सफेद बर्फीली चादर बिछी रहती है। इस भौगोलिक उत्तरी ध्रुव के निकट ही, चुंबकीय उत्तरी ध्रुव है। इसी चुंबकीय शक्ति से आकर्षित होकर कंपास की सुई दिशा-संकेत

देती है। उत्तरी तारा या 'ध्रुव-तारा' उत्तरी ध्रुव के आकाश पर निरंतर चमकता दिखाई देता है। शताब्दियों से नाविक इसी तारे को देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि वे उत्तर से कितनी दूर हैं। यह क्षेत्र आर्कटिक परिधि भी कहलाता है। क्योंकि यहां अर्धरात्रि के सूर्य (मिडनाइट सन) और ध्रुवीय रात्रि (पोलर नाइट) का अद्वितीय दृश्य देखने को मिलता है। प्राचीन खगोलविदों में से एक वराहमिहिर का जन्म भी उज्जैन के कायथा ग्राम में शक संवत् 427 में हुआ था। उन्होंने उज्जैन को पृथ्वी का केंद्र बिंदु मानते हुए अनेक खगोलीय और ज्योतिषीय सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं।

### अटल ध्रुव तारा-

चूंकि ध्रुव-तारा इसी उत्तरी ध्रुव पर चुंबकीय शक्ति का प्रमुख आधार है, यहां के आकाश पर निरंतर प्रकाशमान रहता है और दिशा सूचक कंपास के लिए दिशा-बोधक भी है, इसलिए इस अटल ध्रुव तारे को थोड़ा आधुनिक विज्ञान और थोड़ा भारतीय वैदिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जानना जरूरी है। ध्रुव-तारा हमें गतिशील नक्षत्र मंडलों के बीच स्थिर दिखाई देता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि नक्षत्र पृथ्वी की परिक्रमा नहीं करते, वरन पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। फलतः हमें भ्रम होता है कि नक्षत्र हमारे चक्कर लगा रहे हैं। वसुंधरा जिस धुरी पर घूर्णन करती है ध्रुव-तारा एकदम उसकी सीध में है, नतीजतन वह अविचलित अथवा अटल दिखाई देता है। किंतु हम जानते हैं कि कुम्हार के चाक की धुरी पर चाक जिस तरह डोलता है, पृथ्वी भी उसी प्रकार अपने अक्ष पर डोलती है। इस प्रकार की स्थिति को विज्ञान की भाषा में पुरस्सरण (पोलैरिस) कहते हैं। पृथ्वी को एक पुरस्सरण चक्र पूरा करने में 26,000 वर्ष लगते हैं। इन 26,000 वर्षों में से 13,000 वर्ष ध्रुव-तारा पृथ्वी के अक्ष की दिशा में रहता है, अतैव स्थिर दिखाई देता है। परंतु 13,000 वर्ष बाद ध्रुव तारे के समतुल्य ही पृथ्वी के अक्ष की दिशा में एक दूसरा 'वेगा' तारा आ जाता है। गोया, अगले 13,000 वर्ष यह भी स्थिर दिखाई देता है।

इस ध्रुव तारे का नाम 'ध्रुव' भारतीय ज्ञान परंपरा में हजारों साल से चला आ रहा है। विष्णु भक्त ध्रुव के रूप में इस कथा को हम भलीभांति जानते हैं। ध्रुव की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ध्रुव को वरदान देते हैं, 'हे ध्रुव, मैं तुम्हें वह ध्रुव स्थान देता हूं, जहां तुम एक कल्प तक निश्चल रहते हुए राज करोगे। यह स्थान सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, सप्तर्षियों और संपूर्ण विमानचारी देवगणों से ऊपर है।' भारतीय वेदों में एक कल्प को 13,000 वर्षों में परिभाषित किया गया है। इस कथन से स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषि-मुनियों को ध्रुव और वेगा तारों की स्थिति और उनके एक स्थान पर 13-13 हजार वर्ष तक निश्चल रहने का ज्ञान था।

### आर्कटिक के हिमखंडों का पिघलना-

जलवायु परिवर्तन के अनेक दुष्परिणाम देखने में आ रहे हैं। इनमें से एक उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव क्षेत्रों में पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के चलते बर्फ का पिघलना भी है। अत्यधिक गर्मी अथवा सर्दी का पड़ना भी इसी के कारक माने जा रहे हैं। वैज्ञानिकों की यह चिंता तब और ज्यादा बढ़ गई, जब अंटार्कटिका में तैर रहे फ्रांस से भी बड़े आकार के हिमनद (ग्लेशियर) टॉटेन के पिघलने की जानकारी अनुमानों से कहीं ज्यादा निकली। यानी अभी तक जो अनुमान लगाए गए थे, उसकी तुलना में यह विशालकाय हिमनद कहीं ज्यादा तेजी से पिघल रहा है। इससे समुद्र का जलस्तर बढ़ने की भी आशंका

प्रकट की जा रही है। सेंट्रल वाशिंगटन यूनिवर्सिटी के पॉल बिनबेरी द्वारा किए गए एक अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक, 'अध्ययन से पहले हमें लगता था कि टॉटेन हिमखंड की बर्फ स्थिर है। लेकिन जलवायु परिवर्तन के असर के चलते इसकी स्थिरता में बदलाव आ रहा है और तेजी से यह पिघल रहा है और यह सबसे तेज गति से चलायमान हिमखंड है। अर्थात, इसके पिघलने के खतरे ज्यादा हैं। क्योंकि यह यदि अधिक तापमान वाले क्षेत्र में पहुंच गया तो और ज्यादा तीव्रता से पिघलेगा। इसलिए हिमनद वैज्ञानिक टॉटेन के प्रति संवेदनशील रुख अपनाए हुए है कि यह कैसे और किस गति से पिघल रहा है, इस प्रक्रिया को समझने-समझाने की कोशिश में लगे हैं। अमेरिका के नेशनल स्नो एंड आइस सेंटर ने दावा किया है कि 32.90 लाख वर्ग किमी क्षेत्र से उत्तरी ध्रुव पर बर्फ पिघली है। भारत से यह क्षेत्र 98,63 किमी दूर है।

### हिमालय के पिघलते हिमनद

भारतीय क्षेत्र में आने वाले हिमखंड भी पिघल रहे हैं। भारतीय भूवैज्ञानिक डॉ. अनिल बी. कुलकर्णी और उनके अध्ययन दल द्वारा हिमाचल प्रदेश के 466 हिमनदों के उपग्रह, चित्रों और जमीनी पड़ताल से मिले निष्कर्ष चौंकाने वाले हैं। वर्ष 1962 के बाद से एक वर्ग किमी क्षेत्रफल में स्थित 162 हिमनदों का आकार 38 प्रतिशत कम हो गया है। बड़े हिमनद तो और तेजी से पिघल रहे हैं। वे लगभग 12 प्रतिशत छोटे हो गए हैं। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि हिमाचल-प्रदेश में हिमनदों का कुल क्षेत्रफल 2077 वर्ग किमी से घटकर 1628 वर्ग किमी रह गया है। मसलन बीते चार दशकों में इनका आकार 21 प्रतिशत घटा है। कुलकर्णी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के स्पेस एप्लीकेशन सेंटर (एसएसी) में हिमनद विशेषज्ञ हैं। इन हिमनदों के पिघलने का संकेत वे प्रवासी पक्षी भी दे रहे हैं, जो प्रति वर्ष जाड़ों में यहां डेरा डालकर प्रजनन करते हैं। इनकी आमद निरंतर घट रही है। हिमालय के हिमखंड भी टूट रहे हैं। दो साल पहले गंगोत्री को पानी देने वाला एक बड़ा हिमखंड टूटकर गंगा में समा गया।

### बर्फ पिघलने से बढ़ा महामारी का खतरा

वैश्विक तापमान से होने वाले नुकसान की परतें धीरे-धीरे खुल रही हैं। अब तक हम केवल इतना ही मानते थे कि बर्फ के पिघलने से आर्कटिक का समुद्र ऊपर उठ जाएगा और तमाम समुद्र तटीय शहर इसमें समा जाएंगे। अब वैज्ञानिकों ने ऐसी चिंता जताई है, जो वास्तव में गंभीर है। फ्रांस की एक्समासिएली यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं की अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार उत्तरी ध्रुव की बर्फ के नीचे जमी मिट्टी की परत (पर्माफ्रॉस्ट) में हजारों वर्षों से कई घातक जीवाणु-विषाणु छिपे हैं। अगर भविष्य में यह परत पिघली तो ये खतरनाक रोगाणु खुले में आ जाएंगे। जैसे कि वन्य-जीवों की श्रृंखला टूटने व प्रत्येक प्राणी को आहार बना लेने के हालातों ने कोविड-19 विषाणु को जन्म दे दिया है। अतैव मिट्टी की परत छिन्न-भिन्न होती है तो चेचक और पोलियो जैसे रोग फिर से मानव समुदायों के जीवन के लिए संकट बन सकते हैं।

दरअसल, पर्माफ्रॉस्ट की मिट्टी में ऐसे जीवाणु व विषाणुओं को संरक्षित बनाए रखने की क्षमता है। वैज्ञानिकों को मिट्टी की ऊपरी परतों में ही कई प्रकार के रोगाणु मिले हैं, जो मनुष्य के लिए घातक हैं। वैज्ञानिकों को डर है कि जो चेचक सन् 1979 में जड़ से समाप्त कर दी थी, वह कहीं फिर फैल न जाए? यह परत अति सूक्ष्म रोगाणुओं के लिए इसलिए अनुकूल ठिकाना है, क्योंकि यह स्थान ठंडा और अंधकारमय होता है। यह परिवेश जीवाणु-विषाणुओं के लिए अत्यंत अनुकूल है। इन परतों के बिखरने की स्थिति आर्कटिक में खनिज तेल और गैसों के लिए किए जा रहे खनन से भी बन रही है।

## उत्तरी ध्रुव का खिसकना-

जब भी आप दिशा-सूचक कंपास को दिशा-बोध के लिए हथेली पर रखते हैं तो सुई उत्तरी ध्रुव में उपलब्ध शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव में आ जाने के कारण उत्तर की ओर इशारा करती है। सदियों से इसी चुंबकीय संकेत से जहाजों एवं नौकाओं के नाविक और हवाई-जहाजों के पायलट अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं। शोधकर्ता भी दिशा-बोध के लिए कंपास का सहारा लेते हैं। लेकिन नए अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि उत्तरी ध्रुव का चुंबकीय क्षेत्र तीव्रता से खिसक रहा है। विश्व चुंबकीय प्रतिदर्श (डब्ल्यूएमएम) द्वारा सितंबर 2020 में जारी की गई गणना के मुताबिक, उत्तरी चुंबकीय ध्रुव रूस की ओर 40 किमी प्रतिवर्ष की गति से खिसक रहा है। वर्तमान में यह गणना उत्तरी चुंबकीय ध्रुव कनाडा के एल्समेरे द्वीप को आधार मानकर की जाती है। यदि इसके खिसकने की यही रफ्तार रही तो इस मानक को रूस के पास ले जाना पड़ेगा। इस मानक मॉडल को 'नेशनल सेंटर फॉर एनवायरमेंटल इन्फॉर्मेशन' तैयार करता है, जो ब्रिटिश जियोलॉजिकल सर्वे का अनुषांगिक संगठन है।

चुंबकीय ध्रुव खिसकने के कारण अब समुद्री एवं हवाई यात्राओं के दौरान चालकों को दिशा का ज्ञान करना मुश्किल हो रहा है। इस वजह से खासतौर से जलमार्गों के दिशा-बोधक अनुमान गड़बड़ाने लगे हैं। नतीजतन 4 फरवरी 2019 को एक अद्यतन रिपोर्ट जारी की गई कि आखिर चुंबकीय उत्तरी ध्रुव वास्तव में है कहां? कॉलराडो यूनिवर्सिटी के भू-भौतिकविद् और नवीन विश्व चुंबकीय प्रतिदर्श के प्रमुख शोधकर्ता अर्नोड चुलियट के अनुसार 'लगातार बदल रहे इसके स्थल की वजह से स्मार्टफोन और अन्य संचार व विद्युतीय उपकरणों के कंपासों में समस्या आने लगी है। दरअसल नौवहन सेना और पैराशूट से उतरने के लिए इस बात पर निर्भर रहना पड़ता है कि अंततः उत्तरी चुंबकीय ध्रुव कहां है। नासा, विमानन सेवा और अमेरिकी वन सेवा में भी उपरोक्त उपकरणों को प्रयोग में लाया जाता है।

मेंरीलैंड यूनिवर्सिटी के भू-भौतिकीविद् डेनियल लेथ्रोप द्वारा दी गई जानकारी के मुताबिक इसका कारण पृथ्वी की बाहरी कोर में हलचल होना है। ग्रह के कोर में लोहा और निकेल का गर्म तरल महासागर है, इसमें हलचल से विद्युतीय क्षेत्र पैदा होता है। हालांकि चुंबकीय ध्रुव के तेजी से खिसकने का अभी सटीक कारण भू-विज्ञानी ज्ञात नहीं कर पाए हैं। ऐसा भी नहीं है कि उत्तरी ध्रुव के खिसकने की जानकारी कोई पहली बार मिल रही हो, इसके पहले कनाडा के एक्सप्लोरर जेम्स क्लार्क रॉस ने सन् 1830 में पहली बार इसी तरह की जानकारी दी थी। एक अन्य अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि वर्ष 2000 में पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव ने अपने खिसकने की दिशा ग्रीनविच में रिडियन (लंदन) की ओर कर दी है। अनुमान है कि यह परिवर्तन धरती पर पानी के वितरण में बदलाव और ध्रुवीय बर्फ के पिघलने के कारण हुआ है। इसे जलवायु परिवर्तन की वजह माना गया है। बीसवीं सदी में उत्तरी ध्रुव टोरंटो और पनामा शहर को जोड़ने वाली देशांतर रेखा पर कनाडा की हडसन खाड़ी की ओर बढ़ रहा था। इस परिवर्तन का कारण यह था कि पिछले हिमयुग के बाद पृथ्वी की परतों में द्रव्यमान का पुनर्वितरण हुआ था। किंतु वर्ष 2000 में नाटकीय ढंग से इस दिशा में 75 डिग्री का अंतर आया और पृथ्वी का अक्ष ग्रीनविच मेरीडियन की ओर बढ़ने लगा। ऐसा माना गया है कि ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका की बर्फीली चादर के सिकुड़ने की वजह से ऐसा हुआ।

इस परिप्रेक्ष्य में किए एक अन्य अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि धरती पर पानी का पुनर्वितरण व भरण भी इसका एक कारण है। इस अध्ययन के प्रमुख नासा की जेट प्रपल्शन प्रयोगशाला के सुरेंद्र अधिकारी हैं। अधिकारी के अनुसार, वैश्विक स्तर पर पानी के पुनर्वितरण व भरण से पृथ्वी की घूर्णन प्रक्रिया पर असर पड़ता है। भारतीय उपमहाद्वीप और केस्पियन सागर तेजी से भारी मात्रा में पानी नष्ट कर रहे हैं। वर्ष 2003 में ग्रीनलैंड में प्रतिवर्ष 2720 खरब किलोग्राम बर्फ पानी बनकर बह गई। इसी प्रकार पश्चिमी अंटार्कटिका से 1240 खरब तथा पूर्वी अंटार्कटिका से 740 खरब किलोग्राम बर्फ बहकर



चली जाती है। इस अध्ययन के लिए ग्रेस उपग्रह के आंकड़े प्रयोग में लाए गए हैं। इस उपग्रह के माध्यम से सन् 2002 से 2015 के दरम्यान इन तथ्यों को खोजा गया है कि जलराशियों के वितरण पर पृथ्वी की घूर्णन अक्ष की दिशा से क्या अंतर्संबंध हैं। इसके परिणामों से यह भी पता चला है कि पृथ्वी इन जलराशियों के प्रभाव से डोलती भी है।

ध्रुवीय बदलाव पर दुनिया के पारिस्थितिकी तंत्र पर होने वाले असर को लेकर भू-विज्ञानी एकमत नहीं हैं। कुछ विशेषज्ञ इस बदलाव को विनाशकारी मानते हैं। जिसमें भूकंप और सुनामी जैसे खतरे शामिल हैं। लेकिन दूसरे विज्ञानी इन प्रलयकारी भविष्यवाणियों को डरावनी और बेबुनियाद बताते हुए खारिज करते हैं। इनका मत है कि पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र अनुमानों के मुताबिक 150 साल में 1102 वर्ग किमी खिसका है। 35 करोड़ वर्ष में ऐसा 400 बार हो चुका है। इ ऐसे बदलाव में एक हजार या इससे अधिक वर्ष लगते हैं। महत्वपूर्ण बदलाव 7 लाख 80 हजार वर्ष पूर्व हुआ था। यह आखिरी बदलाव था, अमेरिका के जियोलॉजीकल सर्वे के जेफरी लव का तर्क है कि बड़े और प्रभावी बदलाव में एक लाख वर्ष लग सकते हैं और दस हजार वर्ष पहले मानव सभ्यता अस्तित्व में आई है। गोया, अक्ष परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत धीमी है, इसलिए हमें व्यर्थ की चिंताएं करने की आवश्यकता ही नहीं है।

### उत्तरी ध्रुव पर ठहरा है समय

पृथ्वी के सभी स्थानों पर समय की माप आकाश में सूर्य की वर्तमान स्थिति से की जाती है। हम भलीभाँति जानते हैं कि प्रातः पूरब दिशा से सूर्यादय होता है, दिन के मध्य, यानी दोपहर को सूर्य हमारे सिर के ऊपर पहुंच जाता है और गोधूलि वेला में पश्चिम में अस्त हो जाता है। परंतु उत्तरी ध्रुव पर सूरज की यह नियमितता गड़बड़ा जाती है। क्योंकि उत्तरी ध्रुव पर सूर्य केवल एक बार उदय और एक बार डूबता है। इसलिए यहां समय का निर्धारण संभव नहीं हो पाता है। उत्तरी ध्रुव पर जाने वाले यात्री अपनी सुविधा के अनुसार किसी भी समय मापन का उपयोग कर लेते हैं। यह ग्रीनविच मीनटाइम भी हो सकता है या फिर यात्री जिस देश से आए होते हैं, उस देश का भी मानक समय उपयोग में ला सकते हैं।

### उत्तरी ध्रुव की जनजातियां

उत्तरी ध्रुव पर एक तो तापमान बहुत कम है, दूसरे यहां खुली भूमि भी नहीं है। फिर छह माह दिन और छह माह रात रहती है। सूर्य एक बार ही उदय व अस्त होता है। बर्फ की मोटी परत के नीचे केवल अत्यंत शीतल महासागर है। इसलिए यहां मानव जीवन शून्य है। परंतु आर्कटिक व्यास में कुछ जनजातियां हजारों साल से रहती चली आ रही हैं। इन्होंने अपने को यहां की प्रकृति के अनुरूप ढाल लिया है। एस्किमो और इनयीट नाम की ये जनजातियां मुख्य रूप से ग्रीनलैंड, कनाडा और अलास्का के बर्फीले सीमांत क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

### उत्तरी ध्रुव पर पहुंचने के दावे

पृथ्वी के जटिल सरंचना वाले उत्तरी ध्रुव पर दो पुरुषों और एक महिला ने पहुंचने का दावा भी किया है। फ्रेडरिक कुक ने 21 अप्रैल 1908 को अपने दो एस्किमो साथियों अहह्ले और इट्टकीशॉक के साथ सबसे पहले उत्तरी ध्रुव पर पहुंचने का दावा किया था। दूसरा दावा रॉबर्ट एडविन पेयरी ने किया था। रॉबर्ट का कहना था कि वह एस्किमो जनजाति के चार लोगों के साथ उत्तरी ध्रुव पर सबसे पहले पहुंचा था। रॉबर्ट ने अपने साथियों के नाम ओटाय, सीगलो, इजिनवाह एवं ओक्यूज बताए थे। इन दोनों ही दावों को विश्वसनीय नहीं माना गया। पृथ्वी की छत माने जाने वाले इस उत्तरी ध्रुव पर सबसे पहले एन बेनक्रॉफ्ट नाम की महिला पहुंची थी।

## उत्तरी ध्रुव पर अधिकार

अंतरराष्ट्रीय नियमों के अनुसार, फिलहाल उत्तरी ध्रुव और इसके आसपास के आर्कटिक महासागर पर किसी भी देश का आधिपत्य नहीं है। इसके सीमांत देश रूस, कनाडा, नार्वे, डेनमार्क (ग्रीनलैंड के जरिए) और अमेरिका (अलास्का के जरिए) अपनी सीमाओं के 200 नॉटिकल मील अर्थात् 370 किमी तक के अनन्य आर्थिक क्षेत्र तक सीमित हैं। इसके आगे के क्षेत्र का प्रशासकीय दायित्व अंतरराष्ट्रीय समुद्र तल प्राधिकरण के पास है। इसके अलावा स्वीडन, फिनलैंड, आइसलैंड जैसे देश भी इस ध्रुवीय क्षेत्र की प्राकृतिक संपदा का दोहन व उपयोग करना चाहते हैं। यहां तेल, गैस, कोयला और अनेक खनिजों के विशाल व अटूट भंडार हैं। रूस द्वारा आर्कटिक सागर में सेना की उपस्थिति बढ़ा देने के बाद से यहां प्रतिस्पर्धा और संघर्ष का नया दौर शुरू हो गया है। अमेरिका, कनाडा और चीन भी इस होड़ में शामिल होने की पहल में लगे हैं। कनाडा ने इस लिहाज से अटलांटिक महासागर में अपनी सीमा बढ़ाने की मांग का आवेदन संयुक्त राष्ट्र संघ को दिया है। अतः यह सैन्य व रणनीतिक गतिविधियों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो गया है। परिवहन, पर्यटन और अध्ययन के लिए उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पहले से ही जिज्ञासा पूर्ति के केंद्र में हैं।

## उत्तरी ध्रुव की संपदा का दोहन

उत्तरी ध्रुव पर आ रहे अनेक परिवर्तनों के कारण जलवायु परिवर्तन की पृष्ठभूमि में देख सकते हैं। कुछ देशों ने अंतरराष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करते हुए इस दूरस्थ आर्कटिक सागर की प्राकृतिक संपदा के दोहन के अभियान ही चला दिए हैं। इस सागर पर आधिपत्य जमाने की शुरूआत अगस्त 2007 से हुई। 2 अगस्त को रूस की दो पनडुब्बियों मीर-1 तथा मीर-2 उत्तरी ध्रुव पर बिछी मोटी बर्फाली परत के नीचे आर्कटिक समुद्री तल पर पहुंच गईं और रूसी झंडा भी फहरा दिया। दुनिया के ज्ञात इतिहास में यह पहला अवसर था, जब किसी एक देश का अभियान दल इस समुद्र के तल पर पहुंचा था। इस अभियान को यहां की प्रकृति के अनुसंधान का बहाना बताया गया। इससे अमेरिका और चीन सहित अनेक देशों के कान खड़े हो गए। नतीजतन आर्कटिक की समुद्री सीमा से जुड़े आठ देश, वहां मौजूद तेल, गैस, कोयला और अन्य बहुमूल्य संपदा की तलाश में जुट गए। सैनिकों के प्रशिक्षण और पर्यटन से भी यह इलाका प्रभावित हो रहा है। दावे-प्रतिदावे, जो भी हों, अंततः उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव और आर्कटिक सागर किसी देश की संपत्ति कैसे हो सकते हैं? यदि चंद देशों ने यहां की संपदा पर अनाधिकृत अधिकार जमाकर गर्भ में समाई संपदा का दोहन शुरू कर दिया तो ये देश अपनी आर्थिक एवं सामरिक शक्ति बढ़ाकर, अन्य देशों पर रौब झाड़ेंगे? अतः भारत को सार्थक हस्तक्षेप कर यह पहल करनी चाहिए कि उत्तरी ध्रुव समूचे विश्व का होने के साथ प्रकृति की अनूठी धरोहर है। कुछ देशों के आर्थिक हितों के लिए, इससे खिलवाड़ दुनिया के लिए घातक साबित हो सकता है।

## संदर्भ

- [https://bharatdiscovery.org/india/उत्तरी\\_ध्रुव#gsc.tab=0](https://bharatdiscovery.org/india/उत्तरी_ध्रुव#gsc.tab=0)
- अमर उजाला, दिल्ली-दिनांक-11.12.2013
- आर्कटिक में भारतीय वैज्ञानिक प्रयास, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार। <https://www.moes.gov.in/hi/content/indian-scientific-endeavors-arctic>
- इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए-अप्रैल-2019
- उज्जयिनी प्रतिकल्पा-संपादक: कल्याण कुमार चक्रवर्ती
- ड्रीमलैंड स्कूल एटलस, नई दिल्ली

- ताज मोहम्मद शेख 21, अक्टूबर, 2018 उत्तरी ध्रुव की अनोखी दुनिया। नेट इन हिंदी.कॉम  
<https://netinhindi.com/north-pole-in-hindi/>
- दैनिक जागरण, दिल्ली-दिनांक-21.3.18
- धर्मयुग- 28 जुलाई से 3 अगस्त 1985
- नवभारत टाइम्स, 6 फरवरी, 2019, खिसक रहा है चुंबकीय उत्तरी ध्रुव  
<https://navbharattimes.indiatimes.com/world/science-news/magnetic-north-pole-is-on-the-move-compass-not-working-properly/articleshow/67849325.cms>
- पत्रिका-दिनांक-25.1.2020
- पानी में प्रदूषण-प्रमोद भार्गव
- स्रोत, जून-2016, अगस्त-2007 एवं जनवरी-2013

## 6. महासागरीय संसाधन

नवनीत कुमार गुप्ता  
विज्ञान प्रसार, सी—24, कुतुब संस्थानिक क्षेत्र  
नई दिल्ली



महासागरों ने अपने गर्भ में अथाह संपदा छुपा रखी है, तभी तो महासागर हमारे लिए अनमोल धरोहर है। महासागर खाद्य पदार्थों, रसायनों, औषधियों, खनिजों, गैस और पेट्रोलियम जैसे ऊर्जा स्रोत का अथाह भंडार है जो हमारी जरूरतों को लगातार पूरा करने में समर्थ है। इसके अलावा महासागर में गैस हाइड्रेट, प्लेसर निक्षेप, फास्फोराइट आदि भी मिलते हैं, जो हमारे लिए उपयोगी हैं।

यह प्रकृति की व्यवस्था ही है कि धरती से महासागरों में पहुंचे खनिज का उपयोग वहां रहने वाले विभिन्न जीव और वनस्पतियां करते हैं। हालांकि अब मानव भी महासागर से खनिजों का खनन कर उनका उपयोग करने लगा है। खनिज, तेल, पेट्रोलियम एवं गैस यह सब हमारी पृथ्वी पर भी मिलते हैं। जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण हमारी जरूरतें लगातार बढ़ रही हैं जिससे इन चीजों की खपत भी बढ़ रही है। भूमि पर पाई जाने वाली ये वस्तुएं हमारी बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी नहीं हैं, इसलिए हमें महासागरों में उपस्थित संपदाओं को निकालना पड़ता है। लगभग सभी रासायनिक और भूगर्भीय संपदा और लगभग 90 प्रतिशत जैविक संपदा हमें गहरे महासागर के भीतर महाद्वीपीय शेल्व से मिलती है। महाद्वीपीय शेल्व का विस्तार तट से महासागर की ओर लगभग 1,300 किलोमीटर तक होता है और इसकी गहराई 50 से 500 मीटर तक होती है।

## संसाधनों का जमाव

करोड़ों वर्षों से पृथ्वी पर बारिश होती रही और उसका जल पौष्टिक तत्वों को अपने साथ महासागर में मिलाता रहा। इस प्रक्रिया के कारण जल में घुल सकने वाले पौष्टिक तत्व महासागर में जमा होते रहे। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटॉश सहित आयोडीन, फिल्योरीन, बोरोन, मैंगनीज, तांबा, जस्ता और अन्य अनेक तत्व महासागर के जल में समाहित हो गए। इस प्रकार पृथ्वी से लंबी प्रक्रिया के बाद अनेक तत्व महासागरों में काफी मात्रा में जमा हो गए।

## सजीव एवं निर्जीव संसाधन

महासागर काफी मात्रा में सजीव और निर्जीव संसाधनों को सम्मिलित करते हैं। सजीव संसाधनों के अंतर्गत मछलियां, घोंघे, केकड़ें, झींगे एवं प्लवक, समुद्री घास आदि शामिल हैं। महासागर के गर्भ में खाद्य पदार्थ के रूप में मछलियों के अलावा घोंघे, झींगे और केकड़ें उपस्थित होते हैं।

## मत्स्य संसाधन

मानव अपनी भूख शांत करने के लिए सदियों से मछलियां पकड़ कर खाते थे। उसी तरह आज भी मछली पालन बहुत से देशों की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग हैं। महासागर से निकाली जाने वाली मछलियां करोड़ों लोगों का पेट भरती हैं। महासागरीय खाद्य पदार्थ पशुओं के लिए प्रोटीन का उत्तम स्रोत हैं। भारत का मत्स्योत्पादन अपने उत्तम प्रबंधन के कारण ही संपूर्ण विश्व में न केवल खाद्य स्रोतों अपितु निर्यात क्षेत्र के रूप में भी व्यापकता से उभरा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के 'खाद्य और कृषि संगठन' के अनुसार पूरे संसार में लगभग 2 करोड़ 40 लाख टन मछली हर वर्ष पकड़ी जाती है और इनमें से लगभग आधी मात्रा एशिया के उष्ण समुद्रों से प्राप्त होती हैं। मछली उत्पादन में हमारे देश का महत्वपूर्ण स्थान है।

देश में मात्स्यिकी और जल कृषि में हुई तेज प्रगति से मछली पालकों और किसानों की आमदनी लगातार बढ़ रही है और आने वाले दिनों में यह बड़े पैमाने पर मछली पालकों और किसानों को आर्थिक लाभ पहुंचाएगा। मछली उत्पादन में भारत, विश्व में चीन के बाद लगातार दूसरे नंबर पर बना हुआ है। देश में मात्स्यिकी एक बड़ा सेक्टर है और लगभग डेढ़ करोड़ लाख लोग मत्स्य व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। श्रीम्प (झींगा) मछली में भारत विश्व में प्रथम स्थान रखता है और यह झींगा का सबसे बड़ा निर्यातक है।

सभी मत्स्य उत्पादन मिलाकर, वर्ष 2015-16 में देश में अनुमानित 10.8 मिलियन टन मछली उत्पादन हुआ, जो कि विश्व के कुल मछली उत्पादन का लगभग 6.4 प्रतिशत है। भारत जल कृषि से मछली उत्पादन करने वाला दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक (42.10 लाख टन) देश है। वैश्विक जलकृषि उत्पादन में यह लगभग 6.3 प्रतिशत का योगदान करता है। पिछले एक दशक में जहाँ विश्व में मछली एवं मत्स्य-उत्पादों के निर्यात की औसत वार्षिक विकास दर 7.5 प्रतिशत रही, वही भारत मत्स्य-उत्पादों के निर्यात में 14.8 प्रतिशत की औसत वार्षिक विकास दर के साथ विश्व में प्रथम स्थान पर रहा।

सरकार ने भी मत्स्य विकास पर जोर दिया है और एक्वाकल्चर तथा समुद्री फिशरीज़ द्वारा मत्स्य पालकों तथा मछुआरों, किसानों की आय वर्ष 2022 तक दो गुना करने का लक्ष्य रखा है। अंतर्देशीय फिशरीज़ से 72.1 लाख टन मछली उत्पादन कर भारत विश्व में दूसरा स्थान रखता है और भारत अंतर्देशीय मत्स्य पालन में लगभग 8.0 प्रतिशत की विकास दर हासिल कर सकता है।

## जीवाश्म ईंधन

एक समय जहां विशाल जंगल थे वहां कार्बनिक पदार्थ पेड़ों, झाड़ियों और अन्य पदार्थों के नीचे दबने से दाब के कारण कोयले में बदल गया। महासागर हमारी पृथ्वी पर पाये जाने वाले खनिज, तेल और गैस का सबसे बड़ा भंडार है। खनिज, तेल, पेट्रोलियम, गैस यह सारी चीजें पृथ्वी पर भी पाई जाती हैं।

महासागर से ऊर्जा के स्रोत के रूप में पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस और गंधक मिलते हैं। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस ऊर्जा के प्रमुख स्रोत हैं। आजकल हम प्राकृतिक गैस, डीजल और पेट्रोलियम से बिजली उत्पादन करते हैं हमारा सारा परिवहन वायु, जल या भूमि पर हाइड्रोकार्बन के रूप में पेट्रोलियम या गैस पर निर्भर है। महासागर ऊर्जा का एक प्रमुख स्रोत है। गैस और पेट्रोलियम आज के दौर में भू-गर्भ शास्त्रियों, रसायन वैज्ञानिकों और अन्वेषकों के लिए काफी दिलचस्प विषय हैं। गैस और पेट्रोलियम तो महासागर से मिलने वाली बहुत ही प्रमुख संपदा है। भारत के 7500 किलोमीटर तक फैला हुआ गहरे महासागरीय तट का क्षेत्र व्यापक स्तर का एक ईंधन संरक्षित क्षेत्र माना जाता है जो कई शताब्दियों तक हमारी प्राकृतिक गैस संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। बाम्बे हाई, केम्बे की खाड़ी, कावेरी, कृष्णा, गोदावरी और महानदी के बंदरगाह आदि भारत के कुछ अपतटीय तेल और गैस वाले क्षेत्र हैं।

### लवण

महासागरीय जल खारा या नमकीन होता है। इसे हम महासागर की लवणता या खारापन कहते हैं। महासागर में घुले लवण का कुल भार 98,000 खरब टन है। इसमें से सोडियम क्लोराइड 38,000 खरब टन है, पोटेशियम 480 खरब टन और ब्रोमाइड 83 खरब टन है। महासागर का खारापन लवणों की मात्रा पर निर्भर करता है। इस घोल के बारे में आश्चर्यजनक बात लवणों की मात्रा नहीं है, बल्कि उनके अनुपात की एकरूपता का बना रहना है। वाष्पन नदियों के जल का महासागर में गिरने और वर्षा की मात्रा के आधार पर महासागरों का जल ज्यादा या कम खारा हो सकता है लेकिन इनके संगठन में विभिन्न लवणों का अनुपात एक समान रहता है। महासागर में लवण की औसत मात्रा 35 प्रति हजार है। यानि 1 लीटर जल में लवण की मात्रा 35 ग्राम है। महासागरों के खारेपन के क्षेत्रीय वितरण में बहुत भिन्नता मिलती है। वाष्पन की दर, वर्षा, नदियों का महासागर में मिलना, वायुमंडलीय दाब और महासागरीय जल का परिसंचरण आदि महासागरीय जल के खारेपन को नियंत्रित करने वाले कारक हैं।

समुद्र से निकला नमक हम इंसानों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। चीनी के बगैर तो हम भोजन कर सकते हैं लेकिन नमक के बगैर नहीं। विश्व भर के महासागर लगभग खरबों टन खनिज पदार्थ रखते हैं, जिनमें सबसे अधिक मात्रा सोडियम क्लोराइड यानि साधारण नमक की है। आजकल हमारे देश में नमक आधुनिक तरीकों से प्राप्त किया जाता है। पूरे विश्व में उत्पादित नमक का 37 प्रतिशत महासागरों से मिलता है।

### गहरे महासागर में उत्खनन अभियान

ब्रिटिश जलयान चैलेंजर जो सन् 1873 में महासागरीय यात्रा पर निकला था। तीन साल की अपनी यात्रा के दौरान इस पर गए वैज्ञानिकों ने महासागर में छुपे अनेक रसायनों और खनिजों के बारे में दुनिया को बताया। पिछले दो दशकों से दुनिया में गहरे महासागर में उत्खनन की गतिविधियों का नया दौर आरंभ हुआ। बहुमूल्य धातुओं और भोजन की बढ़ती मांग इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। दुनिया की बढ़ती आबादी को ज्यादा भोजन की जरूरत है तथा फास्फोरस आधारित उर्वरकों का दुनिया के भोजन उत्पादन में बहुत महत्व है। महासागर तल से फॉस्फोरस पिंडिकाओं का खनन कृत्रिम उर्वरक का श्रेष्ठ स्रोत है।

गहरे महासागर में खनन अपेक्षाकृत नए खनिज की पुनःप्राप्ति की प्रक्रिया है जो महासागर के तल में होती है। महासागरीय खनन स्थल आमतौर पर बहुधात्विक पिंडिकाओं या सक्रिय और विलुप्त उष्णजलीय छिद्रों के विशाल क्षेत्रों के आसपास होते हैं। वे महासागर की सतह से करीब 1400-3700 मीटर नीचे होते हैं। विलुप्त उष्णजलीय छिद्रों में सल्फाइड जमा हो जाती है जिसमें चांदी, सोना, तांबा, मैंगनीज, कोबाल्ट और जस्ते जैसी बहुमूल्य धातुएं होती हैं। यह कच्ची सामग्री महासागर की गहराई में विभिन्न रूपों में पाई जाती है। महासागर की गहराई में जमा हुई धातुओं को हाइड्रोलिक पम्प या बाल्टी प्रणाली के इस्तेमाल से निकाला जाता है। उसके बाद कच्चे माल को प्रसंस्कृत करने के लिए जमीन पर लाया जाता है।

## खनिज संसाधन

विश्व भर के महासागरों में करीब 5X10<sup>6</sup> टन खनिज पदार्थ समाहित हैं। वर्तमान में अनेक रासायनिक तत्वों को महासागरों से निकाला जाता है। मैग्नीशियम इनमें से प्रमुख तत्व है जिसका उपयोग विमानों के निर्माण में होता है। इसके अलावा ब्रोमाइड भी काफी मात्रा में महासागर से निकाली जाती है। इसका उपयोग रंगों, फोटोग्राफी में काम आने वाले रसायनों एवं गैसोलीन आदि में किया जाता है। आजकल महासागरीय शैवाल से भी आयोडीन निकाला जाता है।

महासागरीय संसाधन के क्षेत्र में विभिन्न अनुसंधान एवं सर्वेक्षण द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि महासागर तटीय क्षेत्रों के 50 से 70 प्रतिशत क्षेत्रों में खनिज संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। महासागरीय संसाधनों में पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, टिन, फॉस्फोराइट, हीरे, लौह, सल्फर, मैंगनीज आदि धातुएं अधिकांश मात्रा में पाई जाती हैं। ये विशिष्ट प्रकार की धातुएं किसी भी विकासशील देश के आर्थिक विकास में काफी सहायक सिद्ध होती हैं। वस्तुतः आर्थिक दृष्टि से उपयोगी खनिज-संसाधन महासागर क्षेत्र के सतही भागों के अवयवों वाले परिवेश से पूर्णरूपेण भिन्न अवस्था में हैं, इसलिए खनिज संसाधनों का अन्वेषण एवं खनन कुछ महत्वपूर्ण स्थितियों जैसे घनत्व, विद्युत व तापीय संचालकता, ध्रुवीकरण और रासायनिक संपदा की अवस्थिति तथा सेस्मिक वेग पर आधारित है। महासागर क्षेत्र में वैसे तो कई धातुएं उपलब्ध होती हैं, परंतु आजकल मैंगनीज पिंड की प्रचुर उपलब्धि की चर्चा जोरों पर है। इसका प्रथम कारण मैंगनीज में बहुधात्विक गुण का पाया जाना है। मैंगनीज पिंडों में मुख्यतः कोबाल्ट, तांबा, निकिल और मैंगनीज भी होते हैं। एक अनुमान के आधार पर कुल महासागरीय सतहों का 25 प्रतिशत भाग ऐसे पिंडों से आवृत है, जबकि हिंद महासागर क्षेत्र में मैंगनीज पिंड एक करोड़ वर्ग किलोमीटर तक उपलब्ध है। हाल ही में संपन्न हुए सर्वेक्षण के अनुसार मध्य हिंद महासागरीय बेसिन के पिंड जीवाश्मीय मिट्टी में संलग्न है। मैंगनीज धातु के समान ही सल्फाइड भी बहुधात्विक पिंड है। सल्फाइड पिंड में 48 प्रतिशत सल्फाइड, 43 प्रतिशत लोहा, तांबा तथा जिंक आदि होता है। इसका प्रयोग उष्णजलीय विद्युत क्षेत्र में काफी उपयोगी है। भारत के लिए मध्य हिंद महासागरीय क्षेत्र बहुधात्विक सल्फाइड पिंडों का खनन उपलब्ध कराता है। महासागरों में सोना भी उपस्थित है लेकिन बहुत ही अल्प मात्रा में। सागर के एक टन जल में सोने की केवल दो ग्राम मात्रा ही समाहित है जिसे केवल आण्विक छलनी द्वारा ही जल से अलग किया जा सकता है।

## खनिज निक्षेप

महासागर के सभी भागों में खनिज निक्षेप पाए जाते हैं। जिंक, तांबा, निकिल, कोबाल्ट वाले खनिज, मध्य महासागरीय कटि समूह और महाद्वीप से दूर महासागरीय सतहों पर मिलते हैं और साथ ही फास्फोराइट और भारी खनिजों के निक्षेप उथले और गहरे जल में मिलते हैं।

छिछले महासागरीय तटों की गहराइयों में छिपे हुए खनिजों के नमूने निकालने और उनका निरीक्षण करने का काम तो गोताखोर ही आसानी से कर लेते हैं। गहरे जल में छिपे हुए खनिज या रसायन खोजने के लिए मानव युक्त या मानव रहित पनडुब्बियां उपयोग में लाई जाती हैं। आजकल खनिज भंडारों के निरीक्षण को रिकार्ड करने के लिए जलगत फोटोग्राफी का उपयोग किया जाता है जिसमें टेलिविजन कैमरा और विडियो रिकोर्डिंग का प्रयोग किया जाता है।

### **प्लेसर खनिज**

महासागर की संपदाओं के बारे में जानना बहुत रोचक है। महासागर से हमें 'प्लेसर' खनिज भी मिलते हैं। प्लेसर खनिज चट्टानों के प्राकृतिक अपक्षरण के कारण बनते हैं। मौसम के प्रभाव से नष्ट हुई चट्टानों के चूर्ण और उसमें मिले खनिज कणों को जलधाराएं अपने साथ बहाकर किनारों तक ले जाती हैं, और यह खनिज दूर तक तट पर फैल जाते हैं। प्लेसर खनिज में भारी धातु जैसे सोना, टिन, थोरियम, लोहा और जिर्कोनियम के कण होते हैं। और इनके घनत्व के अनुसार इनके कण विस्तारित होते हैं। केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु के तटीय क्षेत्र में प्लेसर खनिजों की अधिकता है।

### **फास्फोराइट निक्षेप**

महासागर की सतह पर फास्फोराइट निक्षेप भी मिलते हैं। महासागरीय तल पर जल की धाराओं का प्रभाव, हिमकाल के समय समुद्र के अतिक्रमण और कभी-कभी निक्षेप का भूगर्भीय प्रक्रियाओं से ऊपर आ जाने की वजह से फास्फोराइटों का वितरण और संग्रहीकरण हुआ है। वैसे तो फास्फोराइट निक्षेप धरती पर भी मिलते हैं, लेकिन काफी पहले इनका निर्माण महासागर की सतह पर ही हुआ। जीवों और पौधों के विकास के लिए फास्फोरस एक आवश्यक धातु है। फास्फोराइट का इस्तेमाल फास्फोरस यौगिकों के निर्माण में और उर्वरक बनाने में होता है।

### **बहुधात्विक पिंडिकाएँ**

गहरे महासागर में चैलेंजर जलयान द्वारा एक नए धातु स्रोत का पता चला था। यह अनियमित आकृति के पिंडों के रूप में था, जिसमें कई धातु मिले हुए थे और इन्हीं पिंडों को नोड्युल यानी पिंडिकाएँ या ग्रन्थिकाएँ, नाम दिया गया था। और इन्हीं मैंगनीज पिंडिकाओं में तांबा, निकिल, कोबाल्ट जैसे धातु आंशिक रूप से और मैंगनीज और लोहा मुख्य अंश के रूप में पाए जाते हैं। महासागर में लगभग 3,500 से 6,000 मीटर तक की गहराइयों में पिंडिकाएँ मिलती हैं। यह विश्व के 4,60,000,00 वर्ग किलोमीटर सागर क्षेत्र में फैली है और इनका कुल सुरक्षित भंडार करीब सत्रह खरब से तीस खरब टन है। प्रशांत महासागर में इनके सर्वाधिक भंडार हैं। हिंद महासागर का दूसरा स्थान है। अटलांटिक महासागर में इनके सबसे कम भंडार हैं, केवल ब्लैक प्लेटों को छोड़कर। पिंडिकाओं को समुद्र के जल से इनके ऑक्साइड या हाइड्रोक्साइड के रूप में निकाला जाता है।

बहुधात्विक पिंडिकाओं में निकल, तांबा, कोबाल्ट और मैंगनीज पाया जाता है। यह सब 4,000 से 6,000 मीटर की गहराई पर मिलते हैं। मैंगनीज 800 से 2,400 मीटर नीचे मिलता है। मुख्य रूप से कोबाल्ट, वैनेडियम, मॉलिब्डेनम और प्लेटिनम पाया जाता है। सल्फाइड औसतन 1,400 से 3,700 मीटर गहराई पर मिलता है जिसमें तांबा, सीसा, जस्ता, कुछ सोना और चांदी शामिल होते हैं।

भारत में महासागर सतह 4000 मीटर से 6000 मीटर की जल गहराई पर फैले हुए बहुधात्विक पिंडिकाएँ का उपयोग करने के लिए 75,000 वर्ग किलोमीटर महासागर बेसिन स्थित है। आलू के



आकार वाली इन पिंडिकाओं में तांबा, निकल और कोबाल्ट शामिल होते हैं जो सामरिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं। हमारे देश में पोलिमेटालिक नोड्यूलस कार्यक्रम के अंतर्गत सर्वेक्षण और अन्वेषण, पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन (ईआईए) अध्ययन तकनीक विकास (खनन) और भू-धातु जैसे चार तत्वों को शामिल किया गया है।

### **गैस हाइड्रेट**

गैस हाइड्रेट, महासागरीय अवसादों में पाए जाने वाली नई खोज है। कम तापमान और उच्च दाब पर प्राकृतिक गैस यानि मिथेन जल के परमाणु के साथ मिलकर 'गैस हाइड्रेट' बनाते हैं। एक घन मीटर गैस हाइड्रेट को जब सतह पर निकाल कर लाया जाता है तो इससे करीब 164 घन मीटर प्राकृतिक गैस मिलती है। गैस हाइड्रेट प्राकृतिक रूप से 'बर्फ के समान' उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक गैस और जल का सम्मिश्रण है जिसके पास विश्व के विभिन्न महासागरों और ध्रुवीय क्षेत्रों से प्राकृतिक गैस के उपयोगी संसाधनों को प्रदान करने की क्षमता है। इसे महासागरीय अवसादों से निकालकर भविष्य में इस्तेमाल होने वाली संपदा के रूप में सहेज कर रखा जा सकता है।

### **भविष्य का ईंधन-क्लैथरेट**

वैज्ञानिकों के अनुसार समुद्र की तलहटी में भारी मात्रा में ईंधन की बड़ी मात्रा 'क्लैथरेट' के रूप में जमा है। यह ईंधन बर्फ की शकल में पूर्णतः पारदर्शी है, जो असल में पानी की अणुओं में फंसी मिथेन गैस के रूप में होता है। बर्फनुमा क्लैथरेट की विशेषता यह है कि यह 35 डिग्री सेल्सियस तापमान पर भी नहीं पिघलता है। समुद्र में 10 मीटर की गहराई पर क्लैथरेट के भंडार मिलने आरंभ हो जाते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि सैंकड़ों वर्ष पहले जैविक प्रक्रिया से क्लैथरेट का निर्माण हुआ होगा। अनुमानतः क्लैथरेट की समुद्र के नीचे दबी मात्रा अब तक ज्ञात समस्त जीवाश्म ईंधन से दोगुनी है। क्लैथरेट ईंधन के दोहन के लिए भारतीय गैस प्राधिकरण और अमेरिका की नौसेनिक अनुसंधान प्रयोगशाला मिलजुल कर अनुसंधान कार्य कर रही हैं।

### **भारत में खनन स्थिति**

अंतर्राष्ट्रीय महासागर तल प्राधिकरण ने हिंद महासागर में खनिज संसाधनों के अन्वेषण के लिए चीन सहित अन्य देशों की तरह भारत के साथ भी 15 वर्ष का समझौता किया है। इस समझौते के अनुपालन में पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय ने उत्खनन गतिविधियां शुरू की हैं जिनके लिए मध्य हिंद महासागर में भारत को 75,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र उपलब्ध कराया गया है। इसके साथ भारत विश्व के कुछ गिने-चुने देशों में शामिल है जो अगामी कुछ वर्षों में गहरे महासागर में खनिजों का उत्खनन करने में सक्षम होंगे। हिंद महासागर में बहु-धात्विक पिंडों की खोज सर्वप्रथम 1977 में बोवा स्थित राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान द्वारा की गई थी। इस कार्य के लिए 'गवेषणी' अनुसंधान पोत का प्रयोग किया गया, जिसने 28 जनवरी, 1981 को पहली बार हिंद महासागर में सफलता अर्जित की। गवेषणी के बाद 'आर.आर.एल भुवनेश्वर' नामक जलयान का निर्माण भी सागर तल से बहु-धात्विक पिंडों को निकालने के उद्देश्य से किया गया।

### **महासागर से प्राप्त होने वाली औषधियां**

औषधीय महत्व पर उपयोगिता के क्रम में मानवीय चिकित्सा-संबंधित उद्देश्यों के लिए सामुद्रिक जीवों से प्राप्त जैव सक्रिय यौगिकों को क्रियान्वित किया जा रहा है। जैव सक्रियता के लिए अब तक महासागरीय नमूनों के करीब 14,000 सार तत्वों की व्यापक स्तर पर जांच की जा चुकी है। इसमें प्रतिजैविक, एंटी-हाइपरलिपेडमिक, एंटी-एचआईवी, एंटी-कैंसर, एंटी-ओस्टियोपोरोसिस के गुण शामिल

हैं। लक्षद्वीप और अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों के कारण हमारे देश के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है।

### संदर्भ

- अनिल प्रताप सिंह (2020) सतत विकास हेतु महासागर विज्ञान दशक। विज्ञान प्रगति सितंबर 2020
- आबिदी (1994) महासागरीय संसाधन। महासागर विकास विभाग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित
- नवनीत गुप्ता (2013) भावी विकास का आधार- महासागर। विज्ञान गंगा-2013
- नवनीत गुप्ता (2017) वैज्ञानिक करेंगे सागर मंथन। इंडिया साइंस वायर  
[https://ftp.vigyanprasar.gov.in/isw/deepocean\\_story.html](https://ftp.vigyanprasar.gov.in/isw/deepocean_story.html)
- नीरज कुमार (2013) महासागरीय संसाधन, विज्ञान प्रगति अगस्त 2013
- पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार <https://www.moes.gov.in/hi>
- सागर का महत्व <https://incois.gov.in/hindi2015/background.jsp>

## 7. जलवायु और विवर्तनिक हलचलों का परिणाम: टांगचे घाटी

रणधीर सिंह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

### सारांश

यह लेख हिमालय-पार क्षेत्र के लद्दाख प्रांत में अवस्थित टांगचे (टांगत्से) घाटी और उसके पूर्व में स्थित पैंगगोंग त्सो झील इलाके में क्वाटर्नरी कल्प के दौरान के सक्रिय विवर्तनिकी, सतही भूवैज्ञानिक प्रक्रमों एवं पुरा-जलवायु पर प्रकाशित हुए विभिन्न शोध पत्रों का एक अनुशीलन प्रस्तुत करता है। इस अनुशीलन के माध्यम से घाटी के भू-दृश्य या प्रकृति-चित्र और पुरा-जलवायु को समझने का प्रयास किया गया है। कालानुक्रमण परिणामों में व्याप्त विसंगतियों के चलते पूरे लद्दाख क्षेत्र का ही बहुत स्पष्ट भू-आकृति-पुरा-जलवायु परिदृश्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। कराकोरम भ्रंश का टांगचे (टांगत्से) घाटी में दो शाखाओं में विभक्त होने, सर्पण गति का अस्थाई तौर पर दोनों भ्रंश शाखाओं के बीच वितरित होने, क्वाटर्नरी कल्प के शुरूआत से ही भ्रंश के सक्रिय बने रहने और होलोसीन नवविवर्तनिक संचलन होते रहने के पुख्ता प्रमाण विभिन्न शोधकर्त्ताओं ने प्रदान किए हैं। 3 स्थानीय हिमनदीय चरणों (जो आज से क्रमशः लगभग 85 हज़ार, 40 हज़ार, 400 साल पहले रहे) और 1 क्षेत्रीय हिमनदीय चरण (जो आज से 20 हज़ार साल पहले रहा) के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इनके बीच के अंतरा हिमनदीय चरणों में, भूआकारमितिक और अवसादीय साक्ष्यों के आधार पर नदीय परिस्थितियों के 2 चरण (आज से क्रमशः लगभग 48 और 30 हज़ार वर्ष पूर्व) और सरोवरी परिस्थितियों के 1 चरण होने के तथ्य सामने रखे गए हैं। आज से लगभग 9-5 हज़ार वर्ष पहले लगभग 50 किलोमीटर क्षेत्रफल का एक विस्तृत सरोवर पैंगगोंग सो की छठी द्रोणी के तौर पर घाटी को अधिकृत किए हुए था। स्पष्ट और बृहद परिदृश्य प्राप्त करने के लिए कालिक और स्थानिक दोनों पैमानों में क्रमबद्ध और सम्यक उच्च वियोजन बहुप्रतिता अध्ययन की आवश्यकता है।

**बीज शब्द:** लद्दाख, हिमालय-पार, क्वाटर्नरी कल्प, जलवायु, विवर्तनिक, भू-दृश्य, पुरा-जलवायु

### प्रस्तावना

उत्तरी (आर्कटिक) और दक्षिणी (अंटार्कटिक) ध्रुवों की वैश्विक जलवायु नियंत्रण और परिवर्तन में भूमिका सर्वमान्य और असंदिग्ध है। अक्सर तीसरा ध्रुव कहलाया जाने वाला क्षेत्र का अधिकांश भाग तिब्बतीय पठार और हिमालय से मिलकर बना है। तिब्बतीय पठार अपने अत्यधिक बड़े आकार और ऊँचाई के कारण भीषण वैश्विक जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया में कई तरह से निर्णायक भूमिका निभाता है। “दुनियाँ की छत” कहलाया जाने वाला यह पठार, एशिया में अरबों लोगों को पानी प्रदान करता है। निम्न से मध्य अक्षांश में, यह क्षेत्र ध्रुवीय प्रदेशों से बाहर स्थित सबसे अधिक हिमनद आच्छादित इलाका है। यह क्षेत्र कई मुख्य भूवैज्ञानिक पहलियों को सुलझाने के लिए सर्वोत्तम स्थान प्रदान करता है। यह स्थल भारतीय और यूरेशियन प्लेटों के बीच गतिकी संबंध से जुड़ी समस्याओं को सुलझाने के लिए मंच प्रदान करता है। साथ ही साथ यह वैश्विक जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले या कारणवाचक कारकों में शोध करने के लिए भी सर्वथा उपयुक्त स्थान है। हिमालय और तिब्बतीय पठार का उत्थान क्षेत्रीय और वैश्विक जलवायु पर कई तरह से भारी प्रभाव डालता है। दक्षिण एशियाई ग्रीष्म मानसून के चलन के लिए आवश्यक तापीय प्रवणता पठार के गर्म

होने से मिलती है। इसके साथ ही यह पठार सतही पछुवा पवनों को उत्तरी और दक्षिणी शाखाओं में तोड़कर ठंडी महाद्वीपीय हवाओं को भारतीय उपमहाद्वीप की तरफ बहने से रोकता है।

इस तिब्बतीय पठार के दक्षिण पश्चिमी छोर पर, कराकोरम से लगा हुआ लद्दाख प्रांत का भाग है, जोकि अधिक ऊँचाई में स्थित ठंडी और शुष्क जलवायु वाला एक मरुस्थल है। हिमालय-पार स्थित यह प्रांत पठारीय क्षेत्र की तरह ही भू-आकृति, विवर्तनिकी और जलवायवी परिवर्तन में और इन सबके कारकों पर भी शोध करने के लिए सर्वथा सर्वोत्तम स्थान है। बहुत अधिक ऊँचाई में और ठंडा मरुस्थल होने के कारण यहाँ लगातार होने वाली तुषार क्रिया से हुए भौतिक अपक्षय द्वारा असंपीडित अवसाद का अत्यधिक मात्रा में निर्माण होता है। यह मलवा तीखी ढलानों और घाटी तल में फैला रहता है। आज तक यह अवधारणा मान्य रही है कि पश्चिमी पवन या पछुवा पवन इस इलाके में वर्षण का मुख्य स्रोत है, जोकि हिमपात के रूप में जाड़ों के महीनों (अक्टूबर-अप्रैल) में होता है। गर्मियों के महीनों (जुलाई-सितंबर) में दक्षिण से आने वाला ग्रीष्म मानसून वर्षण का द्वितीयक स्रोत है। हाल ही में ऊपरी सिंधु नदी द्रोणी के पानी के स्थायी समस्थानिक आधारित शोध ने भारतीय मानसून स्रोत के भी बराबर महत्ता वाले पूर्तिकर्ता होने के तथ्य पर बल दिया है।

जलवायवी विशेषताओं के अतिरिक्त यह क्षेत्र कराकोरम भ्रंश (साथ ही इंडस सुचर ज़ोन, श्योक सुचर ज़ोन) के सानिध्य में होने के कारण विवर्तनिक दृष्टिकोण से भी बहुत सक्रिय है। भारतीय और एशियाई भूभागों के पश्च-संघट्ट अभिसरण के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में विवर्तनिक हलचलें, तीव्र भूकंपीय झटके और सक्रिय विरूपण विकसित हुए हैं। कराकोरम भ्रंश की वर्तमान फिसलन दर जीपीएस मापन से  $3.4 \pm 5$  मिलीमीटर प्रति वर्ष और भू-आकृतिकीय संरचनाओं में क्षैतिज विस्थापन के आधार पर होलोसीन कालीन फिसलन दर लगभग 30 मिलीमीटर प्रति वर्ष आंकी गई हैं। हिमालय-पार और कराकोरम उच्चावच से क्वार्टररी (चतुर्थ) कल्प के दौरान से ही विवर्तनिकी को जन्म देने वाले सक्रिय पर्वतन के संकेत मिलते हैं और यह विवर्तनिक सक्रियता वर्तमान तक जारी है।

सक्रिय विवर्तनिकी का इसी क्षेत्र में नहीं बल्कि पूरे हिमालयी क्षेत्र में सबसे मुख्य परिणाम, क्षेपों(थ्रस्ट्स) और भ्रंशों की पुनःसक्रियता से भारी मात्रा में मलवे का निर्माण हो जाने से हुई ढलान विफलता और नदियों-नालों के प्रवाह के परिबद्ध होने से झीलों का निर्माण और अंततोगत्वा इन्हीं झीलों के पानी का बाद में हुई विवर्तनिक हलचलों के कारण सरोवरी अवसादों को पीछे छोड़ बह जाना रहा है। लद्दाख प्रांत की विभिन्न नदी घाटियों या जलग्रहण क्षेत्रों से ऐसे जलवायवी और विवर्तनिकीय कारणों से बनी कई झीलों के प्रमाण मिले हैं। इन पुरासरोवरी अवसादी परिच्छेदिकाओं में हुए शोध कार्यों ने लद्दाख क्षेत्र के साथ हिमालय-पार प्रदेश की पुराजलवायवी परिस्थितियों को उजागर किया है। क्षेत्र की पुरा-जलवायु के बारे में समझ समय के साथ-साथ विकसित होती गई है, परंतु कालानुक्रमण विधियों में विसंगतियों के चलते एक सर्वमान्य और व्यापक परिदृश्य तैयार नहीं हो सका है। एक ही विधि से प्राप्त परिणामों में, विभिन्न विधियों से प्राप्त परिणामों में, यहाँ तक कि एक ही विधि द्वारा एक ही स्थान से प्राप्त परिणामों में भी कालानुक्रमण में विसंगतियाँ मिली हैं। क्षेत्र की पुरा-जलवायु का एक संपूर्ण परिदृश्य तैयार करने में यह एक बड़ी चुनौती है और इसलिए इसमें विशेष ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। कुछ सरोवरी परिच्छेदिकाओं में सहअवसादी विरूपण संरचनाएं (सीज़माईट्स) भी दर्ज हुई हैं, जोकि विभिन्न समय अंतरालों में इस क्षेत्र में हुई भूकंपीय हलचलों के पुख्ता प्रमाण हैं।

एक सरसरी निगाह से पूरे क्षेत्र के भू-दृश्य को देखने से पता चलता है कि इस पूरे प्रांत में अलग-अलग समय अंतरालों में हिमनदीय और अंतरा-हिमनदीय परिस्थितियाँ रहीं हैं। अंतरा-हिमनदीय परिस्थितियों में नदीय और सरोवरी पर्यावरणीय परिस्थितियाँ थीं, यद्यपि उनके काल और अवधि

परिचर्चा के विषय हैं। वातोद्ग/वातज गतिविधि भी अपनी स्पष्ट उपस्थिति रेत के टीलों और ढलानों के रूप में देती है, जोकि शुष्क जलवायु के संकेत हैं।

यह लेख हिमालय-पार की पैंगगोंग श्रेणी में अवस्थित टांगचे (टांगत्से) घाटी और उसके पूर्व में स्थित पैंगगोंग सो झील इलाके में संपन्न विभिन्न प्रकार के शोध कार्यों से प्राप्त निष्कर्षों का एक अनुशीलन प्रस्तुत करता है। इस अनुशीलन के माध्यम से घाटी में क्राटर्नरी कल्प के दौरान सक्रिय विवर्तनिकी, सतही भूवैज्ञानिक प्रक्रमों एवं पूरा-जलवायु, और इन सबके परिणामस्वरूप विकसित हुए वहाँ के भू-दृश्य या प्रकृतिचित्र को समझने का प्रयास किया गया है।

### **अध्ययन क्षेत्र, जलवायु, भूविज्ञान और अपवाह तंत्र**

पैंगगोंग श्रेणी (समुद्र तल से लगभग 4000 मीटर की ऊँचाई पर) में अवस्थित टांगचे घाटी भारतीय सीमा का पूर्वी छोर है। समुद्र तल से 5200 मीटर की ऊँचाई वाले चांग ला दर्रा (ला=दर्रा) से होकर इस घाटी में प्रवेश किया जाता है। टांगचे नदी श्योक नदी की सहायक नदी है। इस घाटी के पूर्व में विश्व प्रसिद्ध पैंगगोंग सो (सो=झील) है, जो भारत और चीन की सीमा पर फैली हुई है। उत्तर पश्चिमी हिमालय के वृष्टि छाया क्षेत्र के अंतर्गत आने के कारण इस इलाके की जलवायु शुष्क से अतिशुष्क है और घास के सूखे मैदान प्रकार की वनस्पति यहाँ पाई जाती है। दक्षिण एशियाई ग्रीष्म मानसून के द्वारा की जाने वाले वर्षा की प्रधानता है, जोकि 250 से 500 मिलीमीटर वर्षा की सालाना आपूर्ति देता है। समुद्र तल के ऊपर 3000 मीटर की औसत ऊँचाई वाला यह इलाका ठंडा मरुस्थल है जो बहुत तेज ठंड की मार झेलता हुआ तीन से चार महीने के लिए बर्फ से ढका रहता है। हिमालय-पार प्रांत का सबसे सर्वव्यापी लक्षण, असंपीडित अवसादी मलवे का घाटी की तीखी ढलानों और घाटी तल में फैला रहना, अध्ययन क्षेत्र में भी उपस्थित है।

पैंगगोंग श्रेणी मिगमैटिक नाइसिस और ग्रैनिटोइड्स से बना है। सबसे पूर्वी भाग में कराकोरम प्लूटॉनिक कॉम्प्लेक्स है। कराकोरम भ्रंश, जोकि एक दक्षिणावर्ती पार्श्विक नतिलंबी-सर्पण भ्रंश है, इस घाटी में से होकर गुजरता है। टांगचे नदी (जो निचले छोरों में आज टांगचे ग्यूग छू कही जाती है; लद्दाखी भाषा में ग्यूग छू=नदी) इस क्षेत्र की प्रमुख अपवाह या जल स्रोत है जो श्योक नदी में जाकर मिलती है, जो खुद सिंधु नदी की एक सहायक नदी है। चुसूल के पास से उद्भव होने वाली यह नदी समुद्र तल से 4000 मीटर से अधिक की ऊँचाई से आने वाली जल धाराओं से सिंचित होती है। लोई योगमा घाटी में 72 किलोमीटर के लंबे रास्ते में बहकर आती हुई इस प्रमुख धारा में, पैंगगोंग सो जलग्रहण क्षेत्र विभाजक से जन्मी एक सहायक धारा, लुखुंग-मुग्लिब घाटी में उत्तर पश्चिम दिशा में 15 किमी का रास्ता तय करने के बाद समकोण पर मुड़कर आ मिलती है। यह संयुक्त धारा टांगचे-दुर्बक घाटी, जोकि ऊपरी भाग में बहुत फैली हुई या U-आकार की है और फिर निचले भाग में संकरी या V-आकार की घाटी है, उसमें लगभग 26 किलोमीटर के पथ में प्रवाहित होकर आखिर में श्योक नदी में आ मिलती है। टांगचे नदी का जलग्रहण क्षेत्र लगभग 2170 वर्ग किलोमीटर है।

### **विवर्तनिकी पर शोध कार्य**

पश्चिमी तिब्बतीय पठार में अवस्थित कराकोरम भ्रंश तंत्र, पामीर से लेकर पश्चिमी नेपाल तक 1000 किलोमीटर से अधिक क्षेत्रफल में फैला है। भ्रंश के दक्षिणी अर्धांश की विवर्तनिक सक्रियता सुप्रतिष्ठित है, जबकि उत्तरी अर्धांश की सक्रियता बहुत विवादस्पद है। पैंगगोंग क्षेत्र में कराकोरम भ्रंश ज़ोन 14 या 17 एम ए पर प्रारंभ हो गया होगा। कराकोरम भ्रंश ज़ोन टांगचे में 15 और 13 एम ए के पहले से सक्रिय था। दूसरे प्रमाण भी इस तथ्य पर सहमति देते हैं कि टांगचे अपरूपणी (शियर) ज़ोन पैंगगोंग

इलाके में 16 एम ए से पहले सक्रिय था । अध्ययन क्षेत्र भ्रंश के दक्षिणी अर्धश के एक खंड (बैगोंग-चाक्सिकंग खंड) के अंतर्गत पड़ता है । इस इलाके में अगहम गाँव के पास से कराकोरम भ्रंश जिसका झुकाव उत्तर पश्चिम दिशा की ओर है, दो शाखाओं में विभक्त हो जाता है, जिनमें से दक्षिण पश्चिमी शाखा को टांगचे शाखा और उत्तर पूर्वी शाखा को पैंगगोंग या बैंगगोंग शाखा कहा जाता है । इन्हीं भ्रंश शाखाओं में से होकर क्रमशः टांगचे नदी और उसकी सहायक नदी बहती है । कराकोरम भ्रंश की सर्पण दर विभिन्न विधियों से मापी गई है । जी पी एस और इन्सार आँकड़े बताते हैं कि पूरे कराकोरम भ्रंश की वर्तमान समय की सर्पण गति 1-3 मिलीमीटर/वर्ष के बीच है । इन अध्ययनों से पहले संपन्न हुआ एक शोध लगभग 11 मिलीमीटर/वर्ष जैसी ऊँची दर भी प्रतिपादित करता है । टांगचे शाखा में क्राटर्नरी कालीन क्षैतिज विस्थापन के प्रमाण के अभाव में पूर्ववर्ती शोधकर्त्ताओं ने, टांगचे में व्यक्त हुई दोनों शाखाओं में से, केवल पैंगगोंग शाखा पर ही सर्पण गति की बात कही है । उपग्रह चित्रों का उपयोग करते हुए लिऊ और सहशोधकर्त्ताओं ने पैंगगोंग झील के पश्चिमी तट में स्थित हिमोढ में 300-350 मीटर तक क्षैतिज विस्थापन बताया है । ब्राउन ने दो मलवा प्रवाह के क्षैतिज विस्थापन (विस्थापित: 2-2.5 मीटर और 40±5 मीटर) का इस्तेमाल करते हुए पैंगगोंग शाखा पर पश्च क्राटर्नरी दक्षिणावर्ती-पार्श्विक सर्पण दर्ज़ किया है । इन आकृतियों का काल निर्धारण कॉस्मोजेनिक रेडियो न्यूक्लाइड्स विधि से किया गया, जिसने कम क्षैतिज विस्थापन वाले मलवा प्रवाह की आयु 1-2 के ए (हज़ार वर्ष) और बड़े विस्थापन की 11-14 के ए (हज़ार वर्ष) बताई गई है । ब्राउन टांगचे शाखा पर किसी भी प्रकार के सर्पण की बात को नहीं रखते हैं परंतु, बोहोन ने 160 मीटर के दक्षिणावर्ती क्षैतिज विस्थापन के आधार पर टांगचे शाखा में आज से 33-5.7 हज़ार वर्ष पहले के बीच के समय अंतराल के लिए 5.6±1.7/1.1 मिलीमीटर/वर्ष की सर्पण दर मापी है । यह ब्राउन के द्वारा पैंगगोंग शाखा के लिए आज से 14 के ए (हज़ार वर्ष) पहले से 1-2 के ए (हज़ार वर्ष) पहले के बीच के समय अंतराल के लिए मापी गई सर्पण दर से बहुत अधिक है । यद्यपि, आज से 5.7 के ए (हज़ार वर्ष) पहले से लेकर आज तक टांगचे शाखा में समायोजित सर्पण <3 मिलीमीटर है, जो इस शाखा पर पिछले अशंशोधित 6 के ए (हज़ार वर्ष) के दौरान बहुत कम गतिविधि को सूचित करता है । यह मानना सही होगा कि सर्पण अस्थायी तौर पर दोनों भ्रंश शाखाओं के बीच वितरित होता रहता था, जिसमें एक समय में एक शाखा प्रभावी रही है । वर्तमान में, पैंगगोंग शाखा प्रभावी शाखा है ।

पैंगगोंग शाखा के पास तिर्यक् सर्पण भ्रंशन पैंगगोंग सो के उत्तर पश्चिमी द्रोणी को संरचनात्मक रूप से नियंत्रित करता है । इस क्षेत्र की सक्रिय विवर्तनिक गतिविधि ने ही इसे विश्व प्रसिद्ध पैंगगोंग सो झील का उपहार दिया है । आज यह झील लगभग 40 मीटर गहरी, सो-मो-गुअलारी नाम की पाँच द्रोणियों की श्रृंखला है, जोकि वर्तमान झील की सतह के नीचे स्थित कम गहराई वाली (1-2 मीटर) सिल से पृथक है । यह जुड़ी हुई धाराओं के साथ झीलों की श्रृंखला के तौर पर विकसित हुई है । पूर्ववर्ती शोधकर्त्ताओं ने, नदी के पश्चिम की तरफ़ कराकोरम भ्रंश से जुड़ी विवर्तनिक गतिविधि के कारण या पिछले हिमनदीय उच्च /पिछले अधिकतम हिमनदन के हिमोढ निक्षेप से बने एक कटक के कारण नदी का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से इस झील का निर्माण होने की बात रखी है । प्रख्यात भू-विज्ञानी वल्दिया अपनी पुस्तक नियोटेक्टोनिज़्म इन दि इंडियन सब्कोन्टिनेंट: लैंडस्केप इवोल्यूशन में पैंगगोंग सो के बनने के कारणों पर अपना स्पष्ट मत रखते हैं । उनका मानना है कि कराकोरम भ्रंश पर नतिलंबी-सर्पण गति के अतिरिक्त, उसकी शाखाओं पर तिर्यक-सर्पण और नति-सर्पण गतियाँ भी ज़रूर रहें होंगी । पुस्तक के लेखक खुद के द्वारा किए गए क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर मानते हैं कि एक भ्रंश खंड दूसरे खंड पर से क्षैतिज दिशा में फिसला पर इस खंड ने अगले छोर पर प्रतिरोध/रुकावट का सामना किया जिससे यह खंड पिछले हिस्से पर ऊपर उठ गया और थोड़ा झुक भी गया । इसका अंतिम परिणाम यह रहा कि यह खंड अपने आसपास के खंडों से ऊपर उठ गया । पैंगगोंग श्रेणी के नतिलंबी-सर्पण गति के

साथ हुए उत्थान के प्रेक्षण को वल्लिया समुचित प्रमाणों (क) विवर्तनित चट्टानों के साथ ही साथ हिमनदीय हिमोढ को काटते हुए संकरी दरारों से टांगचे नदिका में गिरने वाले सूखे बीहड़; (ख) भ्रंश फलक का प्रतिनिधित्व करती उत्तरपश्चिमी-दक्षिणपूर्वी दिक्निःस्थास वाली तीव्र ढलान या लगभग खड़ी घाटी दीवार; (ग) टांगचे नदी के प्रणाल-अंतःजलमार्ग आकृति (जिसमें नदी अपने लिए ज्यादा गहरा जलमार्ग तराशने के लिए अपनी ही वेदिका निक्षेप के कटाव को अंजाम देती है); और (घ) दुरबुक के पास जहाँ नदी अचानक से पूर्व की तरफ मुड़ती हुई सक्रिय उत्तरपश्चिम-दक्षिणपूर्वी दिक्निःस्थास वाले भ्रंश पर होकर गुजरती है, वहाँ पर बहुत भव्य गहरी खाई (महाखड्ड) का विकास; से भी सिद्ध करते हैं । इनमें से एक भ्रंश मुग्लिब के पास, लुकुंग से गुजरता है, जबकि दूसरा भ्रंश अधिक सीधा रास्ता लेते हुए हरोंग छु और टांगचे नदी को जाता है । इन दो भ्रंशों के बीच पैंगगोंग श्रेणी का उत्थान और नतिलंबी-सर्पण विस्थापन ही नदी के मार्ग को अवरुद्ध करके, पैंगगोंग झील को जन्म देने के लिए उत्तरदायी रहा होगा । हुआंग ने भी नदी के जलावरोधन को इंगित किया है ।

फर्त्याल एवं सह-शोधकर्ताओं ने भी पहले ही इन प्रमाणों से इस घाटी में कराकोरम भ्रंश की सक्रियता को समझाया है । इसके साथ ही यह नतीजा दुरबुक के पूर्व स्थित एक परित्यक्त जलमार्ग की उपस्थिति और पूरी घाटी में हुए अत्यधिक अधःकर्तन से भी स्पष्ट है । टांगचे घाटी में शाचुकुल के पास 9.5 से 5.1 हजार वर्ष पुराने नदीय-सरोवरी अवसादों में ऊर्ध्वधर समनतिक वलन और मृदु अवसादीय विरूपण संरचनाओं (सीज़माईट) का मिलना कराकोरम भ्रंश की टांगचे शाखा पर बार-बार होने वाली गतिविधि के पुख्ता प्रमाण हैं ।

सांगोडे अवसादीय और भू-आकृतिक प्रेक्षणों के आधार पर कराकोरम भ्रंश की पैंगगोंग शाखा पर हुए होलोसीन कालीन उत्थान की कहानी कहते हैं । लगभग 1 मिलीमीटर/वर्ष की दर से हुआ यह होलोसीन कालीन उत्थान, तक्ररीबन 8 मीटर ऊँची अयुग्मित वेदिका, पुरातटरेखा तथा >8 हजार वर्ष पूर्व की आयु वाले अधःकर्तित अवसादी कगारों के आधार पर सिद्ध किया गया है । लगभग 15° कोण पर 4 मिलीमीटर/वर्ष की दर पैंगगोंग ब्लॉक में तिर्यक् सर्पण घटक को प्रदर्शित करती है । विभिन्न - आकृतिक चिह्नों और सररेखनों के वितरण और सन्निधि के आधार पर परादाबीय उत्थान की व्याख्या के लिए लेखकगण एक द्विस्तरीय पंखा प्रतिमान रखते हैं । लेखकगण का मानना यह है कि छिछले भूपर्पटीय द्वैधीकरण के कारण होलोसीन के दौरान पैंगगोंग श्रेणी का उत्थान हुआ होगा । इसके साथ ही इस द्विस्तरीय प्रक्रम के साथ उत्पन्न हुआ तनाव उत्तरीय भाग में विमुक्त हो चुका दिखाई देता है । यह प्रत्याशा व्यक्त की गई है कि अधिकांश तनाव दक्षिणी भाग चुसूल के इलाके में एकत्रित हुआ है ।

उद्गम क्षेत्र की शैलिकी और चतुर्थ कल्पिय निक्षेपों के खनिजकीय लक्षणों के संबंधों पर आधारित विवर्तनिकी परिप्रेक्ष्य में हुआ एक अन्य शोध, आज से लगभग 72 हजार वर्ष पहले तक टांगचे घाटी से सिंधु घाटी की ओर एक अपवाह के तस्का ला दर्रा से बहकर जाने के रोचक तथ्य को उजागर करता है ।

### **भू-आकृतिकीय और जलवायवी शोध कार्य**

इस घाटी में विवर्तनिकी के साथ ही साथ भू-दृश्य विकास, सतही प्रक्रमों, पूरा-जलवायु और विवर्तनिकी-जलवायु अन्योन्यक्रिया के प्रश्नों को संबोधित करते हुए कई महत्त्वपूर्ण शोध कार्य संपन्न हुए हैं । यह बहस अभी जारी ही है कि जलवायु परिवर्तन और विवर्तनिकी एक साथ चलने वाले प्रक्रम हैं या किसी एक प्रक्रम की मुख्य भूमिका है ।

ब्राउन एवं सह-शोधकर्ता वर्तमान नदी स्तर से 40 मीटर, 14 मीटर और 7 मीटर की ऊँचाई पर स्थित 3 दुःस्थित जलोढ वेदिका और टांगचे घाटी के सम्मुख परित्यक्त जलोढ/मलवा प्रवाही पंखे की आयु अंतरिक्ष किरण उद्भासन/उच्छादन कालानुक्रमण विधि से लगभग 11.5 से 7 हजार वर्ष पूर्व बतलाते हैं

। यह आर्द्र युग का प्रमाण देते हैं। पंखे का परित्याग 11.5 हज़ार वर्ष पूर्व घटित हुआ होगा, चूँकि संभवतया मानसूनी परिसंचरण की वृद्धि की प्रतिक्रिया में जलवायु ज्यादा आर्द्र हो गई होगी। यह परिणाम झील की सबसे पूर्वी द्रोणी के अवसादी रिकॉर्ड में दर्ज़ हुई आर्द्र स्थितियों से भी तालमेल रखते हैं। यह शोध पत्र एक विरोधाभासी परंतु रोचक तथ्य भी सामने रखता है कि पैंगगोंग झील के अतिप्रवाह ने चौड़ी घाटी को नीचे की तरफ़ काटते हुए वेदिकाओं का निर्माण लगभग 7 हज़ार वर्ष पहले तक नहीं किया था। लेखकगण वेदिकाओं का बाद में बनना पैंगगोंग झील की गहराई मापन से स्पष्ट करते हैं। उनका मानना है कि वर्तमान में यह झील पाँच द्रोणियों की श्रृंखला है, जोकि वर्तमान झील की सतह के नीचे स्थित कम गहराई वाली (1-2 मीटर) सिल से पृथक है। टांगचे घाटी से होकर अधिप्रवाह/बाढ़ के समय पानी तब तक नहीं बह सकता जब तक जलस्तर वर्तमान स्तर से बहुत अधिक ऊपर नहीं होता है। झील की सबसे पूर्वी द्रोणी को सभी प्रमुख जलधाराओं (नदियों) का अंतर्वाह प्राप्त होता है, जो इसकी रासायनिकी को वर्षण में बदलाव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाता है। यद्यपि, टांगचे घाटी से अधिप्रवाह और उसके परिणामस्वरूप नीचे की तरफ़ कटान और वेदिका निर्माण होने के लिए द्रोणियों का पश्चिम तक सिल की गहराई तक भरे रहना आवश्यक है, जोकि दीर्घकालीन आर्द्र परिस्थितियों में ही संभव है।

इस झील के सबसे पूर्वी द्रोणी (बांगोंग सो) में प्रामाणिक और लोकमान्य शोध कार्य हुआ है। इस द्रोणी से निकाले गए 12.4 मी लंबे क्रोड से प्राप्त हुआ पर्यावरणीय इतिहास, आज से लगभग 10-9.5 हज़ार वर्ष पहले हुए एक बड़े पर्यावरणीय बदलाव, की दास्तान कहता है। इस बदलाव के लिए उस समय ग्रीष्मकालीन मानसूनी परिसंचरण (अधिकतम वर्षा लगभग 9.5 से 8.7 हज़ार वर्ष पूर्व और लगभग 7.2 से 6.3 हज़ार वर्ष पूर्व के दौरान) का तीव्र बढ़ाव उत्तरदायी माना गया है जिसने जलवायु को आर्द्र-गर्म परिस्थितियों की ओर अग्रसर किया। इसके बाद शुष्कता का दीर्घकालिक दौर आया जो 4-3 हज़ार वर्ष पहले तक रहा।

पूर्ववर्ती अधिप्लव मार्ग के अनुप्रवाह में रोष मुंटाना (भेड़ पीठ शैल; हिमनदीय भू-आकृति होती है, जिसका निर्माण हिमनद की बर्फ़ द्वारा स्टॉस/अभिपवन (ऊर्ध्वप्रवाह) फलक में अपघर्षण और ली/प्रतिपवन (अनुप्रवाह) फलक में टूटन की वजह से हुए असममित अपरदन से होता है), स्ट्रैथ वेदिका और बाढ़ निक्षेप के कॉस्मोजेनिक  $^{10}\text{Be}$  न्यूक्लाइड के कालानुक्रमण के साथ इस घाटी की भू-आकृतियाँ, पैंगगोंग सो से हुई प्रलयकारी आंशिक बाढ़ की गाथा सुनाती हैं। इस शोध में झील के पूर्ववर्ती अधिप्लव मार्ग को चिह्नित करते हुए उसे 20 मीटर ऊँचा बताया गया है। इसी मार्ग से ही प्लेइस्टोसीन (अत्यंत नूतन) के एकदम बाद के समय या प्रारंभिक होलोसीन के दौरान तक्करीबन 2 दिन की अवधि तक लगभग 18 घन किलोमीटर पानी के प्रलयकारी ढंग से नीचे टांगचे घाटी की ओर बहने के रोचक तथ्य को डॉर्च और सह-शोधकर्ता सप्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अधिप्लव मार्ग से नीचे की ओर की घाटी में उपस्थित 4.5 मीटर की लंबाई के कोरछादी ग्रेनाइटिक गोलाश्म उपल बाढ़ के सबसे बड़े निक्षेप हैं। इन गोलाश्म उपलों की कॉस्मोजेनिक  $^{10}\text{Be}$  उद्भासन विधि से आयु  $11.1 \pm 1.0$  के ए (हज़ार साल) आई है, जो आवेगपूर्वक आई बाढ़ की भी आयु है। न्यूनतम आंकलित बहाव लगभग  $110,000 \text{ m}^3\text{s}^{-1}$  है। बाढ़ निक्षेप से ऊपर की ओर बाढ़ के अपवाह मार्ग में स्ट्रैथ वेदिकाओं का एक जोड़ा प्रदर्शित करता है कि नदीय अधःकर्तन की दर जो  $12.2-10.5$  के ए (हज़ार वर्ष) पहले  $0.3 \pm 0.1$  मिलीमीटर/वर्ष थी, वह  $10.5$  के ए (हज़ार वर्ष) से वर्तमान के दौरान बढ़कर  $1.5 \pm 0.5$  मिलीमीटर/वर्ष हो गई। मुख्य बाढ़ निक्षेप और नदीय अधःकर्तन की दर का एक ही समय में बढ़ना यह यह लक्षित करता है कि टांगचे घाटी पर अधःकर्तन को निर्धारित करने में बाढ़ की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। स्ट्रैथ वेदिकाओं का दूसरा जोड़ा आज से 18 और 27 के ए (हज़ार वर्ष) पहले के बीच बहुत



कम अंतर (लगभग 0.6-0.9 से 0.9-1.4 मिलीमीटर/वर्ष) दिखाता है। घाटी में इन स्ट्रैथ वेदिकाओं से ऊपर की ओर स्थित रोष मुंटाना कॉस्मोजेनिक  $10Be$  विधि से  $35.8 \pm 3.0$  के ए (हज़ार वर्ष) की आयु देता है जो उस समय को रेखांकित करता है, जब टांगचे घाटी पिछली बार हिमनदों से अधिकृत थी।

हिमनदीय भू-आकृतियों के कालानुक्रमण के आधार पर पैंगगोंग श्रेणी के लिए तीन स्थानीय हिमनदीय चरणों को परिभाषित किया गया है: (क) पैंगगोंग-2 ग्लेशिएल स्टेज (हिमनदीय चरण)  $85 \pm 15$  के ए पर; (ख) पैंगगोंग-1 ग्लेशिएल स्टेज (हिमनदीय चरण)  $40 \pm 3$  के ए पर; और (ग) पैंगगोंग सर्क (हिमज गह्वर) ग्लेशिएल स्टेज (हिमनदीय चरण)  $0.4 \pm 0.3$  के ए पर। डॉर्च द्वारा मानचित्रित रोष मुंटाना को पैंगगोंग-1 ग्लेशिएल स्टेज का निर्धारित किया गया है। इसके अतिरिक्त हाल के हिमज गह्वर (सर्क) हिमोढ और हिमोढ के अन्य दो जोड़े चिह्नित किए गए हैं जिनको क्रमशः पैंगगोंग सर्क ग्लेशिएल स्टेज (सबसे नवीन), और पैंगगोंग-2 ग्लेशिएल स्टेज (सबसे पुराना) का निर्धारित किया गया है। पैंगगोंग-2 ग्लेशिएल स्टेज ( $85 \pm 15$  के ए) और लद्दाख-4 चरण ( $81 \pm 20$  के ए) ग्लेशिएल स्टेज दोनों की आयु लगभग बराबर है, जोकि स्थानीय इलाके में समकालीन हिमनदन का संकेत देता है। पैंगगोंग-1 ग्लेशिएल स्टेज के आंशिक हिमोढ के अतिरिक्त टांगचे घाटी में पाया गया रोष मुंटाना ही पैंगगोंग-1 ग्लेशिएल स्टेज का एकमात्र प्रमाण स्वीकार किया गया है।

घाटी में हिमनदीय निक्षेपों के अभाव को इस बात से समझा जा सकता है कि बाढ़ ने हिमनदीय निक्षेपणीय भू-आकृतियों और अवसादों का अपरदन किया जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ के पानी में अवसाद-भार बढ़ गया। इसने अंततः नदीय अधःकर्तन को बढ़ावा दिया और स्ट्रैथ वेदिकाओं का निर्माण किया। तदनंतर, अधिकांश अपरदित हिमनदीय अवसादों का मुख्य बाढ़ निक्षेप के तौर पर फिर से जमाव हो गया। शोध पत्र में इस प्रलयकारी बाढ़ को आज से लगभग 10-9 हज़ार वर्ष पहले ( $10.7-9.6$  के ए) रही तीव्र मानसून अवधि के दौरान हुए पैंगगोंग सी झील के बहुत ऊँचे स्तर का या झील से उसके प्रारंभिक निर्माण से ही जुड़ी हुई है कराकोरम भ्रंश पर हुई कोई भूकंपी (विवर्तनिक) गतिविधि, का परिणाम माना गया है।

फर्त्याल एवं साथी टांगचे घाटी के 48 हज़ार वर्षों के निक्षेपणीय इतिहास को पाठकों के सामने रखते हैं।  $14C$  त्वरित द्रव्यमान स्पेक्ट्रममिति और प्रकाशिक उद्दीप्ति संदीप्ति (ओ एस एल) विधियों से किए गए अवसादीय परिच्छेदिकाओं के कालानुक्रमण पर आधारित यह शोध कार्य आज से लगभग 9-5 हज़ार साल पहले ( $9.6-5.1$  के ए) वर्तमान टांगचे घाटी को अधिकृत करती हुई पैंगगोंग झील की छठी द्रोणी की उपस्थिति को दर्ज़ करता है। यह समयावधि तिब्बतीय पठार और चीन के क्षेत्र की झीलों के बढ़े हुए स्तरों के साथ-साथ भारतीय उपमहाद्वीप में रहे तीव्र मानसूनी काल की समकालीन है। फर्त्याल और सह-शोधकर्तागण टांगचे घाटी में, नदीय अधःकर्तन और अवसाद भराव की घटनाएँ दर्ज़ किए हैं, जिनके चलते इलाके का भू-आकृतिक परिदृश्य विकसित हुआ है। अधःकर्तन और अभिवृद्धि का नियंत्रण नवविवर्तनिक गतिविधि, आशिमकीय अंतर, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक बाँध के कारण या इन सबके संयुक्त प्रभाव से माना गया है। इस शोध में किए गए आकारमतिकीय अध्ययन, टांगचे नदी की अनुदैर्घ्य परिच्छेदिका में परिवर्तनिक स्थल की विशेष उपस्थिति दर्शाते हैं, जहाँ नदीय अधःकर्तन की बढ़त व्यक्त हुई है। इसके अलावा अपवाह तंत्र में भी विवर्तनिक नियंत्रण के साथ-साथ आशिमकीय नियंत्रण जैसे, अपवाह मार्ग में जलधारा का अचानक समकोण पर मुड़ जाना, दिखाई पड़ता है। इस शोध कार्य में दो परित्यक्त जलमार्गों/प्रणालों का भी वर्णन किया गया है जोकि क्षेत्र की नवविवर्तनिक गतिविधि की तरफ ही इशारा करते हैं। एक परित्यक्त प्रणाल में आज से  $3360 \pm 25$   $14C$  वर्ष पुरानी लकड़ी का टुकड़ा प्राप्त किया गया है। अभिवृद्धि या तलोच्चन अवसाद भराव के

रूप में दर्ज़ किया गया है, उदाहरणार्थ नदी वेदिकाएं और सरोवरी निक्षेप। दूसरे परित्यक्त प्रणाल में लगभग 70 मी ऊँचे मलवे के ढेर का उल्लेख किया गया है जो गोलाशम उपल, गुटिकाएं, गोलाशिमिकाएं/उपलिकाएं वाले लगभग 30 मीटर बड़े दोआबी इकाई और साथ ही मृत्तिका, रेत और पांशु से बनी लगभग 40 मीटर ऊँची सरोवरी इकाई से मिलकर बना है। इस परिच्छेदिका में मृदु अवसादीय विरूपण संरचनाएं (सीज़्माईट) भी अलग-अलग स्तरों पर प्राप्त हुई हैं। लेखकगणों का मानना है कि इसी इलाके में ही नदी का प्रवाह चांग ला (ला= दर्रा) से आने वाली धारा के द्वारा भारी मात्रा में लाए गए अवसादों के कारण अवरुद्ध हुआ होगा। इस धारा ने बाएं तट में भी विशाल मलवा जमा किया है। जलवायु और विवर्तनिकी की भूमिका को समझने के लिए शोधकर्ता नदी वेदिकाओं (भराव और स्ट्रैथ) का अध्ययन करते हैं। पूरा घाटी क्षेत्र इन भू-संरचनाओं से समृद्ध है। नदी के बाएं तट में नदीय वेदिकाओं के दो शानदार तल (एक लगभग 7-10 मीटर मोटाई का और दूसरा 12-14 मीटर मोटाई का) विकसित हैं। प्रकाशिक उद्दीप्ति संदीप्ति (ओ एस एल) विधि से इनकी आयु क्रमशः 25±4 के ए (हज़ार वर्ष) और 48±4 के ए (हज़ार वर्ष) निर्धारित हुई हैं। घाटी के एक छोर से दूसरे छोर तक अलग-अलग जगह पर पाई गई इन वेदिकाओं की ओ एस एल विधि से दुरबुक गाँव के पास 30±6 के ए (हज़ार वर्ष), शाचुकुल गाँव पर 22±4 के ए (हज़ार वर्ष) और गौर्ज/महाखड्ड इलाके में 22±4 के ए (हज़ार वर्ष), 21±2 के ए (हज़ार वर्ष), 6±0.6 के ए (हज़ार वर्ष) की आयु बतलाई गई है। ओ एस एल कालानुक्रमण से यह तथ्य सप्रमाण स्पष्ट है कि घाटी में दो चरणों में— पहला आज से 48±4 हज़ार साल पहले और दूसरा 30±6 से 21±2 हज़ार साल पहले, नदीय दौर रहा था। महाखड्ड इलाके की दो वेदिकाओं की ऊँचाइयों का अंतर और अनुदैर्घ्य परिच्छेदिका के आधार पर इस इलाके में 22±4 से 6±0.6 के ए (हज़ार वर्ष) के बीच लगभग 133 मीटर की अधःकर्तन गहराई बतलाई गई है। यह शोध पत्र घाटी की दोनों तरफ़ की दीवारों में वर्तमान नदी स्तर से लगभग 40-50 मीटर ऊँचाई पर मिलने वाले मृत्तिका, पांशु और एकांतरित रेत की संगति से मिलकर बने सरोवरी अवसादों को दर्ज़ करता है। घाटी के एक छोर से दूसरे छोर, विशेषतः घाटी के निचले इलाकों में कई सरोवरी अवसादों की मोटी/ऊँची परिच्छेदिका को रेखांकित किया गया है जैसे मुग्लिब नाला परिच्छेदिका (8-10 मीटर), टांगचे परिच्छेदिका (50 मीटर)। शाचुकुल गाँव में स्थित 4 परिच्छेदिकाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है। शाचुकुल-तारुक स्थल में पाई गई इन परिच्छेदिकाओं का अध्ययन कालानुक्रमण की दो विधियों 14C त्वरित द्रव्यमान स्पेक्ट्रममिति (ए एम एस), प्रकाशिक उद्दीप्ति संदीप्ति (ओ एस एल) से और आशिमकी एवं अन्य अवसादीय लक्षणों पर किया गया। रेत और पांशु-रेत से बना और 1.2 से 1.9 मीटर स्तर पर मृदु अवसादीय विरूपण संरचनाओं (सीज़्माईट) से युक्त 5 मीटर ऊँचाई वाली एस टी-1 परिच्छेदिका 0.5 मीटर स्तर पर ओ एस एल विधि से 20±0.6 के ए (हज़ार वर्ष) की आयु देती है। प्रभावी सरोवरी संलक्षणी वाली और 0.5-1 मीटर स्तर पर ड्रॉपस्टोन युक्त एस टी-2 (7.40 मीटर ऊँची) परिच्छेदिका 14C ए एम एस विधि द्वारा 1.8 मीटर और 7.5 मीटर स्तर पर क्रमशः 8620±30 14C ईयर बी पी (साल आज से पहले) और 6140±40 14C ईयर बी पी (साल आज से पहले) की आयु देती है। इसी परिच्छेदिका में, ओ एस एल विधि से 0.5 मीटर स्तर पर 9.0±1.3 के ए (हज़ार वर्ष) और 6 मीटर स्तर पर 6.2±0.94 के ए (हज़ार वर्ष) का कालानुक्रम प्राप्त हुआ है। सूक्ष्म से मध्यम कणिक रेत, क्रॉस-संस्तरित रेत, ड्रॉपस्टोन, मृत्तिका लेन्स, चपटी मृत्तिका तश्तरियों से युक्त 17.50 मीटर ऊँची परिच्छेदिका एस टी-3 14C ए एम एस विधि द्वारा 0.5 मीटर, 3 मीटर, 8 मीटर और 16.8 मीटर स्तर पर क्रमशः आज से 9630±40 14C ईयर बी पी, 8945±85 14C ईयर बी पी, 7125±35 14C ईयर बी पी और 5150±30 14C ईयर बी पी की आयु देती है। इस शोध कार्य की सबसे रोचक खोज 9.70 मीटर ऊँची एस टी-4 परिच्छेदिका को कहा जा सकता है। इसमें सभी लक्षण प्राकृतिक

तटबंध के निक्षेप के मिलते हैं। तकरीबन 5 मीटर के स्तर पर 3.4 मीटर की ऊँचाई वाला ऊर्ध्वाधर समनतिक वलन (पूर्व की ओर 20° अवनमन) की उपस्थिति इसको विवर्तनिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण बनाती है। इस परिच्छेदिका में 3 मीटर के स्तर पर लगभग 80 सेंटीमीटर मोटाई की रेतीली परत पर पाए गए लघुकशेरुकी उप-जीवाश्मों का भली-भांति परिरक्षित और समृद्ध संचयन पाया गया है। इस संचयन में विगलित दंत, दंतयुक्त जबड़े, जबड़े की अस्थियाँ, कशेरुकाएं, उपांग अस्थियाँ, लोमदार उपांग और विष्ठा सम्मिलित हैं। इस संचयन में लकड़ी के टुकड़े भी प्राप्त हुए हैं। 14C ए एम एस विधि द्वारा एक हड्डी और लकड़ी के एक टुकड़े की आयु आज से क्रमशः 3400±40 और 3140±35 वर्ष पूर्व की मिली है। लेखकगणों ने इसे बाढ़ जैसी अचानक होने वाली घटनाओं का परिणाम बताया है। कई घटनाओं के परिणामस्वरूप निक्षेपित हुई यह परिच्छेदिका बहुत संभव है कि बाढ़ से पूर्व किसी मांसाहारी जंतु का बसेरा रही होगी। संचयन में परिरक्षित मृदु उत्तकों की उपस्थिति अचानक से बाढ़ के साथ आए भारी अवसाद से ढक जाने का संकेत देती है। इस बाढ़ की घटना को पैंगगोंग सो/बैंगोंग सो के सबसे पूर्वी द्रोणी में लगभग आज से 3.2-2.1 हजार वर्ष पहले के कम आयाम वाले आर्द्र मिज़ाज से जोड़कर देखा गया है। निष्कर्षतः यह कहा गया है कि लगभग 50 किलोमीटर से अधिक फैलाव वाली यह झील पैंगगोंग सो की छठी पश्चिमी द्रोणी के तौर पर आज से लगभग 9.6 से 5.1 हजार साल पहले तक मौजूद थी। यह परिदृश्य आर्द्र और गर्म जलवायवी परिस्थितियों का द्योतक है। नदीय निक्षेपणीय पर्यावरण घाटी में दो चरणों—आज से 48 हजार साल पहले और फिर लगभग 30-21 हजार साल पहले रहा। बीच के समय अंतरालों में घाटी हिमनदन की गवाह रही है। एक अन्य शोध पत्र में उपरोक्त वर्णित लघुकशेरुकी उप-जीवाश्म संचयन से प्राप्त चिड़िया की प्रगंडिका (हयूमरस) अस्थि का वर्णन किया गया है। हिमालय-पार से पहली बार इस प्रकार का जीवाश्मी पदार्थ रिपोर्ट किया गया है। इस नमूने का कूटर्निक्स (साधारण नाम: बटेर) की प्रगंडिका अस्थि होना सुनिश्चित किया गया है।

पूर्व-औद्योगिक युग के प्रारंभिक अभियानों के ऐतिहासिक दस्तावेजों से लेकर वर्तमान तक के शोध पत्रों में, कुछ प्राचीन तटरेखाओं को पैंगगोंग झील के वर्तमान समय के जल स्तर (4247 मीटर औसत माध्य समुद्र स्तर) से 19 मीटर से 260 मीटर ऊपर तक स्थित दर्ज़ किया गया है। पैंगगोंग झील के पूर्वी प्रांत में समुद्र तल से 4320 मीटर की औसत माध्य ऊँचाई में 79 मीटर ऊँची सरोवरी वेदिका की आयु 30-40 हजार वर्ष की निर्धारित हुई है। द्रोणी को घेरे हुई यह स्पष्ट तट-रेखाएं और वेदिकाएं झील के बढ़े स्तर को इंगित करती हैं और प्राचीन समय में झील के क्षेत्रफल के बृहत्तर फैलाव की जानकारी देती हैं।

श्रीवास्तव और सह-शोधकर्तागण अपने पत्राचाराधीन शोध पत्र में, पैंगगोंग झील की परिधि पर किए गए भू-आकृतिक मानचित्रण के आधार पर वर्तमान झील स्तर से क्रमशः 6, 4.8, 3.8 और 1.25 मीटर ऊपर स्थित चार पुरा-तटरेखाओं को रेखांकित करते हैं। इस शोध कार्य में 4 डेल्टीय पालियों की पहचान हुई है जो इस डेल्टा को सुविकसित डेल्टा शीर्ष संस्तर, डेल्टाग्रनत संस्तर, डेल्टाग्र तली संस्तर के साथ प्रारूपिक गिल्बर्ट प्रकार का डेल्टा बनाती हैं। स्तर विन्यास के अनुसार सबसे पुरानी पालि का डेल्टा शीर्ष संस्तर झील के सबसे ऊँचे स्तर को दर्शाता है। इस संस्तर से मीठे पानी के मोलस्क रेडिक्स और हार्थ (जले हुए अवसाद की परत) को भी शोधकर्ताओं ने रिपोर्ट किया है। इस परत से मिले चारकोल की आयु 14C कालानुक्रमण विधि से 1.7 हजार वर्ष निर्धारित हुई है। झील स्तर के बदलावों को जानने के लिए विभिन्न पालियों से ओ एस एल कालानुक्रमण के लिए 6 नमूने लिए गए जो बताते हैं कि आज से लगभग 2-1 हजार साल पहले के बीच झील के स्तर में तकरीबन 6 मीटर की गिरावट आई थी। 3 रेडिक्स कवचों से प्राप्त किए गए 54 नमूनों के ऑक्सीजन स्थायी समस्थानिक विश्लेषण से सामने आए नतीजे यह दलील रखते हैं कि आधुनिक/वर्तमान मौसमी परिस्थितियाँ लगभग 1.7 हजार वर्ष पहले से प्रचलित हो गई होंगी।

## अन्य शोध कार्य

सबसे पश्चिमी द्रोणी का पानी पूर्वतम द्रोणी के पानी से दस गुना ज्यादा खारा है। यह विषमता सिल विभाजन और झील तंत्र में आने वाली जलधाराओं के स्रोत और अपवाह मार्ग के भूभाग की विविधता के कारण जान पड़ती है। यह विषमता झील के पानी के सालाना मिश्रण में भी प्रदर्शित होती है, इसलिए पश्चिमी द्रोणी को ठंड एकघटकीय झीलों के समूह में रखा गया है, जबकि पूर्वी द्रोणी द्विघटकीय झीलों के समूह के अंतर्गत आती है। पैंगगोंग सो की लवणता की मात्रा 10.69 पी पी एम, मापी गई है, जो खारा है (मीठे पानी की लवणता की ऊपरी सीमा 500 पी पी एम है)। खारे पानी के झील होने के बावजूद जाड़ों में झील पूरी तरह जम जाती है। पैंगगोंग झील के भौतिकीय-रासायनिक लक्षणों और उनका चुशूल चोटी से आनी वाली सहायक नदी की तुलना पर भी शोध पत्र प्रकाशित हैं।

## उपसंहार

आज टांगचे घाटी में आँखों के सामने जो भू-दृश्य उपस्थित है वह विवर्तनिकी और जलवायु की अन्योन्य क्रिया का परिणाम है। भारतीय मानसून तंत्र और पछुवा पवन तंत्र के प्रभाव क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण जलवायवी प्रक्रमों की व्यापक और सर्वांगीण अभिव्यक्ति इस घाटी में हुई है। कराकोरम भ्रंश की पीठ पर बैठी इस घाटी के भू-परिदृश्य के निर्माण में विवर्तनिक उथल-पुथल की नियंत्रक और नियामक भूमिका रही है।

कराकोरम भ्रंश का आधारभूत लक्षण सर्पण गति अस्थायी तौर पर दोनों भ्रंश शाखाओं के बीच वितरित होता रहा है, जिसमें एक समय में एक ही शाखा प्रभावी रही है। वर्तमान में, पैंगगोंग शाखा प्रभावी शाखा है। सूखे बीहड़, परित्यक्त प्रणाल, रोष मुंटाना, निक्षेपों में क्षैतिज विस्थापन, नदीय-सरोवरी परिच्छेदिका में पाई गई सहअवसादी विरूपण संरचनाओं सहित नदी की अनुदैर्घ्य परिच्छेदिका में स्पष्ट परिलक्षित होने वाले परिवर्तन स्थल, अचानक से नदी के मार्ग में आए समकोण मुड़ाव, भ्रंश की नव-विवर्तनिक गतिविधि के प्रमाण हैं।

पूरे क्षेत्र का प्रकृति चित्र हिमनदीय परिस्थितियों और अंतरा-हिमनदीय परिस्थितियों के दौरान विकसित हुए नदीय एवं सरोवरी निक्षेपणीय वातावरण की साझा तस्वीर है। प्रकाशित शोध पत्रों के आधार पर मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि घाटी में आज से लगभग 85 हज़ार साल पहले हिमनदीय परिस्थितियाँ (पैंगगोंग-2 ग्लेशिएल स्टेज) रहीं, जिसका अनुगमन आज से 48 हज़ार साल पहले रही नदीय वातावरणीय परिस्थितियों ने किया था। लगभग 40 हज़ार साल पहले घाटी एक बार फिर से हिमनदीय परिस्थितियों (पैंगगोंग-1 ग्लेशिएल स्टेज) की साक्षी बनी, जिसका गवाह रोष मुंटाना घाटी में आज भी उपस्थित है। आज से लगभग 30-21 हज़ार साल पहले घाटी की गोद में टांगचे नदी फिर से खेल रही थी। इस दौरान कराकोरम भ्रंश में गतिविधि भी काफी बढ़ी हुई थी। तदुपरांत, क्षेत्रीय हिमनदीय चरण (लद्दाख-2 ग्लेशिएल स्टेज) के चलते टांगचे घाटी भी आज से लगभग 20 साल से 12 हज़ार साल पहले तक बर्फ़ की चादर के अंदर सिमटी रही। इस हिमनदन के बाद बढ़े हुए मानसून के चलते 11 हज़ार साल पहले आई प्रलयकारी आंशिक बाढ़ ने घाटी के भू-दृश्य को बदलकर रख दिया। इस आंशिक बाढ़ ने सभी पूर्ववर्ती हिमनदीय निक्षेपों को प्रभावित या अपरदित करके उनको सदैव के लिए अभिनव घटना के मुख्य निक्षेप के तौर पर जमा कर दिया। इसी मानसूनी बढ़त के दौर में, टांगचे

घाटी आज से लगभग 9 हज़ार साल से 5 हज़ार साल पहले तक पैंगगोंग सो की छठी पश्चिमी द्रोणी के रूप में लगभग 50 किलोमीटर से अधिक फैलाव वाली झील में तब्दील हो गई। यह समय कराकोरम भ्रंश में भी काफ़ी उथल पुथल का दौर रहा। लगभग 3 हज़ार साल घाटी ने एक बार फिर जलवायु के कम आयाम वाले आर्द्र मिज़ाज के चलते बाढ़ जैसी परिस्थितियाँ देखीं। वर्तमान मौसमी परिस्थितियाँ लगभग 1.7 हज़ार वर्ष पहले से प्रचलित हो गई होंगी, जिनमें आज से 400 साल पहले के हिमनदीय चरण (पैंगगोंग सर्क ग्लेशिएल स्टेज) के दौरान व्यवधान हुआ।

इन सभी परिस्थितियों के काल, अवधि और पारस्परिक सहसंबंध परिचर्चा के विषय हैं। इसके साथ ही कारणवाचक कारकों— जलवायु, विवर्तनिकी, या इनकी पारस्परिक/अन्योन्य क्रिया को अलग करना मुश्किल काम है। निक्षेपणीय परिस्थितियों और विरूपण स्तरों के आद्योपांत अध्ययन के साथ कालानुक्रमण में व्याप्त विसंगतियों को बृहद स्तर में सुलझाने से क्षेत्र का स्पष्ट और सर्वसमावेशी भू-दृश्य विकास प्रस्तुत हो सकेगा। कालिक और स्थानिक दोनों पैमानों में क्रमबद्ध और सम्यक उच्च वियोजन बहुप्रतिता अध्ययन, क्वाटर्नरी कल्प के दौरान जलवायु और दोनों परिसंचरण तंत्रों (मानसून और पछुवा) की परिस्थितियों और उनके परिणामों को स्पष्ट प्रस्तुत करने के लिए नितान्त आवश्यक है।

## आभार

निदेशक, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ सभी प्रकार की सुविधा प्रदान करने के लिए हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

## संदर्भ

- An, Z., Porter, S.C., Kutzbach, J.E., Wu, X., Wang, S., Liu, X., Li, X., Zhou, W., 2000. Asynchronous Holocene optimum of the East Asia monsoon. *Quaternary Science Review* 19, 743–762.
- Bhat F. A., Yousuf A. R., Aftab A., Arshid J., Mahdi M. D. and Balkhi M. H., 2011. Ecology and Biodiversity in Pangong Tso (lake) and Its Inlet Stream in Ladakh, India. *International Journal of Biodiversity and Conservation*, 3, 501-511.
- Blöthe, J.H., Munack, H., Korup, O., Fülling, A., Garzanti, E., Resentini, A., Kubik, P.W., 2014. Late Quaternary valley infill and dissection in the Indus River, western Tibetan Plateau margin. *Quaternary Science Review* 94, 102–119.
- Bohon, W., 2014. Late Cenozoic-recent tectonics of the southwestern margin of the Tibetan Plateau, Ladakh, northwest India[D]. USA: Arizona State University.
- Boominathan, M. Ramachandra, T. V., 2010. Molluscs of Pangong Tso, a high-altitude brackish water lake in Ladakh. *Lake 2010: Wetlands, Biodiversity and Climate Change*.

- Brown, E.T., Bendick, R., Bourlés, D.L., Gaur, V., Molnar, P., Raisbeck, G.M., Yiou, F., 2003. Early Holocene climate recorded in geomorphological features in western Tibet. *Palaeogeography, Palaeoclimatology, Palaeoecology* 199, 141–151.
- Brown, E.T., Bendick, R., Bourlés, D.L., Gaur, V., Molnar, P., Raisbeck, G.M., Yiou, F., 2002. Slip rates of the Karakorum Fault, Ladakh, India, determined using cosmic ray exposure dating of debris flows and moraines. *Journal of Geophysical Research* 107, 2192doi:10.1029/2000JB000100.
- Burgisser, H.M., Gansser, A., Pika, J., 1982. Late Glacial lake sediments of the Indus valley area, northwestern Himalaya. *Eclogae Geol. Helv.* 75, 51–63.
- Chevalier, M.L., 2018. Active Tectonics along the Karakorum Fault, Western Tibetan Plateau: A Review. *Acta Geoscientia Sinica* doi: 10.3975/cagsb.2018.101601.
- Chevalier, M.L., Ryerson, F.J., Tapponnier, P., Finkel, R.C., Van Der Woerd J., Li, H., Liu, Q., 2005. Slip-rate measurements on the Karakorum fault may imply secular variations in fault motion. *Science*, 307(5708): 411-414.
- Chevalier, M.L., Tapponnier, P., Van Der Woerd J., Ryerson, F.J., Finkel, R.C., Li, H., 2012. Spatially constant slip rate along the southern segment of the Karakorum fault since 200 ka. *Tectonophysics*, 530-531(2), 152-179.
- Chevalier, M.L., Van Der Woerd J., Tapponnier, P., Li, H., Ryerson, F.J., Finkel, R.C., 2016. Late Quaternary slip-rate along the central Bangong-Chaxikang segment of the Karakorum fault, western Tibet. *Geological Society of America Bulletin*, 128, 284-314.
- Cronin, V.S., 1982. The physical and magnetic polarity stratigraphy of the Skardu Basin, Baltistan, Northern Pakistan. (Masters Thesis). Dartmouth College, Hanover.
- Cronin, V.S., 1989. Structural setting of the Skardu intermontane basin, Karakoram Himalaya, Pakistan. *Geological Society of America Special Paper* 232, 183–201.
- Dortch, J.M., Owen, L.A., Caffee, M.A., Kamp, U., 2011. Catastrophic partial drainage of Pangong Tso, northern India and Tibet. *Geomorphology* 125, 109–121.
- Dunlap, W.J., Weinberg, R.F., Searle, M.P., 1998. Karakoram fault zone rocks cool in two phases. *Geological Society of London* 155, 903–912.
- Flohn, H. 1981. The elevated heat source of the Tibetan highlands and its role for the large scale atmospheric circulation. In: *Geological and Ecological Studies of the Qinghai-Xizang Plateau: Science Press Beijing Gordon and Breach, New York*, 2, pp. 1463-1469.
- Fontes, J.C., Gasse, F., Gilbert, E., 1996. Holocene environmental changes in Lake Bangong basin (Western Tibet). Part 1: Chronology and stable isotopes of carbonates of a Holocene lacustrine core. *Palaeogeography Palaeoclimatology Palaeoecology* 120, 25–47.

- Fort, M., Burbank, D.W., Freydet, P., 1989. Lacustrine sedimentation in a semiarid alpine setting: an example from Ladakh, northwestern Himalaya. *Quaternary Research* 31, 332–352.
- Gee, E.R., 1989. Overview of geology and structure of the Salt Range, with observations on related areas of north Pakistan. *Geological Society of America Special Papers*, 232. Geological Society of America Publications, Washington, pp. 95–112.
- Goudie, A.S., Jones, D.J.C., Brunsden, D., 1984. Recent fluctuations in some glaciers of western Karakoram Mountains, Hunza Pakistan. In: Miller, K. (Ed.), *International Karakoram Project*. Cambridge University Press, Cambridge, pp. 441–455.
- Hewitt, K., 2009. Catastrophic rock slope failures and late Quaternary developments in the Nanga Parbat–Haramosh Massif, Upper Indus basin, northern Pakistan. *Quaternary Science Reviews* <http://dx.doi.org/10.1016/j.quascirev.2008.12.019>.
- Hewitt, K., 2011. Glacier Change, Concentration, and Elevation Effects in the Karakoram Himalaya, Upper Indus Basin. *Mountain Research and Development* <http://dx.doi.org/10.1659/MRD-JOURNAL-D-11-00020.1>.
- Hintersberger, E., Thiede, R.C., Strecker, M.R., 2011. The role of extension during brittle deformation within the NW Indian Himalaya. *Tectonics* 30, 1–16.
- Huang, C., Zhang, Q., Liu, F., 1989. A preliminary study of paleovegetation and palaeoclimate in the later period of Late Pleistocene in the Bangong Co Lake region of Xigang. *J. Nat. Resour.* 4, 247–253.
- Hutchinson, G.E., 1937. Biological Report No. 24. *Int. Rev. GesamtenHydrobiol.* 35, 134–177.
- Immerzeel, W.W., Van, B.L.P., Bierkens, M.F., 2010. Climate change will affect the Asian water towers. *Science* 328(5984): 1382–1385.
- Jade, S., Bhatt, B., Yang, Z., Bendick, R., Gaur, V.K., Molnar, P., Anand, M., Kumar, D., 2004. GPS measurements from the Ladakh Himalaya, India: preliminary tests of plate-like or continuous deformation in Tibet. *Geol. Soc. Am. Bull.* 116, 1385–1391.
- Jain, A.K., Singh, S., 2008. Tectonics of the southern Asian Plate margin along the Karakoram Shear Zone: constraints from field observations and U–Pb SHRIMP ages. *Tectonophysics* 451, 186–205.
- Klimeš, L., 2003. Life-forms and clonality of vascular plants along an altitudinal gradient in E Ladakh (NW Himalayas). *Basic Appl. Ecol.* 4, 317–328.
- Kotlia, B.S., Bhalla, M.S., Sharma, C., Rajagopalan, G., Ramesh, R., Chauhan, M.S., Mathur, P.D., Bhandari, S., Chacko, S.T., 1997a. Palaeoclimatic conditions in the upper Pleistocene and Holocene Bhimtal–Naukuchiatal lake basin in southcentral

- Kumaun, North India. *Palaeogeography Palaeoclimatology Palaeoecology* 130, 307–322.
- Kotlia, B.S., Schallreuter, I.H., Schallreuter, R., Schwarz, J., 1998. Evolution of Lamayurupaleolake in the Trans Himalaya: palaeoecological implications. *Eiszeit. Gegenw.* 48, 177–191.
  - Kotlia, B.S., Shukla, U.K., Bhalla, M.S., Mathur, P.D., Pant, C.C., 1997b. Quaternary fluviolacustrine deposits of the Lamayuru basin, Ladakh Himalaya: preliminary multidisciplinary investigations. *Geological Magazine*. 134, 807–815.
  - Lacassin, R., Valli, F., Araud, N., Leloup, P.H., Paquette, J.L., Li, H., Tapponnier, P., Chevalier, M.L., Guillot, S., Maheo, G., Zhiqin, X., 2004. Large-scale geometry, offset and kinematic evolution of the Karakorum fault, Tibet. *Earth. Planet. Sci. Lett.*, 219, 255-269.
  - Lal, R., Saini, H.S., Pant, N.C., Mujtaba, S.A.I., 2018. Tectonics induced switching of provenance during the Late Quaternary aggradation of the Indus River Valley, Ladakh, India. *Geoscience Frontiers* 1-13 <https://doi.org/10.1016/j.gsf.2017.12.016>.
  - Li, S.J., Zhen, B.X., Jiao, K.Q., 1991. Preliminary research on lacustrine deposit and lake evolution on the slope of west Kunlun Mountains. *Scientia Geographica Sinica* 4, 306–314.
  - Liu, Q., 1993. *Paleoclimat et contraintes chronologiques sur les mouvements recent dans l'Ouest du Tibet: Failles du Karakorum et de Longmu Co–Gozha Co, lacs en pull-apart de Longmu Co et de Sumxi Co*[D]. Paris: Universite Paris VII: 360.
  - Mayewski, P.A., Pregent, G.P., Jeschke, P.A., Ahmad, N., 1980. Himalayan and trans-Himalayan glacier fluctuations and South Asian monsoon record. *Arctic and Alpine Research* 12, 171–182.
  - Molnar, P., Burchfiel, B.C., Liang, K., Zhao, Z., 1987. Geomorphic evidence for active faulting in the AltynTagh and northern Tibet and qualitative estimates of its contribution to the convergence of India and Eurasia. *Geology* 15, 249–253.
  - Murphy, M.A., Yin, A., Kapp, P., Harrison, T.M., Ling, D., Guo, J., 2000. Southward propagation of the Karakoram fault system, southwest Tibet: Timing and magnitude of slip. *Geology*, 28, 451-454.
  - Nag, D., Phartiyal, B., Singh, D.S., 2016. Sedimentary characteristics of palaeolake deposits along the Indus River valley, Ladakh, Trans-Himalaya: Implications for the depositional environment. *Sedimentology* 63, 1765–1785.
  - Norin, E., 1946. *Geological Explorations in Western Tibet Reports from the Scientific Expedition to the North-Western Provinces of China under the Leadership of Dr. Sven Hedin* /3. Thule (214 pp.).



- Ou, Yu-Xion, 1981. Hydrologic characteristics of the east Bangong lake. Geological Xizang (Tibet) plateau and ecological studies of Qinghai–Xizang Plateau Environment and ecology of Qinghai–Xizang Plateau vol. 2. Science Press, Beijing, pp. 1713–1717.
- Owen, G., 1988. Experimental soft-sediment deformation structures formed by the liquefaction of unconsolidated sands and some ancient examples. *Sedimentology* 43, 279–294.
- Pant, R.K., Phadtare, N.R., Chamyal, L.S., Juyal, N., 2005. Quaternary deposits in Ladakh and Karakoram Himalaya: a treasure trove of the palaeoclimate records. *Current Science* 88(11), 1789-1798.
- Peltzer G., Tapponnier P., Armijo R., 1989. Magnitude of Late Quaternary left-lateral displacements along the north edge of Tibet[J]. *Science* 246, 1285-1289.
- Phartiyal, B., Sharma, A., 2009. Soft-sediment deformation structures in the Late Quaternary sediments of Ladakh: evidence for multiple phases of seismic tremors in the North western Himalayan Region. *Journal of Asian Earth Sciences* 34, 761–770.
- Phartiyal, B., Sharma, A., Kothari, G.C., 2013. Existence of Late Quaternary and Holocenelakes along the River Indus in Ladakh Region of Trans Himalaya, NW India: implicationsto climate and tectonics. *Chinese Science Bulliten*58 (I), 142–155.
- Phartiyal, B., Singh, R., Kothiyari, G.C., 2015. Late-Quaternary geomorphic scenario due to changing depositional regimes in the Tangtse Valley, trans-Himalaya, NW India. *Palaeogeography Palaeoclimatology Palaeoecology*422, 11–24.
- Rutter, E.H., Faulkner, D.R., Brodie, K.H., Phillips, R.J., Serale, M.P., 2007. Rock deformation processes in the Karakoram fault zone, Eastern Karakoram, Ladakh, NW India. *Journal of Structural Geology* 29, 1315–1326.
- Sangode, S.J., Bagati, T.N., 1995. Tectono-climatic signatures in higher Himalayan lakes: A palaeomagnetic rock magnetic approach in the lacustrine sediments of Lamayuru, Ladakh, India. *Journal of Himalayan Geology*, 6: 51-60.
- Sangode, S.J., Meshram, D.C., Rawat, S., Suresh, N., Srivastava, P., 2017. Sedimentary and Geomorphic observations along Pangong strand of the Karakorum fault (NW Himalaya) depicting Holocene Uplift. *Himalayan Geology*, 38(2), 111-128.
- Sangode, S.J., Phadtare, N.R., Meshram, D.C., Rawat, S., Suresh, N., 2011. A record of lake outburst in the Indus valley of Ladakh Himalaya, India. *Current Science* 100, 1712–1718.
- Searle, M.P., Dewey, J.F., Dunlap, W.J., 1998. Transpression tectonics along the Karakoram fault zone, northern Ladakh: constraints on Tibetan extrusion. In: Holdsworth, R.E., Strachan, R.A., Dewey, J.E. (Eds.), *Continental Transpressional*

and Transtensional Tectonics. Geological Society of London Special Publication 135, pp. 307–326.

- Searle, M.P., Richard, J.P., 2007. Relationships between right-lateral shear along the Karakoram fault and metamorphism, magmatism, exhumation and uplift: evidence from the K2-Gasherbrum, Pangong ranges, north Pakistan and Ladakh. Geological Society London, 164, 439–450.
- Sharma, A., Kumar, K., Laskar, A., Singh, S. K., Mehta, P. 2017. Oxygen, deuterium, and strontium isotope characteristics of the Indus River water system. *Geomorphology* 284, 5–16. doi: 10.1016/j.geomorph.2016.12.014.
- Shi, Y., Yu, G., Liu, X., Li, B. and Yao, T., Reconstruction of the 30–40 ka BP enhanced Indian monsoon climate based on geological records from the Tibetan Plateau. *Palaeogeography, Palaeoclimatology, Palaeoecology*, 2001, 169(1-2), 69–83.
- Singh, R., Phartiyal, B., Patnaik, R., Pandey, B., 2018. 3000 years old bird's humerus recovered in excavation from Ladakh, Trans-Himalaya. *Anusandhan*6(1), 12-17.
- Srimal, N., 1986. Geology and oxygen, strontium and  $^{40}\text{Ar}/^{39}\text{Ar}$  isotopic study of India-Asia collision in the Ladakh and Karakoram Himalaya, NW India (Unpublished Doctoral dissertation, University of Rochester. Department of Geological Sciences.
- Streule, M.J., Phillips, R.J., Searle, M.P., Waters, D.J., Horstwood, M.S.A., 2009. Evolution and chronology of the Pangong metamorphic complex adjacent to the Karakoram Fault, Ladakh: constraints from thermochronology, metamorphic modelling and U–Pb geochronology. *J. Geol. Soc. Lond.* 166, 919–932.
- Trinkler, E., 1930. The ice-age on the Tibetan Plateau and in the adjacent regions. *The Geographical Journal*, 75(3), 225-232.
- Upadhyay, R., 2001. Seismically-induced soft-sediment deformational structures around Khalsar in the Shyok Valley, northern Ladakh and eastern Karakoram, India. *Current Science* 81(5), 600-604.
- Upadhyay, R., 2003. Earthquake-induced soft-sediment deformation in the lower Shyok river valley, northern Ladakh, India. *Journal of Asian Earth Science* 21, 413–421.
- Valli, F., Arnaud, N., Leloup, P.H., Sobel, E.R., Maheo, G., Lacassin, R., Guillots, S., Li, H., Tapponnier, P., Xu, Z., 2007. Twenty million years of continuous deformation along the Karakoram fault, western Tibet: A thermochronological analysis. *Tectonics*, 26(4), TC4004.
- Valli, F., Leloup, P.H., Paquette, J.L., Arnaud, N., Li, H., Tapponnier, P., Lacassin, R., Guillots, S., Liu, D., Deloule, E., Xu, Z., Maheo, G., 2008. New U-Th/Pb

constraints on timing of shearing and long-term slip-rate on the Karakorum fault. *Tectonics*, 27(5), 97-112.

- Wake, C.P., Mayewski, P.A., 1996. Himalayan interdisciplinary palaeoclimate project: Science and implementation plan. PAGES Workshop Report Series 96-1, p. 96.
- Wang, M., Hou, J., Lei, Y., 2014. Classification of Tibetan lakes based on variations in seasonal lake water temperature. *Chinese Science Bulletin*, 59(34), 4847-4855.
- Wright, T.J., Parsons, B., England, P.C., Fielding, E.J., 2004. InSAR Observations of low Slip rates on the Major faults of Western Tibet. *Science*, 305(5681), 236-239.
- Ye, D.Z., Wu, G.X., 1998. The Role of The Heat Source of the Tibetan Plateau in the General Circulation. *Meteorology and Atmospheric Physics* 67(1-4): 181-198.

## 8. दक्षिणी महासागर में पादप-प्लवक उत्पादकता: भारतीय वैज्ञानिक अभियानों की खोज

डॉ. शरतचंद्र त्रिपाठी

ईएसएसओ-राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र  
(एनसीपीओआर) गोवा

### सारांश

भारतीय दक्षिणी महासागर क्षेत्र में भारत की अनुसंधान गतिविधियाँ वैश्विक जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के संबंध में समुद्री उत्पादकता, जैव भू-रासायनिक चक्र और दक्षिणी महासागर प्रक्रियाओं की बढ़ी हुई समझ के महत्व को उजागर करती हैं। भारतीय दक्षिणी महासागर क्षेत्र में बहुत कम अनुसंधान किए गए हैं, इसलिए भारत सरकार के पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के तत्वावधान में, राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र (एनसीपीओआर), गोवा द्वारा 2004 से भारतीय दक्षिणी महासागर क्षेत्र में विस्तृत पारिस्थितिकी तंत्र के सर्वेक्षण करने के लिए ठोस प्रयास किए जा रहे हैं। क्षेत्रीय और वैश्विक जलवायु परिवर्तनशीलता में दक्षिणी महासागर की भूमिका व प्रतिक्रिया को समझने के लिए प्राथमिकता के साथ प्रयत्न किए जा रहे हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय दक्षिणी महासागर अभियानों के दौरान पादप प्लवक उत्पादकता के अध्ययन से प्रकाशित किए गए परिणाम के मुख्य निष्कर्षों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिससे दक्षिण ध्रुवीय ग्रीष्मकाल में दक्षिणी महासागर क्षेत्र के पादप प्लवक-उत्पादकता की वर्तमान धारणा को समझा जा सकता है। इससे अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक समुदाय में राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र के द्वारा भारतीय दक्षिणी महासागर क्षेत्र में किए जा रहे वैज्ञानिक प्रयासों को सामने लाने के साथ ही साथ भारतीय दक्षिणी महासागर क्षेत्र में कार्बन की गत्यात्मकता को समझने में भी सहयोग मिलेगा।

**बीज शब्द:** पादप प्लवक-उत्पादकता, भौतिक कारक, जैव भू-रासायन, दक्षिणी महासागर

### प्रस्तावना

पृथ्वी की जलवायु में महासागरों की प्रमुख भूमिका होती है और प्रत्येक महासागरीय क्षेत्र के वैश्विक जलवायु परिवर्तन परिदृश्य को प्रभावित करने वाली वायुमंडलीय CO<sub>2</sub> अवशोषण क्षमता का स्तर अलग-अलग होता है। दक्षिणी महासागर दुनिया का सबसे बड़ा 'उच्च पोषक तत्व निम्न-क्लोरोफिल' क्षेत्र है, जो अपने प्रचलित घुलनशीलता और जैविक पंपों के माध्यम से वायुमंडलीय CO<sub>2</sub> के अवशोषण में एक महत्वपूर्ण कार्य करता है। इस प्रकार दक्षिणी महासागर जैव रासायनिक रासायन (जैसे, कार्बन, पोषक तत्व आदि) को समुद्र में गहरे आंतरिक स्थानांतरण के माध्यम से वैश्विक कार्बन चक्र और जलवायु नियंत्रण में एक केंद्रीय भूमिका निभाता है। "जैविक पंप" की दक्षता पर्यावरण और जैविक कारकों (जैसे कि पादप प्लवक और प्राणीप्लवक) के प्रकार पर निर्भर करती है, जो प्रतिक्रियास्वरूप जलवायु परिवर्तन से हो रहे भौतिक रासायनिक परिवर्तनों के उतार-चढ़ाव से प्रभावित होती है।

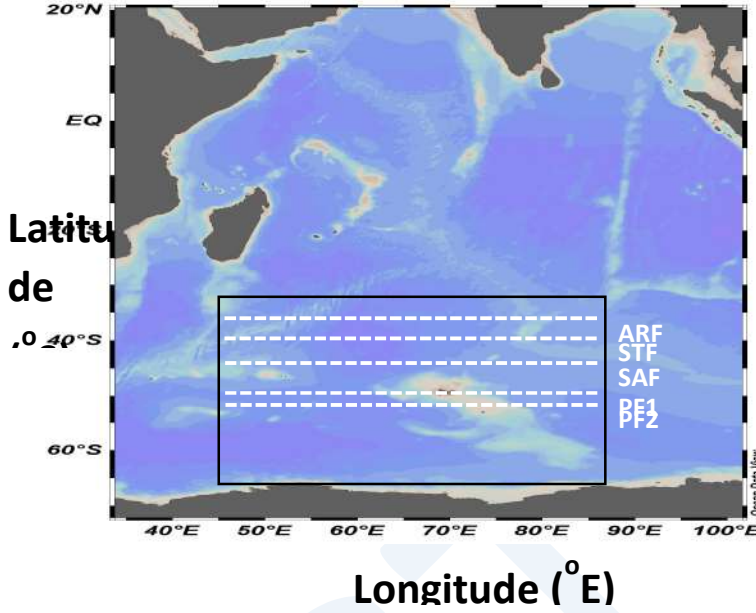
समुद्र के शीर्ष 100 मीटर में जल की हर बूंद में हजारों स्वतंत्र-प्लावी, अधिकतर एकल-कोशिका वाले, सूक्ष्म पादप होते हैं जिन्हें पादप प्लवक कहा जाता है। पादप प्लवक में क्लोरोफिल-एवर्णक की उपस्थिति उन्हें प्रकाश संश्लेषण करने में सक्षम बनाती है। पादप प्लवक उत्पादकता कार्बनिक पदार्थ का उत्पादन है, जिसमें अकार्बनिक यौगिकों (जैसे CO<sub>2</sub> और पोषक तत्वों) से प्रकाश ऊर्जा के जैविक

रूपांतरण (मुख्य रूप से ऑक्सीजन प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के माध्यम से) द्वारा रासायनिक ऊर्जा बनती है और ऑक्सीजन का उत्पादन होता है। महासागर में, पादप प्लवक मुख्य जीव हैं, जो समुद्री उत्पादकता के लिए जिम्मेदार हैं, इस प्रकार यह समुद्री खाद्य श्रृंखला के मूल आधार होते हैं। नाइट्रोजन के स्रोत के आधार पर समुद्र को सौर प्रकाश से परितृप्त क्षेत्र (यूफोटिक क्षेत्र), पादप प्लवक-उत्पादकता क्षेत्र और पुनर्निर्मित उत्पादन क्षेत्र में विभाजित किया जा सकता है। नया उत्पादन पादप प्लवक उत्पादकता का वो अंश है जो या तो गहरे समुद्र या वायुमंडलीय इनपुट से नव आपूर्ति किए गए नाइट्रोजन (यानी  $\text{NO}_3$ ) द्वारा समर्थित होता है। पुनर्निर्मित उत्पादन वह क्षेत्र है जो सौर प्रकाश से समृद्ध समुद्री क्षेत्र में निरंतर हो रहे पुनर्निर्मित पोषक तत्वों (यानी  $\text{NH}_4$ , यूरिया) द्वारा समर्थित होता है। नवीन उत्पादन समुद्र के सौर प्रकाश परितृप्त क्षेत्र के निचले भाग और उत्तर पोषक स्तर के लिए प्रकाश संश्लेषित रूप से उत्पादित कार्बन के अनुक्रम के लिए जिम्मेदार होता है। हालाँकि पुनर्निर्मित उत्पादन, ज्यादातर समुद्र के पादप प्लवकों की सामुदायिक सुरक्षा आवश्यकताओं को बनाए रखता है। नवीन उत्पादन और 'कुल पादप प्लवक-उत्पादकता' के अनुपात को एफ-अनुपात कहते हैं। एफ-अनुपात दक्षिणी महासागर की तरह पोषक तत्वों से भरपूर जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में निर्यात प्रवाह की शक्ति का आकलन करने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं।

यह देखा गया है कि दक्षिणी महासागर क्षेत्रों में पादप प्लवक-उत्पादकता का उनके अग्रंश और अभिसरण क्षेत्रों की जल-गत्यात्मकता से निकट संबंध होता है, जो शिकार-शिकारी संबंध, खाद्य श्रृंखला संरचना और जैव भू-रासायनिक चक्र को प्रभावित करता है। दक्षिणी महासागर पारिस्थितिक तंत्र को अक्षांश द्वारा बड़े पैमाने पर कई अग्रंश प्रणालियों में विभाजित किया गया है, जैसे कि अगुलहास प्रत्यावर्तन अग्रंश (Agulhas Retroflexion Front, ARF), उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रंश (Subtropical Front, STF), उप-अंटार्कटिक अग्रंश (Sub-Antarctic Front, SAF), ध्रुवीय अग्रंश 1 (Polar Front 1, PF1) और ध्रुवीय अग्रंश 2 (Polar Front 2, PF2)। व्यापक रूप से दक्षिणी महासागर के जैव भू-रासायन और संचरण को जलवायु परिवर्तन के कारण परिवर्तन के प्रति संवेदनशील माना जाता है, परिणामस्वरूप उप-अंटार्कटिक अग्रंश और उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रंश के सिलिका-सीमित जल में सूक्ष्माकार पादप प्लवक (सूक्ष्म फ्लैगेलेट्स, कोकोलिथोफोर्स और सूक्ष्म प्राणी प्लवक) समुदाय ज्यादा मात्रा में दिखाई देते हैं, वहीं दक्षिण की ओर अर्थात् ध्रुवीय अग्रंश और तटीय अंटार्कटिका के 'उच्च पोषक तत्व निम्न-क्लोरोफिल' जल में बड़े पादप प्लवक (डायटम) की संख्या अधिक मिलती है। यहाँ सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोहा, तांबा, कोबाल्ट आदि की बहुत कम मात्रा होने के कारण पादप प्लवक उत्पादकता प्रभावित/सीमित होती है।

ध्रुवीय क्षेत्र पृथ्वी की बदलती जलवायु के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी होते हैं और किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और गति को समझने के लिए प्रमुख रूप से कार्य करते हैं। इनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमें भावी जलवायु का संकेत मिलता है। यदि हम जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के प्रभावों को समझना चाहते हैं तो इस प्रकार ध्रुवीय क्षेत्रों से जुड़ी प्रक्रियाओं की नियमित निगरानी करना अत्यंत आवश्यक है। इस पृष्ठभूमि में, 2004 से पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार और राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा ने दक्षिणी महासागर के भारतीय क्षेत्र (चित्र 1) का अध्ययन करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया है जो दक्षिणी महासागर की प्रक्रियाओं और उत्पादकता की बेहतर समझ और वैश्विक जलवायु परिवर्तन में दक्षिणी महासागर की प्रतिक्रिया को समझने के लिए तैयार किया गया है। इसके अंतर्गत अब तक 10 बहु-संस्थागत और बहु-

विधात्मक अनुसंधान वैज्ञानिक अभियान (चित्र 2) सफलतापूर्वक पूरे हो चुके हैं। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य विभिन्न भारतीय दक्षिणी महासागर वैज्ञानिक अभियानों के दौरान किए गए पादप प्लवक उत्पादकता के अध्ययनों के परिणामस्वरूप मिले मुख्य निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत करना है।

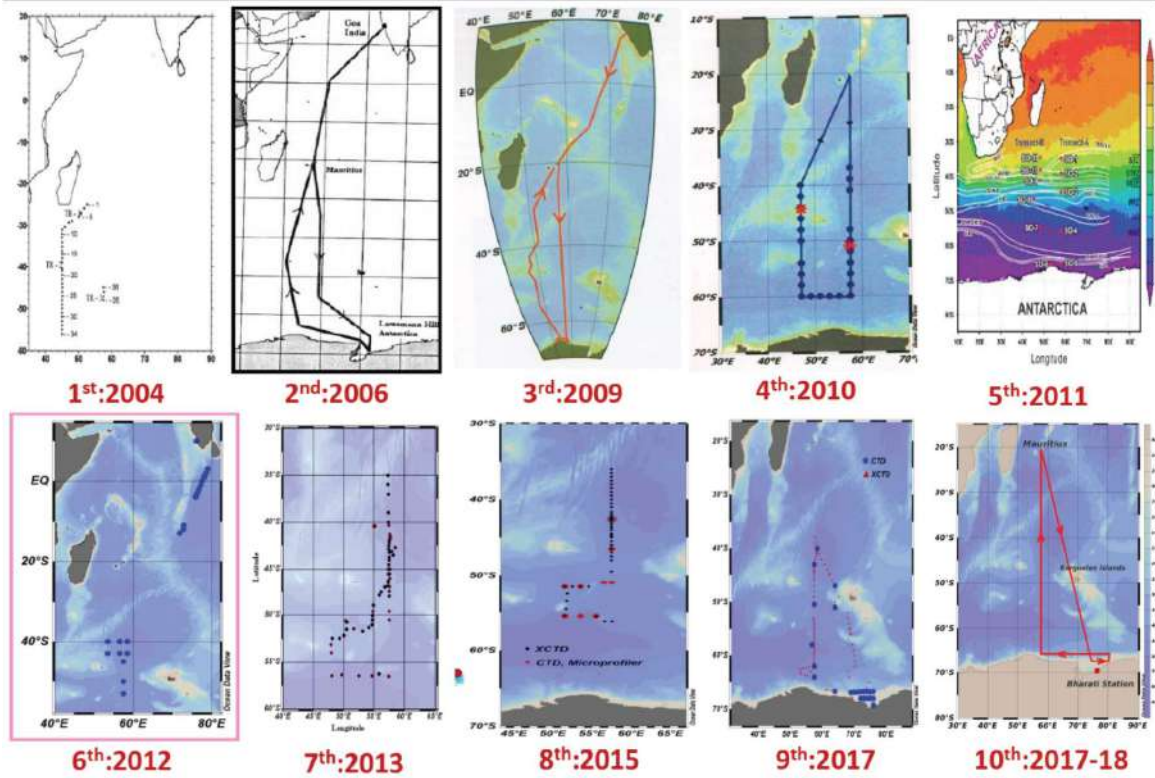


**चित्र 1:** दक्षिणी महासागर के हिंद क्षेत्र (आयत में) को दिखाने वाला मानचित्र। सफेद रेखाएं अग्रांश के सामान्य स्थानों को इंगित करती हैं, जो साल-दर-साल थोड़ा बदल सकती हैं।

### दक्षिणी महासागर में भारतीय वैज्ञानिक अभियानों के प्रमुख निष्कर्ष: (विशेष तौर पर पादप प्लवक उत्पादकता का अध्ययन)

पादप प्लवक उत्पादकता पर सबसे पहली रिपोर्ट वर्ष 2009 में आई थी, जो वर्ष 2004 में ओआरवी-सागर कन्या जहाज पर किए गए प्रथम भारतीय दक्षिणी महासागर वैज्ञानिक अभियान से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर तैयार की गई थी। इसमें 45°पूर्व देशांतर से संलग्न विभिन्न अग्रांश तंत्रों के हाइड्रोग्राफिक और उपग्रह-आधारित पादप प्लवक उत्पादकता के पैटर्न शामिल हैं। इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों से यह पता चला कि उच्च (400 से 1000 mgC m<sup>-2</sup> d<sup>-1</sup>) 'एकीकृत पादप प्लवक उत्पादकता' (IPP) का क्षेत्र 39°द और 43°द के बीच है और अधिकतम IPP (1000 mgC m<sup>-2</sup> d<sup>-1</sup>) 42°द में पाई गई और IPP उत्तर की ओर 20°द (200 mgC m<sup>-2</sup> d<sup>-1</sup>) और दक्षिण की ओर 55°द (100 mgC m<sup>-2</sup> d<sup>-1</sup>) में धीरे धीरे घटती गई। इस प्रकार, उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रांश और ध्रुवीय अग्रांश के दक्षिण भाग, अगुलहास प्रत्यावर्तन अग्रांश और उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रांश के उत्तरी भाग की तुलना में कहीं अधिक उत्पादक पाए गए। अगुलहास प्रत्यावर्तन अग्रांश और उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रांश के उत्तरी भाग में निम्न पादप प्लवक उत्पादकता का कारण सीमित सूर्य प्रकाश की मात्रा नहीं थी, बल्कि संभवतः सौर प्रकाश से परितृप्त क्षेत्र में कम पोषक तत्वों की सांद्रता और गहरी थर्मोक्लाइन से प्रेरित उच्च जल स्तंभ स्थिरता और स्तरीकरण के संयुक्त प्रभाव के कारण ऐसा होता है। उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रांश और ध्रुवीय अग्रांश के दक्षिण भाग में पाई गई उच्च पादप प्लवक उत्पादकता थर्मोक्लाइन की गहराई के

कम होने से उच्च मात्रा में पोषक तत्वों और CO<sub>2</sub> की आपूर्ति के कारण होती है। शोधकर्ताओं के अनुसार पादप प्लवक उत्पादकता की उच्च मात्रा वाला क्षेत्र एक सक्रिय 'पारंपरिक खाद्य-श्रृंखला' के प्रसार से है। इसके विपरीत एक सक्रिय 'सूक्ष्म जीवीय खाद्य-श्रृंखला' निम्नपादप प्लवक उत्पादकता क्षेत्रों से संलग्न होता है। इस प्रकार, पादप प्लवक उत्पादकता का प्रमुख भाग मीसोप्राणीप्लवक जैवभार को बनाए रखने के लिए सूक्ष्मप्राणीप्लवकों के माध्यम से प्रसारित हो सकता है। अर्थात् 'सूक्ष्मजीवीय खाद्य-श्रृंखला' सूक्ष्म पादप प्लवक के द्वारा उत्पादित कार्बन को अगले पोषक स्तर (मीसोप्राणीप्लवक) को स्थानांतरण करने लिए एक संयोजक के रूप में महत्व रखती है।



**चित्र 2 :** दक्षिणी महासागर के हिंद क्षेत्र में आज तक किए गए भारतीय वैज्ञानिक अभियानों के कूज़ विवरण।

दूसरा भारतीय दक्षिणी महासागर वैज्ञानिक अभियान मार्च 2006 में आयोजित किया गया था जिसके लिए अकादमिक बोरिस पेट्रोव जहाज का उपयोग किया गया था। इसमें शोधकर्ताओं ने पादप प्लवक द्वारा संभावित नाइट्रोजन अवशोषण पर सूक्ष्म पोषक तत्व (लोहा) संवर्धन के प्रभाव को समझने के प्रयास किए थे।<sup>15</sup>N ट्रेसर और लोहा-संवर्धन प्रयोग द्वारा यह पाया गया कि लोहा के संवर्धन के प्रारंभिक चरण के दौरान पादप प्लवक उत्पादकता में वृद्धि नहीं हुई लेकिन एक समय अंतराल के बाद तेजी से वृद्धि देखी गई। हालांकि इस देरी का कारण अस्पष्ट था। इसके अलावा, उन्होंने पूर्व में दी गई परिकल्पना को नकार दिया कि 'लोहे की उपलब्धता केवल नाइट्रेट-अवशोषण मात्रा को बढ़ाती है' बल्कि उनके परिणामों ने संकेत दिया कि लोहे की उपलब्धता नाइट्रोजन के सभी तत्वों (यानी नाइट्रेट, अमोनियम और यूरिया) की दरों को बढ़ाती है। 43°द और 35°द में पाया गया एफ-अनुपात दोनों 'नियंत्रित' (0.38-0.50 और 0.21-0.27) और 'संवर्धन' (0.34-0.54 और 0.22-0.26) स्थितियों में लगभग समान रहा।

वर्ष 2012 में, दक्षिणी महासागर के हिंद क्षेत्र में 'कुल पादप प्लवक-उत्पादकता' और 'नवीन उत्पादन' की दक्षिणी और क्षेत्रीय परिवर्तनशीलता का अध्ययन किया गया, जिसके अंतर्गत 57.5°पू (खंड A) और 48°पू (खंड B) में 2009 के दक्षिण ध्रुवीय ग्रीष्मकाल (फरवरी-अप्रैल) के दौरान आंकड़े एकत्रित किए गए। उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रांश के दक्षिण भाग में सर्वाधिक कुल पादप प्लवक-उत्पादकता 925 mgC m<sup>-2</sup>d<sup>-1</sup>, नवीन उत्पादन 4.1 mmolN m<sup>-2</sup> d<sup>-1</sup> और उच्च एफ-अनुपात 0.6 पाया गया। इस उच्च उत्पादन के लिए क्षेत्र में उत्तरवर्ती प्रवाहित नितलस्थ अंटार्कटिक जल के ऊर्ध्वप्रवाहन को उत्तरदायी माना गया, क्योंकि इस जलमें प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्व (जैसे लोहा) होते हैं, जिससे पादप प्लवक-उत्पादकता की वृद्धि को सहायता मिलती है। खंड A की तुलना में खंड B में क्लोरोफिल-ए, कार्बन-अवशोषण और नवीन उत्पादन का उच्च मात्रा में मिलना, अगुलहास स्रोत और पास के क्रोजेट द्वीप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की अतिरिक्त आपूर्ति के कारण होने का संकेत देते हैं। परिणाम दर्शाते हैं कि नाइट्रेट की सीमित मात्रा के कारण अगुलहास प्रत्यावर्तन अग्रांश पर पादप प्लवक उत्पादकता नवीन उत्पादन और f-अनुपात सबसे कम पाए गए; जबकि, ध्रुवीय क्षेत्रों (PF1+PF2) में संभवतः सूक्ष्म पोषक तत्वों (लोहा) की सीमित मात्रा होने और सूक्ष्मपादप प्लवक की वृद्धि के कारण अंटार्कटिक भाग (PF2 के दक्षिण में) की तुलना में ध्रुवीय क्षेत्र में पादप प्लवक-उत्पादकता निम्न मात्रा में और नवीन उत्पादन मध्यम स्तर तक पाया गया, वहीं एफ-अनुपात भी निम्न था। शोधकर्ताओं ने यह पाया कि यदि दक्षिणी महासागर के हिंद क्षेत्र में कोई भी पर्यावरणीय असंतुलन हो तो 'कुल पादप प्लवक-उत्पादन' का लगभग 78% महासागर की गहराई तक पहुंचने की संभावना बनती है।

वर्ष में प्रकाशित 2014 हुए एक शोधपत्र में इस तथ्य को खोजने का प्रयास किया गया कि दक्षिणी महासागर के हिंद क्षेत्र में पादप प्लवक-उत्पादकता 'वर्णक पैकेजिंग प्रभाव' से प्रभावित होती है या नहीं? फरवरी में सागर निधि जहाज पर एकत्रित कि 2010ए गए आंकड़ों का उपयोग करके पादप प्लवक-उत्पादकता को प्रभावित करने में पादप-प्लवक की प्रजातियां वर्णक प्रकारों की भूमिका की जांचकी गई थी। इसके लिए भारतीय दक्षिणी महासागर अभियान के नियमित ध्रुवीय खंडों में 44°द से लेकर 65.33°द तक छह स्टेशन चुने गए थे। अपतटीय और तटीय स्टेशनों की तुलना करके "वर्णक पैकेजिंग प्रभाव" को समझने का प्रयास किया गया। विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि ध्रुवीय स्टेशनों में अनुकूल पोषक परिस्थितियों में समान प्रकाश तीव्रता पर सतह 'जैवभार विशिष्ट-पादप प्लवकउत्पादकता-' में कमी पाई गयी जबकि अपतटीय स्टेशनों में ऐसी कोई कमी नहीं दिखी। यह परिकल्पित किया गया कि 'वर्णक पैकेजिंग प्रभाव'के कारण ऐसा हुआ है। वास्तव में 'वर्णक पैकेजिंग प्रभाव', नैनो या पिको आकार की तुलना में बड़े या सूक्ष्मपादप प्लवकमें अधिक स्पष्ट होता (डायटम) है और इसलिए अपतटीय स्टेशनोंमें अधिक देखा जाता है। अध्ययन से यह देखा गया कि परिवेशी पोषक तत्वों के अनुपात (N:P:Si) अपतटीय और तटीय स्टेशनों पर क्रमशः सूक्ष्म और वृहतपादप प्लवक की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थिति की पुष्टि करते हैं। इस अध्ययन से वह सामान्य धारणा गलत साबित हो गई कि 'उच्च पादप प्लवक जैव भार हमेशा उच्च पादप प्लवक-उत्पादकता को जन्म देता है'। वर्णक पैकेजिंग के कारण पादप-प्लवक की प्रकाश अवशोषण या प्रकाश संश्लेषक-क्षमता कम हो जाती है, जिससे उत्पादकता की मात्रा कम हो जाती है।

वर्ष 2015 में दक्षिणी महासागर के हिंद क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोणों से उत्पादकता क्षमता की व्याख्या करने पर कुछ शोधपत्र प्रकाशित हुए थे। इनसे जो तथ्य उभरकर सामने आए, उनमें पहली बात



दक्षिणी महासागर के गहरे जल के स्थायी समस्थानिकों से दक्षिणी महासागर के CO<sub>2</sub> अवशोषक कुंड की भांति काम करने के प्रामाणिक संकेत मिलने की थी। CO<sub>2</sub> की समस्थानिक संरचना दक्षिणी महासागरीय स्टेशनों के सतही जल में मौजूद घुलित अकार्बनिक कार्बन की CO<sub>2</sub> से निकटता से मेल खाती हुई पाई गई। इस अध्ययन से पता चला है कि दक्षिणी महासागर के हिंद क्षेत्र से CO<sub>2</sub> का बहिर्गमन मुख्यतः अकार्बनिक कार्बन के पृथक्करण के कारण है, जो वास्तव में महासागरीय अम्लीकरण से जुड़ा है। भविष्य में वैश्विक तापन के प्रभाव से अकार्बनिक कार्बन के पृथक्करण के कारण CO<sub>2</sub> की बहिर्गमन प्रक्रिया के तेज होने की संभावना बनती है। एक अन्य अध्ययन में 'स्तंभ एकीकृत पादप प्लवक उत्पादकता' को नियंत्रित करने में अधिकतम क्लोरोफिल सांद्रता की भूमिका की जांच की गई। सन 2011 के फरवरी-मार्च महीनों में पांचवे भारतीय दक्षिणी महासागर अभियान के दौरान ध्रुवीय अग्रंश 1(51°30'द और 57°30'पू) और उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रंश (42°00'द और 47°30'पू) पर सागर निधि जहाज पर किए गए काल श्रृंखला अवलोकन से एकत्रित आंकड़ों द्वारा इन दोनों अग्रंश प्रणालियों में पादप प्लवक उत्पादकता की परिवर्तनशीलता के लिए अधिकतम क्लोरोफिल सांद्रता से संबंधों को समझने के प्रयास किए गए। परिणाम दर्शाते हैं कि ध्रुवीय अग्रंश को वायुमंडलीय CO<sub>2</sub> का एक कुंड माना जा सकता है। उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रंश (0.26±0.14 mgm<sup>-3</sup>) की तुलना में ध्रुवीय अग्रंश (0.51±0.18 mgm<sup>-3</sup>) पर लगभग दो गुना अधिक क्लोरोफिल-ए मिला, जो 'स्तंभ एकीकृत पादप प्लवक उत्पादकता' में भी परिलक्षित होता है क्योंकि यह उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रंश (152 mgC m<sup>-2</sup>d<sup>-1</sup>) की तुलना में ध्रुवीय अग्रंश (211 mgC m<sup>-2</sup>d<sup>-1</sup>) पर लगभग 1.4 गुना अधिक था। ध्रुवीय अग्रंश में अधिक जैवभार और उत्पादकता मुख्य रूप से अधिकतम क्लोरोफिल सांद्रता से संबद्ध है, जो 'न्यूनतम तापमान परत' की ऊपरी सीमा से संलग्न है। 'न्यूनतम तापमान परत' को लौह-सीमित 'ऊपरी मिश्रित परत' में लोहे का प्रमुख स्रोत माना जाता है, विशेष रूप से क्लोरोफिल के संदर्भ में, जहां आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व (संभवतः लौह) की आपूर्ति से 'निम्न प्रकाश अनुकूलित' पादप-प्लवक का विकास आरंभ होता है। ध्रुवीय अग्रंश में वृहत् पादप-प्लवक (डायटम) प्रमुख समूह के रूप में पाए गए। 'निर्यात उत्पादन' एवं प्रवाह में डायटम के महत्व को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ध्रुवीय अग्रंश में उनका प्रभुत्व इस क्षेत्र को वायुमंडलीय CO<sub>2</sub> के लिए एक कुंड के रूप में बनाए रखता है। वर्ष 2010 में दक्षिणी महासागर में पादप-प्लवक की नाइट्रोजन-अवशोषण गति पर लोहे के संवर्धन के प्रभाव पर शोध किए गए। सन् 2006 के फरवरी-मार्च में अकादमिक बोरिस पेत्रोव जहाज पर विभिन्न स्टेशनों से एकत्रित किए गए। आंकड़ों के अध्ययन से पता चला कि 'कुल नाइट्रोजन-अवशोषक पोषक क्षेत्र' सबसे अधिक 69°द और सबसे कम 58°द अंटार्कटिक तटीय क्षेत्रों में पाए गए। उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रंश के उत्तर (35°द) को छोड़कर, सभी स्टेशनों पर नाइट्रेट-अवशोषण की गति अमोनियम और यूरिया के अवशोषण की गति से अधिक थी, जहां यह व्युत्क्रम रूप में था। प्रिज़ बे एवं तटीय अंटार्कटिका (69.18°द और 76°पू) में स्थित स्टेशन में एफ-अनुपात सबसे अधिक (0.6) पाया गया। उत्पादकता उत्तर की ओर कम हो गई और यह कम उत्पादकता क्षेत्र उपोष्ण कटिबंधीय अग्रंश (40°द) तक बढ़ गया। 39°द और 43°द के बीच के क्षेत्र में एफ-अनुपात घटकर 0.4 हो गया, जो कि 2004 के दौरान प्रेक्षित अवलोकनों के विपरीत था। इस अध्ययन ने पुष्टि की कि विश्व महासागर के इस हिस्से में उत्पादकता कम है, लेकिन इसके भूमध्य-रेखीय महासागर की तुलना में काफी अधिक एफ-अनुपात के कारण दीर्घावधिक समय-पैमाने पर इसमें वायुमंडलीय CO<sub>2</sub> को

अवशोषित कर लेने की अधिक क्षमता है। इसके अलावा, दक्षिणी महासागर में पाया गया औसत एफ-अनुपात (0.5) इंगित करता है कि पादप प्लवक समुदाय नाइट्रेट और पुनर्जीवित पोषक तत्वों दोनों का समान रूप से उपयोग करता है।

ऐसा माना जा रहा है कि वैश्विक तापन से समुद्र की उत्पादकता में कमी आएगी; हालाँकि, ग्लोबिगरिना बुल्लोइड्स (प्लवक फोरामिनिफेरा) में कार्बन समस्थानिक संकेत संबंधी अध्ययन दक्षिण महासागर में उत्पादकता में वृद्धि की पुष्टि करते हैं। भूमध्य-रेखीय हिंद महासागर से दक्षिणी महासागर (45°पू से 80°पू और 10°उ से 53°द) से एकत्र किए गए प्लवकों के ऑक्सीजन और कार्बन समस्थानिक अनुपात का जल स्तंभ के तापमान और समस्थानिक रचना के साथ विश्लेषण किया गया। परिणामों से 42°द में अधिकतम उत्पादकता के संकेत मिले जो कार्बनिक पदार्थ के उत्पादन में वृद्धि और संबद्ध बहिर्गमन के कारण कहे जा सकते हैं। हालाँकि शोध दर्शाते हैं कि 50°द से परे उत्पादकता में कमी समुद्र की धाराओं (अंटार्कटिक नितलस्थजल) और गहरे जल के उत्पादन से लाए गए पोषक तत्वों और प्रकाश की उपलब्धता द्वारा नियंत्रित है।

### उपसंहार:

अपनी 'उच्च पोषक तत्व निम्न-क्लोरोफिल' परिस्थिति के बावजूद, दक्षिणी महासागर पृथ्वी प्रणाली के परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो विभिन्न पैमानों पर जलवायु, समुद्र स्तर, जैव-रासायनिक चक्र और जैविक उत्पादकता को प्रभावित करता है। मूल रूप से चार परिकल्पनाओं को दक्षिण महासागर में 'उच्च पोषक तत्व निम्न-क्लोरोफिल' अवस्था की व्याख्या करने के लिए प्रमुख माना गया है: (i) उच्च अक्षांश में होने के कारण यह पादप प्लवकों की इष्टतम वृद्धि के लिए अपर्याप्त सौर ऊर्जा प्राप्त करता है, (ii) लौह, तांबा, कोबाल्ट आदि जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा यहाँ सीमित है, (iii) सशक्त वायु-प्रेरित मिश्रण जो मिश्रित परत को गहरा करता है और पादप प्लवकों को जल स्तंभ में प्रकाश-सीमित क्षेत्र में अधिक समय बिताने के लिए मजबूर करता है जिससे कम प्रकाश संश्लेषण होता है, और (iv) प्राणी प्लवकों का अधिक उपभोग पादप प्लवकों की मात्रा को कम कर देता है। इसका मतलब है कि सम्मिलित रूप से उपरोक्त परिकल्पनाएं इस क्षेत्र में पादप प्लवक उत्पादकता की परिवर्तनशीलता की व्याख्या करती हैं।

दक्षिणी महासागर के लिए भारतीय अभियानों को ध्रुवीय ग्रीष्मकाल (जनवरी-मार्च) के दौरान ही भेजा जाता है। अतः शेष मौसमों में स्व-स्थाने परिस्थितियों में परिवर्तनशीलता पर आंकड़े अभी अनुपलब्ध हैं। हालाँकि, विभिन्न अग्रान्श प्रणाली क्षेत्रों और तटीय क्षेत्रों से व्यवस्थित तौर पर नमूने एकत्रित किए जा रहे हैं, फिर भी ये अभी पर्याप्त नहीं हैं। अतः दक्षिणी महासागर में वर्तमान और भविष्य के जलवायु परिवर्तन प्रभावों के मूल्यांकन के लिए समुद्र-संबंधी विभिन्न जैव-रासायनिक आंकड़ों का संग्रह अधिक से अधिक नौ बंधनों, सिमुलेशन/मॉडलिंग और उपग्रहीय सुदूर संवेदन के माध्यम से करना अनिवार्य है।

### संदर्भ

- Chisholm, S.W, Falkowski, P.G., and Cullen, J.J. (2001): Discrediting Ocean Fertilization. *Science*, 294, 309-310.

- Dugdale, R.C. and Goering, J.J. (1967): Uptake of new and regenerated forms of nitrogen in primary productivity. *Limnology and Oceanography*, 12, 196-206.
- Eppley, R.W. and Peterson, B.J. (1979): Particulate organic matter flux and planktonic new production in the deep ocean. *Nature*, 282, 677-680.
- Falkowski, P.G. (2002): The Ocean's invisible forest. *Scientific American*, 54-61.
- Falkowski, P.G. and Raven, J.A. (1997): *Aquatic photosynthesis*. Blackwell Science, pp. 375.
- Gandhi, N. et al. (2012): Zonal variability in primary production and nitrogen uptake rates in the southwestern Indian Ocean and the Southern Ocean. *Deep-Sea Research I*, 67, 32-43.
- Jasmine, P. et al., 2009. Hydrographic and production characteristics along 45E longitude in the southwestern Indian Ocean and Southern Ocean during austral summer 2004. *Mar. Ecol. Prog. Ser.*, 389, 97-116.
- Kostianoy, A.G., Ginzburg, A.I., Lebedev, S.A., Frankignoulle, M. and Delille, B. (2003): Fronts and mesoscale variability in the southern Indian Ocean as inferred from the TOPEX/POSEIDON and ERS-2 altimetry data. *Oceanology*, 43, 632-642.
- Pollard, R.T., Bathmann, U., Dubischar, C., Read, J.F. and Lucas, M. (2002): Zooplankton distribution and behaviour in the Southern Ocean from surveys with a towed optical plankton counter. *Deep Sea Res II*, 49(18), 3889-3915.
- Prakash, S., Ramesh, R., Sheshshayee, M.S., Mohan, R. and Sudhakar, M. (2010): Effect of high level iron enrichment on potential nitrogen uptake by marine plankton in the Southern Ocean. *Current Science*, 99(10), 1400-1404.
- Prakash, S., Ramesh, R., Sheshshayee, M.S., Mohan, R. and Sudhakar, M. (2015): Nitrogen uptake rates and  $f_{ratios}$  in the Equatorial and Southern Indian Ocean. *Current Science*, 108(2), 239-245.
- Prasanna, K., Ghosh, P. and Anilkumar, N. (2015): Stable isotopic signature of Southern Ocean deep water CO<sub>2</sub> ventilation. *Deep Sea Res II*, 118, 177-185.
- Prasanna, K., Ghosh, P., Bhattacharya, S.K., Mohan, K. and Anilkumar N. (2016): Isotopic disequilibrium in *Globigerina bulloides* and carbon isotope response to productivity increase in Southern Ocean. *Scientific Reports*, 6:21533, DOI: 10.1038/srep21533.
- Sabine, C.L., Feely, R. A., Gruber, N., Key, R.M., Lee, K., Bullister, J.L., Wanninkhof, R., Wong, C.S., Wallace, D.W.R., Tilbrook, B., Millero, F.J., Peng, T.H., Kozyr, A., Ono, T. and Rios, A.F. (2004): The Oceanic Sink for Anthropogenic CO<sub>2</sub>. *Science*, 305, 367-371.

- Sarmiento, J.L., Hughes, T.M.C., Stouffer, R.J. and Manabe, S. (1998): Simulated response of the ocean carbon cycle to anthropogenic climate warming. *Nature*, 393, 245-249.
- Tremblay, J.E., Klein, B., Legendre, L. (1997): Estimation of *f*ratios in oceans based on phytoplankton size structure. *Limnology and Oceanography*, 42, 595-601.
- Tripathy, S.C., Mishra, R.K., Naik, R.K. (2017): Progress in Southern Ocean biology from the Indian Sector: half-decadal (2009-13) overview. *Proc Ind Natl Sc Acad*, 83(2), 385-398.
- Tripathy, S.C., Patra, S., Vishnu Vardhan, K., Sarkar, A., Mishra, R.K. and Anilkumar, N. (2018): Nitrogen uptake by phytoplankton in surface waters of the Indian sector of Southern Ocean during austral summer. *Front Earth Sc*, 12(1), 52-62.
- Tripathy, S.C., Pavithran, S., Sabu, P., Pilai, H.U.K., Dessai, D.R.G. and Anilkumar, N. (2015): Deep chlorophyll maximum and primary productivity in Indian Ocean sector of the Southern Ocean: Case study in the Subtropical and Polar Front during austral summer 2011. *Deep Sea Res II*, 118, 240-249.
- Tripathy, S.C., Pavithran, S., Sabu, S., Naik, R.K., Noronha, S.B., Bhaskar, P.V. and Anilkumar, N. (2014): Is phytoplankton productivity in the Indian Ocean sector of Southern Ocean affected by pigment packaging effect? *Curr Sc*, 107(6), 1019-1026.

## 9. एक क्षेत्रीय मॉडल द्वारा भारतीय एवं निकटवर्ती समुद्री क्षेत्रों में अतिसूक्ष्म कणों का वितरण

रोहित श्रीवास्तव  
राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा

### सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप में वेदर रिसर्च एंड फोरकास्टिंग (केमिस्ट्री) (डब्ल्यू आर एफ - केम) द्वारा सिम्युलेटेड पी०एम०२.५ (पार्टिकुलेट मैटर २.५) की सांद्रता का अध्ययन किया गया है। पी०एम० २.५ की तुलना मापित द्रव्यमान के साथ वर्ष २००८ के शीतकालीन (दिसंबर-फरवरी), प्री-मानसून (मार्च-

मई), मानसून (जून-सितंबर) और पोस्ट-मानसून (अक्टूबर-नवंबर) ऋतुओं के दौरान की गई है। पोस्ट-मानसून और सर्दियों के दौरान पी०एम०2.5 की उच्च मात्रा वातावरण में देखी गई, जबकि मानसून के दौरान निम्न मात्रा पाई गई। गंगा बेसिन में पूरे वर्ष 2008 में पी०एम०2.5 की उच्च (60 से 200 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर ( $\mu\text{g m}^{-3}$ )) मात्रा पाई गई। मॉडल एवं मापित पी०एम०2.5 द्रव्यमान के बीच प्रतिशत अंतर, सर्दियों के दौरान उच्च (40 - 60%) पाए गए, जबकि कम अंतर (<30%) मानसून के दौरान पाए गए। मॉडल सिमुलेटेड एवं मापित पी०एम०2.5 द्रव्यमानों के बीच भारत सहसंबंध गुणांक 98% के महत्व पर 0.81 आंकलित किया गया। अध्ययन से पता चलता है कि, मॉडल भारतीय क्षेत्र एवं करीबी सामुद्रिक क्षेत्रों में पी०एम०2.5 स्थानिक और सामयिक परिवर्तनशीलता को आंकने में सक्षम है, हालांकि मॉडल के आंकड़ों में महत्वपूर्ण परिवर्तन भी पाए गए। पी०एम०2.5 की बड़े पैमाने पर सांद्रता पश्चिम बंगाल में सबसे अधिक ( $82 \pm 33 \mu\text{g m}^{-3}$ ) और जम्मू और कश्मीर ( $14 \pm 11 \mu\text{g m}^{-3}$ ) में सबसे कम आंकलित की गई। भारतीय क्षेत्र में सिमुलेटेड पी०एम०2.5 द्रव्यमान का वार्षिक माध्य  $35 \pm 9 \mu\text{g m}^{-3}$  पाया गया। पी०एम०2.5 की उच्च मात्रा उन राज्यों में अधिक आंकलित की गई, जहां श्वसन विकार रोगों के मामले अधिक हैं। अध्ययन के परिणाम, पर्यावरण, मानव मानव स्वास्थ्य और जलवायु परिवर्तन में हमारी वैज्ञानिक समझ को बढ़ाने में उपयोगी हैं, जो आने वाले समय में मौसम एवं प्रदूषण की भविष्यवाणी को सुधारने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

### प्रस्तावना

वायुमंडलीय अतिसूक्ष्म कण (पी०एम०) ठोस, तरल या हवा में निलंबित ठोस और तरल कणों (जिनका आकार 0.001 से 100 माइक्रोन के बीच है) के मिश्रण हैं, जो जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता, स्वास्थ्य प्रभाव और सामाजिक अर्थव्यवस्था के लिए सबसे बड़ा खतरा हैं। वे भू-भौतिकीय और पर्यावरणीय समस्याओं में क्षेत्रीय पैमाने (प्रदूषण विषाक्तता) और वैश्विक स्तर (जलवायु परिवर्तन) पर प्रभाव डालते हैं। अतिसूक्ष्म कण का मानव स्वास्थ्य (विशेष रूप से श्वसन और हृदय रोगों) पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। दुनिया के प्रमुख शहरी क्षेत्रों में पिछले और हाल के वर्षों में इस तरह की बीमारियों में वृद्धि हुई है। पी०एम० कणों को आमतौर पर उनके स्रोतों, संरचनाओं रासायनिक और भौतिक प्रक्रियाओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। आकार के आधार पर पी०एम० कण दो वर्गों: पी०एम०2.5 (व्यास <2.5 माइक्रोन, अतिसूक्ष्म मोड) और पी०एम०10 (व्यास < 10 माइक्रोन, सूक्ष्म मोड) में वर्गीकृत हैं। अतिसूक्ष्म मोड के कण सूक्ष्म मोड के कणों की तुलना में आसानी से फेफड़ों में प्रवेश कर सकते हैं, जो फुफ्फुसीय, श्वसन और उत्परिवर्ती रोगों को बढ़ाते हैं। पी०एम०2.5 और अन्य प्रदूषक से जुड़ी समयपूर्व मृत्यु के कारण आर्थिक नुकसान 2011 में लगभग 640 बिलियन यूएस डॉलर आंका गया था। पी०एम० कण की गत्यात्मक प्रकृति, मौसम संबंधी गिरावट के साथ-साथ विकिरण बजट, परिसंचरण पैटर्न और बादल द्वारा विकिरण परावर्तन में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव का कारण बनती है।

एशिया में भारत अधिक पी०एम० सांद्रता से ग्रसित स्थानों में से एक है। इसका स्वास्थ्य और जलवायु पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अतिसूक्ष्म कणों के स्रोत मुख्य रूप से प्राकृतिक (संभावित समुद्री

स्प्रे, मिट्टी के कणों का निलंबन) और मानवजनित (जैवभार दहन, जीवाश्म ईंधन और जैव ईंधन के अधूरे दहन) शामिल हैं। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, वाहनों के उत्सर्जन, अनियोजित अपशिष्ट प्रबंधन और अनियंत्रित जनसंख्या दर के तेजी से विकास के कारण पिछले वर्षों में बड़ी मात्रा में पी०एम० कण की वृद्धि हुई है। पी०एम०10 कणों की तुलना में अन्य प्रदूषकों के साथ विकिरण बजट और रासायनिक संरचना पर पी०एम०2.5 कणों का महत्वपूर्ण प्रभाव है और पिछले एक दशक में दक्षिण एशिया में फाइन मोड एरोसोल लोडिंग की बढ़ती प्रवृत्ति आंकी गई है। भारत में पी०एम०2.5 की सांद्रता के स्थानीय वितरण का अध्ययन स्व-स्थाने प्रेक्षण की कमी के कारण सीमित रहे हैं। स्रोत वितरण, परिवहन और मौसम संबंधी प्रभावों को ठीक से समझने के लिए विभिन्न ऋतुओं के दौरान पी०एम०2.5 के स्थानिक वितरण की जानकारी आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन में पी०एम०2.5 के स्थानीय एवं मौसमी वितरण की जांच भारतीय उप-महाद्वीप और निकटवर्ती समुद्री क्षेत्रों में एक क्षेत्रीय जलवायु मॉडल द्वारा की गई है। पी०एम०2.5 के स्थानिक वितरण पर कुछ अध्ययन उपग्रह से प्राप्त एरोसोल प्रकाशीय गहराई के आधार पर विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में किए गए थे। उपग्रह से पी०एम० 2.5 के अनुमान में कई अनिश्चितताएं देखी गईं, जो रिमोट सेंसिंग, नॉनयूनिफॉर्म सैंपलिंग, लगातार बादलों और गंभीर प्रदूषण की घटनाओं से एरोसोल की पुनर्प्राप्ति में त्रुटियों के कारण हो सकती हैं। उपग्रह से पी०एम०2.5 के अनुमान में अनिश्चितता को ऑन-लाइन सिमुलेशन के माध्यम से रासायनिक मॉडल के प्रयोग से दूर किया जा सकता है। भारतीय उपमहाद्वीप में पी०एम०2.5 के स्थानीय एवं मौसमी वितरण की बेहतर समझ प्राप्त करने के लिए अध्ययन के परिणाम उपयोगी होंगे। इसके अलावा, भारत में राज्यों में पी०एम०2.5 के मौसमी और वार्षिक अध्ययन भी किए गए हैं, जो मानव स्वास्थ्य और पर्यावरणीय जोखिम पर गंभीर ध्यान देने में सहायक होंगे।

### **डेटा सेट, मॉडल सिमुलेशन और कार्यप्रणाली :**

अध्ययन में वेदर रिसर्च और फोरकास्टिंग मॉडल संस्करण 3.6 के रसायन के साथ युग्मित (डब्ल्यू आर एफ - केम) कर उपयोग किया गया है, जो मौसम विज्ञान के साथ-साथ रासायनिक प्रक्रियाओं का अनुकरण कर सकता है। मॉडल सिमुलेशन भारतीय उपमहाद्वीप में 6 डिग्री से 36 डिग्री उत्तर के अक्षांशीय विस्तार और 66 डिग्री से 96 डिग्री पूर्व तक देशांतर विस्तार पर किया गया है। सिमुलेशन का क्षेत्रीय विभेदन 20 किमी है। मॉडल सिमुलेशन में सतह से 35 किमी की अधिकतम ऊंचाई तक 51 परतों के साथ ऊर्ध्वाधर प्रोफाइल को सम्मिलित किया गया है, जिसमें 38 परतें 10 किमी की सीमा के भीतर हैं, क्योंकि एरोसोल मुख्य रूप से 10 किमी की ऊंचाई तक सीमित हैं। पी०एम०2.5 के ऋतु माध्य विभिन्न ऋतुओं जैसे शीतकालीन (दिसंबर-फरवरी), ग्री-मानसून (मार्च-मई), मानसून (जून-सितंबर) और पोस्ट-मानसून (अक्टूबर-नवंबर) में दैनिक आंकड़ों से लिए गए हैं। वर्ष 2008 एक सामान्य मानसून वर्ष था, जिसमें पी०एम०2.5 के स्व-स्थाने आँकड़े भी उपलब्ध हैं, अतः सिमुलेशन के लिए वर्ष 2008 को चुना गया है। मॉडल सिमुलेशन भौतिक, गतिशील और रासायनिक पैरामीटर के संबंध में ऑनलाइन रासायनिक गणना का उपयोग करते हुए किया गया है। विभेदित स्केल बादल की भौतिकीय प्रकृति को मोरिसों डबल मोमेंट स्कीम से मॉडल में दर्शाया गया है। उप-ग्रिड संवहन

प्रक्रिया को केन-फ्रिट्च योजना द्वारा, बाउंड्री लेयर को योनसी विश्वविद्यालय योजना द्वारा, सतह प्रक्रिया को नूह भूमि की सतह द्वारा मॉडल सिमुलेशन में शामिल किया गया है। लघु और लंबी तरंग विकिरण संगणना, रैपिड रेडियोएक्टिव ट्रांसफर मॉडल फॉर जनरल सर्कुलेशन मॉडल्स द्वारा की गई है।

अध्ययन में प्रयुक्त रासायनिक तंत्र मॉडल फॉर ओजोन एंड रिलेटेड केमिकल ट्रेसर्स (मोजार्ट 4) है, जो गोडार्ड केमिस्ट्री एरोसोल रेडिएशन एंड ट्रांसपोर्ट (गोकार्ट) से जुड़ा हुआ है। अतिसूक्ष्म कण के मानवजनित उत्सर्जन, एमिशन डेटाबेस फॉर ग्लोबल एटमोस्फियरिक (एडगार) से  $0.1^\circ \times 0.1^\circ$  के वैश्विक क्षैतिज ग्रिड विभेदन पर प्राप्त किए गए और सिमुलेशन में उपयोग में लाए गए। 6 घंटे के सामायिक अंतराल तथा  $1 \times 1$  डिग्री के क्षैतिज विभेदन पर नेशनल सेंटर फॉर एनवायरनमेंटल प्रिडिक्शन्स, फाइनल एनालिसिस (एनसेप/एफ एन एल) मौसम संबंधी आंकड़ों का उपयोग प्रारंभिक और पार्श्व सीमाओं के लिए किया गया है। ट्रेस प्रजातियों के बायोजेनिक उत्सर्जन ऑनलाइन मॉडल ऑफ़ एमिशन ऑफ़ गैसेस एंड एरोसोल्स फ्रॉम नेचर (मेगन) का उपयोग करके गणना की गई है।

## परिणाम और चर्चा

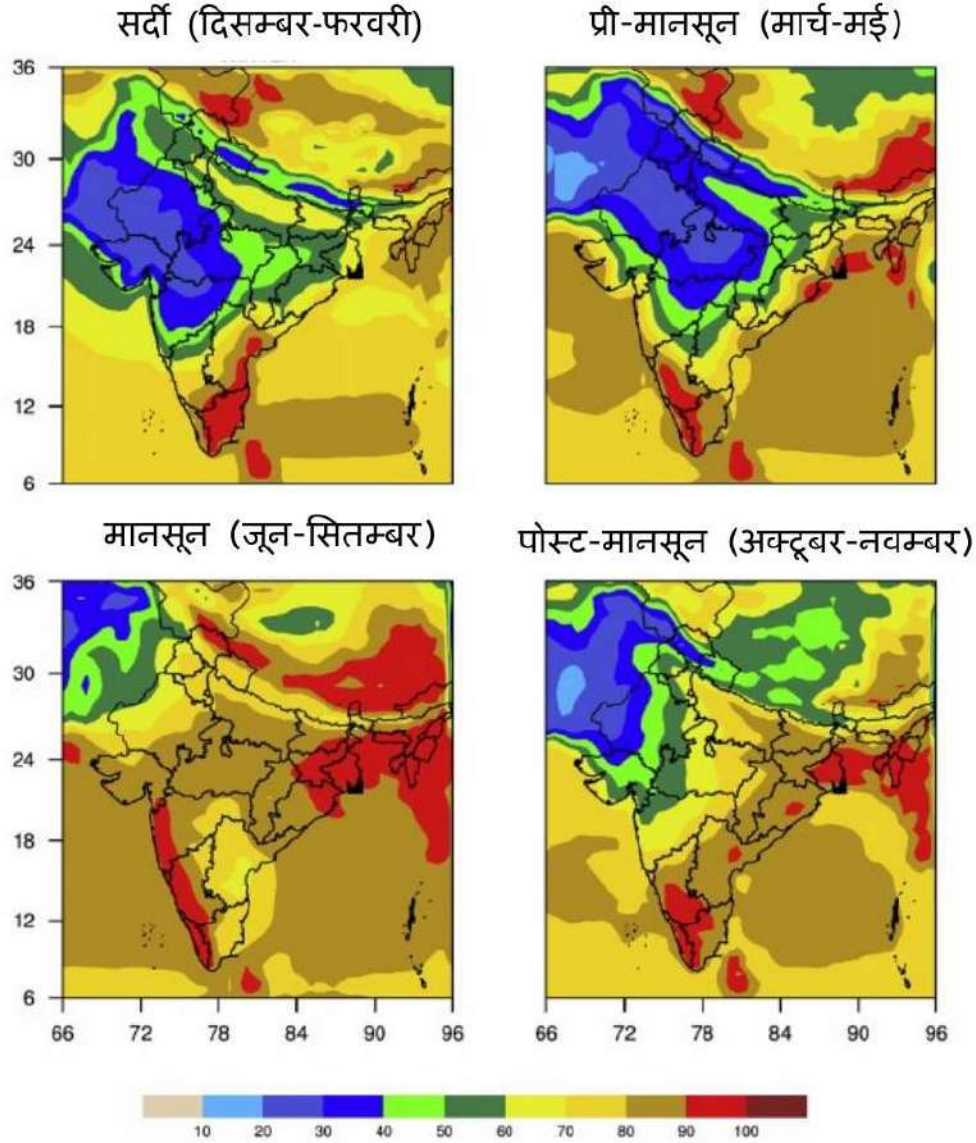
### मॉडल में मौसमी पैरामीटर्स का वितरण

भारतीय उपमहाद्वीप एवं निकटवर्ती समुद्री क्षेत्रों पर डब्ल्यू आर एफ-केम से सिमुलेटेड वर्ष 2008 के मौसम संबंधी पैरामीटर्स जैसेकि निकट सतह (1000 hpa) सापेक्ष आर्द्रता (आरएच) और पवन के स्थानीय एवं सामायिक वितरण को क्रमशः चित्र 1 एवं 2 में दिखाया गया है। उच्च आरएच दक्षिणी क्षेत्र में देखा जाता है, जो मुख्य रूप से समीपवर्ती समुद्री क्षेत्रों की आर्द्रता के परिवहन के कारण है। सबसे कम आरएच उत्तरी और पश्चिमी भारतीय क्षेत्रों में देखा जा सकता है, जो भूमि की संरचनात्मक विविधता और कम आर्द्रता के परिवहन के कारण होता है।

मानसून के मौसम अधिकतर क्षेत्रों में उच्च आरएच (> 70%) वाले पाए जाते हैं, प्री-मानसून के बाद सर्दियों में कम आरएच (20% - 60%) पाया जाता है क्योंकि सर्दियों के दौरान हवाएं मुख्य रूप से भूमि से सागर की तरफ बहती हैं। मानसून के बाद, उत्तर पूर्व मानसून के दौरान, दक्षिणी प्रायद्वीपीय, पूर्वी और उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में आरएच (> 80%) की उच्च मात्रा प्रदर्शित होती है (चित्र 1)।

मानसून के दौरान प्रबल दक्षिण-पश्चिमी हवाएं, पूर्वी और उत्तर पूर्वी भारतीय क्षेत्र की ओर बढ़ती है और हिमालय की तलहटी से निकलती है (चित्र 2)। सर्दियों और पोस्ट-मानसून के दौरान मौसमी हवाओं की गति कम होती है। प्री-मानसून से मानसून के बीच पवन की दिशा में परिवर्तन होता है और उत्तरी-पूर्वी हवाएं अपनी दिशा बदल कर प्रबल (> 6 मी/से) दक्षिण-पश्चिमी हो जाती हैं और परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप में दक्षिण-पश्चिमी मानसून का आगमन हो जाता है (चित्र 2)। मानसूनी प्रबल दक्षिण पश्चिमी हवाओं का शांत (<3 मी/से) पूर्वी एवं उत्तर पूर्वी हवाओं में परिवर्तन पोस्ट-मानसून में देखा जा सकता है (चित्र 2)। भूमि और महासागर का अंतर ऊष्मन, मौसम में इस तरह के बदलाव का एक कारण बनता है। आर्द्रता की उच्च मात्रा विभिन्न मौसमों के दौरान दक्षिण पश्चिम और दक्षिण पूर्व

क्षेत्रों में पाई गई (चित्र 1), जो पश्चिमी और पूर्वी घाटों (लंबी पर्वत मालाओं) की उपस्थिति के कारण है। एरोसोल वृद्धि, परिवहन और वितरण की प्रक्रियाओं में इन मापदंडों का महत्वपूर्ण योगदान है। सामान्यतः, डब्ल्यूआरएफ-केम मॉडल भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न मौसम के दौरान मौसम संबंधी घटकों में परिवर्तनशीलता का अनुकरण करते हुए पाया गया है।



चित्र

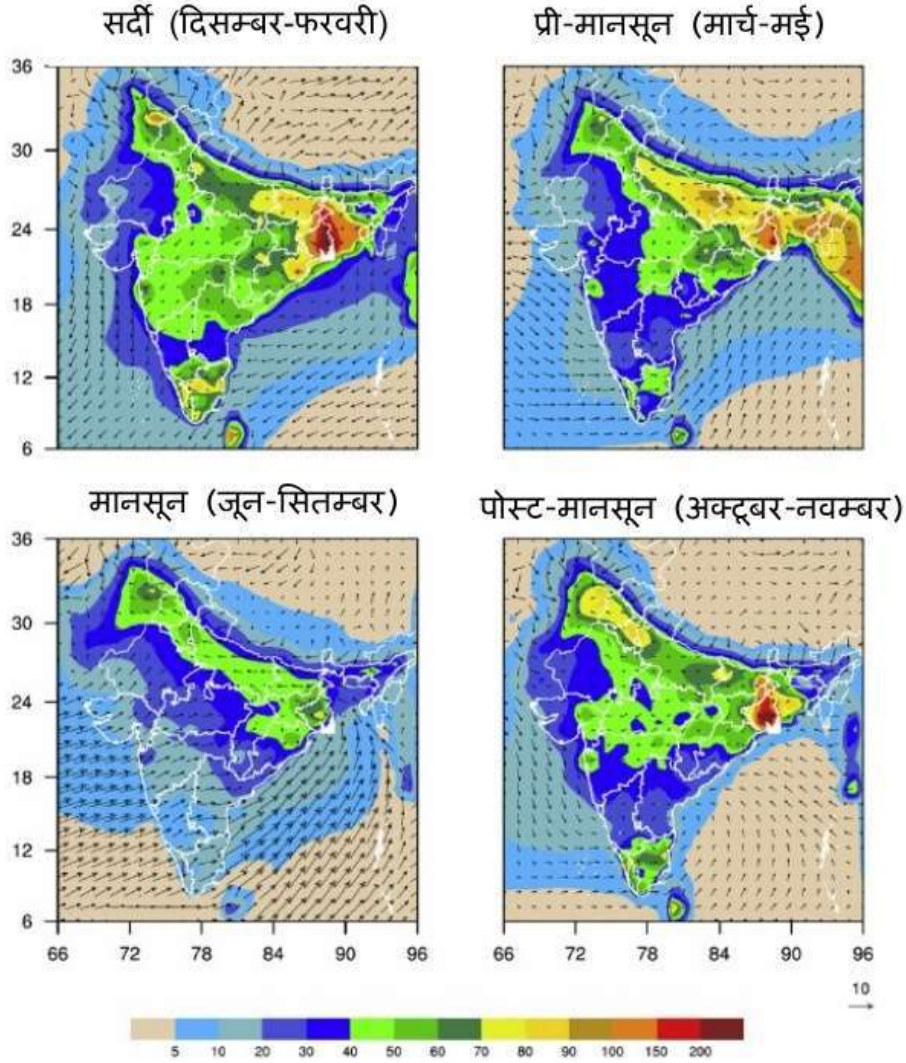
1:

भार

सापेक्ष आर्द्रता (आरएच, %)

तीय एवं निकटवर्ती समुद्री क्षेत्रों में सर्दियों, प्री-मानसून, मानसून और पोस्ट-मानसून के दौरान डब्ल्यू आर एफ - केम सिम्युलेटेड सापेक्ष आर्द्रता (आरएच) का स्थानिक वितरण।





**पीएम 2.5 द्रव्यमान ( $\mu\text{g m}^{-3}$ )**

**चित्र 2:** पी० एम० 2.5 की स्थानिक और मौसमी विविधता एवं 1000 हेक्टो पास्कल की ऊंचाई पर वायु की स्थिति वर्ष 2008 के शीतकालीन (सर्दी), प्री-मानसून, मानसून और पोस्ट-मानसून ऋतुओं के दौरान ।

**पी० एम० 2.5 द्रव्यमान का मौसमी वितरण:**

पी० एम० 2.5 की डब्ल्यू आर एफ-केम से सिम्युलेटेड स्थानिक और मौसमी विविधता एवं 1000 हेक्टो पास्कल की ऊंचाई पर वायु की स्थिति शीतकालीन, प्री-मानसून, मानसून और पोस्ट-मानसून के दौरान चित्र 2 में दर्शाई गई है। पी० एम०2.5 में व्यापक स्थानिक परिवर्तनशीलता सभी मौसमों में गंगा सिंचित बेसिन पर पाई गई है, जो 60 से 200 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर ( $\mu\text{g m}^{-3}$ ) के बीच है। गंगा बेसिन दुनिया में घनी आबादी वाले क्षेत्रों में से एक है, इसलिए घरेलू, वाहन, खनन और शहरीकरण सहित स्थानीय उत्सर्जन द्वारा पी० एम० 2.5 कणों का उत्पादन अधिक पाया जाता है।

अध्ययन डोमेन पर सर्दियों और पोस्ट-मानसून के दौरान अधिक द्रव्यमान ( $>50 \mu\text{g m}^{-3}$ ) वाले पी० एम० 2.5 पाए गए हैं, जबकि सबसे कम पी० एम० 2.5 ( $<50 \mu\text{g m}^{-3}$ ) मानसून में पाए गए हैं। सर्दियों के दौरान सौर विकिरण की कम मात्रा और मानसून के बाद सतह की कम हवा की गति कमजोर ऊर्ध्वाधर फैलाव और एरोसोल के प्रसार को जन्म देती है। मानसून में, उच्च वर्षा दर एरोसोल कणों को तीव्र गति से जमीन पर ले आती है, जिससे सतह में पी० एम० 2.5 द्रव्यमान कम हो जाता है।

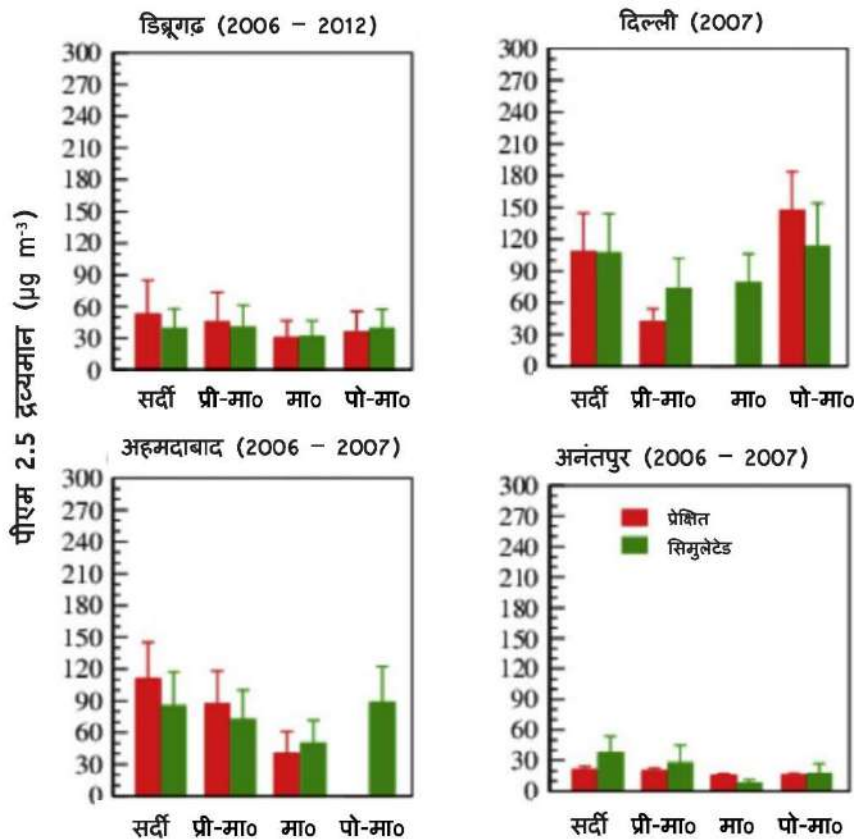
प्री-मानसून के दौरान पूर्वी और उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में पी० एम० 2.5 की अधिक सांद्रता पाई गई, जो संभवतः स्थानीय जंगल में आग लगने से उत्पन्न अतिसूक्ष्म कणों के कारण है। औसत पी० एम० 2.5 द्रव्यमान पूर्वी और उत्तर पूर्वी भारत में शीतकालीन, मानसून और पूर्व-मानसून के दौरान  $50-150 \mu\text{g m}^{-3}$  की सीमा में है, जबकि मानसून में  $20-60 \mu\text{g m}^{-3}$  सीमा में है। प्री-मानसून के दौरान, दक्षिण-पश्चिमी और पश्चिमी हवाएं प्रमुख हैं, जो पश्चिमी भारतीय क्षेत्र से हिमालय की तलहटी तक भारत के पूर्वी हिस्से तक फैले एरोसोल को ले जा सकती हैं। इससे पूर्वी क्षेत्र में एरोसोल का संचय हो सकता है। हवा का असतत् व्यवहार, विंड फ्लश ऑफ और वेंटिलेशन गुणांक में महत्वपूर्ण बदलाव ला सकता है। इस तरह की गतिविधियां एरोसोल द्रव्यमान के वितरण को प्रभावित कर सकती हैं। पी० एम० 2.5 द्रव्यमान की कम मात्रा गुजरात और राजस्थान में पाई जाती है, जो थार मरुस्थल के पास अर्ध-शुष्क और शुष्क क्षेत्र हैं।

अरब सागर की तुलना में पी० एम० 2.5 द्रव्यमान बंगाल की खाड़ी से अधिक पाया गया है। सर्दियों और पूर्व-मानसून के दौरान, पी० एम० 2.5 बड़े पैमाने पर बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में अधिकतम ( $10-30 \mu\text{g m}^{-3}$ ), जबकि सबसे कम ( $<20 \mu\text{g m}^{-3}$ ) पी० एम० 2.5 की सांद्रता मानसून और पोस्ट-मानसून में पाई गई। बंगाल की खाड़ी में उच्च पी० एम० 2.5 द्रव्यमान की उपस्थिति को सीधे स्थानीय उत्सर्जन से नहीं जोड़ा जा सकता है। दूर तट क्षेत्रों की तुलना में तट के पास सिमुलेटेड एरोसोल 30% अधिक है। 2006 के दौरान, भारतीय उपमहाद्वीप के निकटवर्ती समुद्री क्षेत्रों में आईसीएआरबी (एरोसोल, गैस और विकिरण बजट के लिए एकीकृत अभियान) से इसी तरह के आंकड़े पाए गए जो मॉडल सिमुलेटेड आंकड़ों की यथार्थता की पुष्टि करते हैं। जल में घुलनशील आयनों की मौजूदगी पी० एम० 2.5 की हाइग्रोस्कोपिसिटी को बढ़ा देती है, जोकि एरोसोल के प्रकाशीय और विकिरण गुणों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

### यथावत माप के साथ सिमुलेटेड पी० एम० 2.5 द्रव्यमान की तुलना :

भारत में विभिन्न स्थानों पर यथावत स्व-स्थाने माप के साथ डब्ल्यू आर एफ - केम सिमुलेटेड पी० एम० 2.5 के द्रव्यमान की तुलना, वर्ष 2008 के उपरोक्त वर्णित चारों मौसम के दौरान चित्र 3 में दिखाए गए हैं। अध्ययन में भारत के चारों भागों से एक-एक स्थान को सम्मिलित किया गया है, जिसका विवरण इस प्रकार है: पूर्व में डिब्रूगढ़ (शहरी क्षेत्र), उत्तर में दिल्ली (शहरी क्षेत्र), पश्चिम में अहमदाबाद (शहरी क्षेत्र) और दक्षिण में अनंतपुर (अर्ध-शहरी क्षेत्र)। अधिकांश स्थानों पर पी० एम०

2.5 के माप लगभग पूरे वर्ष में उपलब्ध हैं। हालांकि, जिन स्थानों पर 2008 के लिए अवलोकन आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, तुलना के लिए आसन्न वर्षों के माप का उपयोग किया गया है। अंतर वार्षिक विविधताओं की तुलना में एरोसोल के मौसमी बदलाव बहुत अधिक पाए गए हैं। अतः आसन्न वर्षों के लिए गए माप, अध्ययन के परिणामों पर महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकते हैं।



**चित्र 3:** डब्ल्यू आर एफ - केम सिमुलेटेड और प्रेक्षित पी० एम० 2.5 द्रव्यमान के बीच भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न स्थानों पर शीतकालीन (सर्दी), प्री-मानसून (प्री-मा), मानसून (मा) और पोस्ट-मानसून (पो-मा) के दौरान तुलना, चित्र में स्थानों के साथ इंगित वर्ष प्रेक्षण वर्ष को बताते हैं।

पोस्ट-मानसून के साथ-साथ सर्दियों में अधिकतम पी० एम० 2.5 का अनुकरण प्रेक्षित पी० एम० 2.5 में होता है, जबकि सभी स्थानों पर मानसून के दौरान न्यूनतम द्रव्यमान पाए गए। अतः, मॉडल मौसमी परिवर्तनशीलता को आंकने में सक्षम है, हालांकि मॉडल के निरपेक्ष मूल्यों में प्रेक्षित पी० एम० 2.5 की तुलना में कुछ अंतर भी हैं। शीत ऋतु के दौरान, सिमुलेटेड और प्रेक्षित पी० एम० 2.5 के बीच प्रतिशत अंतर 20-50% की सीमा के भीतर पाए जाते हैं, अनंतपुर को छोड़कर, जहां अवलोकन के संबंध में विचलन 60% से भी अधिक है। अहमदाबाद और डिब्रूगढ़ में प्री-मानसून और मानसून के दौरान निम्न प्रतिशत अंतर (<30%) है।

पोस्ट-मॉनसून के दौरान, डिब्रूगढ़ में मॉडल सिमुलेशन और प्रेक्षित पी० एम० 2.5 के बीच एक अतिरिक्त अंतर (> 65%) पाया गया। दिल्ली और अनंतपुर में विभिन्न मौसमों के दौरान, अधिकतम विचलन (न्यूनतम (<10%) से उच्चतम (> 70%) तक) पाया गया है। इसके अलावा, इन स्थानों पर सिम्युलेटेड पी० एम० 2.5 द्रव्यमान प्रेक्षण की तुलना में अधिक पाया गया, जबकि अन्य स्थानों पर यह प्रेक्षण की तुलना में कम भी प्रदर्शित हुआ है। मॉडल सिमुलेशन और प्रेक्षण में इस अंतर के कारण हो सकते हैं: (अ) भारतीय उप-महाद्वीप पर उच्च विभेदन और सटीक उत्सर्जन सूची की कमी, (ब) हवा और आरएच जैसे मौसम संबंधी पैरामीटरों में परिवर्तनशीलता अकार्बनिक एरोसोल के गठन और उनके हीड्रोस्कोपिक विकास को प्रभावित कर सकती है, (स) मॉडल में नाइट्रेट के साप्ताहिक प्रतिनिधित्व का आंकलन और (द) फसल अवशेष और जैव ईंधन दहन को उत्सर्जन सूची में अच्छी तरह से शामिल नहीं करना है। ये कारण मानवजनित उत्सर्जन के आंकलन को कम कर सकते हैं। पिछले अध्ययनों से पता चलता है कि एरोसोल के अनुकरण में महत्वपूर्ण विसंगतियां भारतीय क्षेत्र में उत्सर्जन इन्वेंट्री में अनिश्चितता के कारण हो सकती हैं। सिम्युलेटेड और प्रेक्षित पी० एम० 2.5 के बीच भारत सहसंबंध गुणांक 0.81 पाया गया है और सहसंबंध की महत्ता 98% (पी-वैल्यू 0.016) है। संबंधित वर्ग माध्य मूल अनिश्चितता 0.91 पाई गई है।

### पी० एम० 2.5 का श्वसन संबंधी बीमारियों पर प्रभाव

पी० एम० 2.5 की अधिक सांद्रता भारत के विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र श्वसन संक्रमण और तपेदिक (टीबी) जैसी सांस की बीमारियों पर महत्वपूर्ण असर डालती है। पिछले कुछ वर्षों में भारत में तीव्र श्वसन संक्रमण के मामलों में लगभग 10 - 30% की वृद्धि हुई है। परिणाम से पता चलता है कि रिपोर्ट किए गए श्वसन संबंधी विकारों की संख्या पी० एम० 2.5 की सांद्रता के साथ बढ़ती हुई पाई गई। हिमाचल प्रदेश (23.46%) और केरल (20.73%) के बाद हरियाणा (4.24%) और तमिलनाडु (3.77%) तीव्र श्वसन संक्रमण मामलों के उच्च प्रतिशत दर्ज किए गए। इन राज्यों में सिम्युलेटेड पी० एम० 2.5 हरियाणा को छोड़कर (> 50  $\mu\text{g m}^{-3}$ ), कम (<35  $\mu\text{g m}^{-3}$ ) पाई गई। रिपोर्ट किए गए टीबी के मामले दिल्ली (0.3%) में अधिक हैं, इसके बाद हिमाचल प्रदेश (0.21%) और राजस्थान (0.18%) का स्थान है, जहाँ सिम्युलेटेड पी० एम० 2.5 भी (हिमाचल प्रदेश को छोड़कर) अधिक पाया गया। अतः, पी० एम० 2.5 का प्रभुत्व श्वसन संबंधी बीमारियों की संख्या को बढ़ाता है, जिससे यह मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा है और भविष्य में मृत्यु के प्रमुख कारणों में से एक है। सामान्य तौर पर, पी० एम० 2.5 की सांद्रता बड़े पैमाने पर उन राज्यों में अधिक पाई गई, जहां श्वसन संबंधी विकार अधिक बताए गए थे।

### निष्कर्ष:

हाल के वर्षों में भारतीय उपमहाद्वीप में पी० एम० 2.5 का उत्सर्जन बढ़ा है। मानव स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की आवृत्ति जैसे फेफड़े के रोग, रुग्णता, श्वसन संक्रमण, तपेदिक (टीबी) और मृत्यु दर के मुद्दे भी बढ़े हैं। प्रकाशीय गुणों में परिवर्तन के माध्यम से वायुमंडलीय विकिरण संतुलन पर पी० एम० 2.5 का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव जलवायु को प्रभावित करता है। भारतीय उप-महाद्वीप में

अलग-अलग स्थानों पर पी० एम० 2.5 की सांद्रता डब्ल्यू आर एफ - केम का उपयोग करके सिमुलेट की गयी है। अध्ययन से निम्नांकित महत्वपूर्ण तथ्यों का पता चला है:

- सापेक्षिक आद्रता (आरएच) और हवा जैसे मौसम संबंधी पैरामीटरों की स्थानीय एवं सामायिक भिन्नता मॉडल में अच्छी तरह से अनुकर्णित हुई है।
- भारतीय उपमहाद्वीप पर पी० एम०2.5 का वार्षिक औसत द्रव्यमान  $35 \pm 9 \mu g m^{-3}$  पाया गया। पी० एम०2.5 का उच्चतम वार्षिक औसत द्रव्यमान पश्चिम बंगाल ( $82 \pm 33 \mu g m^{-3}$ ) में और सबसे कम द्रव्यमान जम्मू-कश्मीर ( $14 \pm 11 \mu g m^{-3}$ ) में आंकलित किया गया। सिमुलेटेड पी० एम०2.5 द्रव्यमान सांद्रता उन राज्यों में अधिक पाई गई, जहां श्वसन संबंधी विकार भी अधिक थे।
- पी० एम०2.5 की उच्च मात्रा ( $60-200 \mu g m^{-3}$ ) गंगा बेसिन में अधिक पाई गई है। शांत हवा और निचली सीमाई परतें सर्दियों के दौरान बड़े पैमाने पर सांद्रता को बढ़ाने में मदद करते हैं, जबकि मानसून के दौरान उच्च वर्षा पी० एम० 2.5 को हटाने का कार्य करती है।
- पी० एम० 2.5 द्रव्यमान में बड़ी परिवर्तनशीलता पूर्वी क्षेत्र में प्री-मानसून के दौरान पाई गई है। इस क्षेत्र में इस तरह की परिवर्तनशीलता संभवतः जंगल की आग की उपस्थिति के कारण है। अध्ययन के परिणाम मानव स्वास्थ्य सुधारने और पर्यावरणीय जोखिम से निपटने में आवश्यक कार्रवाई करने में मदद कर सकते हैं।

#### संदर्भ

- Balakrishnaiah, G., Kumar, K.R., Reddy, B.S.K., Gopal, K.R., Reddy, R., Reddy, L., Narasimhulu, K., Ahammed, Y.N., Balanarayana, C., Moorthy, K.K., et al., 2011. Characterization of pm, pm10, pm2. 5 mass concentrations at a tropical semi-arid station in Anantpur, India. Indian J. Radio Space Phys. 40, 95-104.
- Bran, S.H. and Srivastava R., 2017. Investigation of PM2.5 mass concentration over India using a regional climate model, Env. Poll., 224, 484-493.
- Chin, M., Ginoux, P., Kinne, S., Torres, O., Holben, B.N., et al., 2002. Tropospheric aerosol optical thickness from the gocart model and comparisons with satellite and sun photometer measurements. J. Atmos. Sci. 59, 461-483.
- Emmons, L., Walters, S., Hess, P., Lamarque, J.-F., Pfister, G., et al., 2010. Description and evaluation of the model for ozone and related chemical tracers, version 4 (MOZART-4). Geosci. Model Dev. 3, 43-67.
- Ghude, S.D., Chate, D., Jena, C., Beig, G., Kumar, R., et al., 2016. Premature mortality in India due to pm2. 5 and ozone exposure. Geophys. Res. Lett. 43, 4650-4658.
- Grell, G.A., Peckham, S.E., Schmitz, R., McKeen, S.A., Frost, G., et al., 2005. Fully coupled online chemistry within the WRF model. Atmos. Environ. 39, 6957-6975.
- Guenther, C., 2006. Estimates of global terrestrial isoprene emissions using MAGAN (Model of Emissions of Gases and Aerosols from Nature). Atmos. Chem. Phys. 6., 3181-3210.
- Hong, S.-Y., Noh, Y., Dudhia, J., 2006. A new vertical diffusion package with an explicit treatment of entrainment processes. Mon. Weather Rev. 134, 2318-2341.

- Iacono, M.J., Delamere, J.S., Mlawer, E.J., Shephard, M.W., Clough, S.A., Collins, W.D., 2008. Radiative forcing by long-lived greenhouse gases: Calculations with the aerosol radiative transfer models. *J. Geophys. Res. Atmos.* 113, DOI: 2008JD009944.
- Kain, J.S., 2004. The Kain-Fritsch convective parameterization: An update. *J. Appl. Meteorol.* 43, 170-181.
- Morrison, H., Thompson, G., Tatarskii, V., 2009. Impact of cloud microphysics on the development of trailing stratiform precipitation in a simulated squall line: Comparison of one-and two-moment schemes. *Mon. Weather Rev.* 137, 991-1007.
- Nair, V.S., Babu, S.S., Moorthy, K.K., 2008. Aerosol characteristics in the marine atmospheric boundary layer over the bay of bengal and arabian sea during ICARB: spatial distribution and latitudinal and longitudinal gradients. *J. Geophys. Res. Atmos.* 113, doi: 2008JD009823. 5903-5928.
- Pan, X., Chin, M., Gautam, R., Bian, H., Kim, D., Colarco, P.R., Diehl, T.L., Takemura, T., Pozzoli, L., Tsigaridis, K., et al., 2015. A multi-model evaluation of aerosols over south Asia: Common problems and possible causes. *Atmos. Chem. Phys.* 15, 5903-5928.
- Pathak, B., Bhuyan, P.K., Biswas, J., Takemura, T., 2013. Long term climatology of particulate matter and associated microphysical and optical properties over Dibrugarh, north-east India and inter-comparison with sprintars simulations. *Atmos. Environ.* 69, 334-344.
- Pope III, C.A., Ezzati, M., Dockery, D.W., 2009. Fine-particulate air pollution and life expectancy in the United States. *N. Engl. J. Med.* 360, 376-386.
- Rengarajan, R., Sudheer, A., Sarin, M., 2011. Aerosol acidity and secondary organic aerosol formation during wintertime over urban environment in western India. *Atmos. Environ.* 45, 1940-1945.
- Srivastava, R., 2017. Trends in aerosol optical properties over south asia. *Int. J. Climatol.* 37, 371-380, DOI: [10.1002/joc.4710](https://doi.org/10.1002/joc.4710).
- Srivastava, R., Bran, S.H., 2017. Spatio-temporal variations of black carbon and optical properties in a regional climate model. *Int. J. Climatol.* 37, 1432-1443, Doi:10.1002/joc.4787.
- Srivastava, R., Ramachandran, S., Rajesh, T., Kedia, S., 2011. Aerosol radiative forcing deduced from observations and models over an urban location and sensitivity to single scattering albedo. *Atmos. Environ.* 45, 6163-6171.
- Sudheer, A.K., Rengarajan, R., Sheel, V., 2015. Secondary organic aerosol over an urban environment in a semiarid region of western India. *Atmos. Pollut. Res.* 6, 11-20.
- Tewari, M., Chen, F., Wang, W., Dudhia, J., LeMone, M., Mitchell, K., Ek, M., Gayno, G., Wegiel, J., & Cuenca, R. (2004). Implementation and verification of the unified noah land surface model in the wrf model. In 20th conference on weather analysis and forecasting/16th conference on numerical weather prediction (pp. 11-15).
- Tiwari, S., Srivastava, A.K., Bisht, D.S., Bano, T., Singh, S., Behura, S., Srivastava, M.K., Chate, D., Padmanabhamurty, B., 2009. Black carbon and chemical characteristics of pm10 and pm2. 5 at an urban site of north India. *J. Atmos. Chem.* 62, 193-209.
- Van Donkelaar, A., Martin, R.V., Brauer, M., Kahn, R., Levy, R., Verduzco, C., Villeneuve, P.J., 2015. Global Estimates of Ambient Fine Particulate Matter Concentrations from Satellite-based Aerosol Optical Depth: Development and Application. Ph.D. thesis. University of British Columbia.
- Wang, G., Huang, L., Gao, S., Gao, S., Wang, L., 2002. Characterization of water-soluble species of PM10 and PM2. 5 aerosols in urban area in nanjing, China. *Atmos. Environ.* 36, 1299-1307.
- World Health Statistics, 2015. World Health Organization. [http://www.who.int/gho/publications/world\\_health\\_statistics/2015/en/](http://www.who.int/gho/publications/world_health_statistics/2015/en/).

## 10. अंटार्कटिका में सौर विकिरण अध्ययन

डॉ विजय कुमार उपाध्याय  
बोकारो, झारखंड

पृथ्वी की सतह पर ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य है। यह ऊर्जा अंतरिक्ष में चारों ओर लघु तरंगों के रूप में विकिरित होती रहती है। इस विकिरित ऊर्जा को सौर विकिरण कहा जाता है। कुल सौर विकिरण का मात्र दो इकाई (1,00,00,00,000 का 0.000000002) ही पृथ्वी पर पहुंचता है। सौर विकिरण की यह छोटी सी मात्रा ही पृथ्वी पर होने वाली समस्त भौतिक एवं जैविक प्रक्रियाओं के लिए एकमात्र अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है। सौर-विकिरण पृथ्वी पर सभी स्थानों पर समान रूप से नहीं पड़ता है, बल्कि पृथ्वी की सतह पर पहुंचने वाले सौर विकिरण की मात्रा और ऊर्जा में स्थान एवं समय के अनुसार व्यापक भिन्नता होती है। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सौर-विकिरण की मात्रा अधिक होती है, वहीं शीत ऋतु में कम हो जाती है। इसी तरह ऊष्ण कटिबंध क्षेत्रों में वार्षिक सौर-विकिरण सर्वाधिक होता है और पृथ्वी के ध्रुवों की ओर यह धीरे-धीरे कम होता जाता है। एक अध्ययन के अनुसार सतह पर प्राप्त होने वाली सौर-विकिरण की मात्रा में उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में लगभग 320 वाट प्रति वर्ग मीटर से ध्रुवों पर 70 वाट प्रति वर्ग मीटर तक अंतर पाया जाता है।

पृथ्वी के दक्षिण ध्रुव अंटार्कटिका पर पड़ने वाले सौर-विकिरण की बात की जाए तो इससे संबंधित पहला अध्ययन नॉर्वे के वैज्ञानिकों द्वारा पचास के दशक के पूर्वार्ध में मोधैम नामक स्टेशन पर प्रारंभ

किया गया था। लगभग इसी समय के आसपास कुछ फ्रांसीसी वैज्ञानिकों द्वारा भी पोर्ट मार्टिन स्टेशन पर इस दिशा में अध्ययन शुरू किया गया। सौर-विकिरण संबंधी अध्ययन में क्रमबद्ध एक्टिनोमीटर पर्यवेक्षण की शुरुआत सन् 1956-57 में हुई। यह पर्यवेक्षण 11 स्टेशनों पर शुरू किया गया जिनमें शामिल थे (1) एल्सवर्थ (2) नार्वे (3) विल्किस (4) लिटिल अमेरिका (5) ब्राइर्ड (6) स्कॉट (7) मासन (8) हैली बे (9) एमंडसन स्कॉट (10) हैल्लेट तथा (11) प्लैटो। अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिकीय वर्ष के दौरान अंटार्कटिका में कार्यरत 44 स्टेशनों में से सिर्फ 14 स्टेशनों पर ही अंटार्कटिक पर्यवेक्षण किया जा सका। इसके पूर्व कई स्टेशन जो पहले कार्यरत थे उनमें से कई स्टेशन धीरे-धीरे बंद हो गए।

उपर्युक्त अध्ययनों के आधार पर जो आंकड़े एकत्र किए गए वे काफी विषमरूपी थे। कुछ स्टेशनों पर जमा किए गए आंकड़े संपूर्ण विकिरण के मासिक योग थे, जबकि कुछ अन्य स्टेशनों पर संकलित किए गए आंकड़े विकिरण संतुलन से संबंधित थे। विकीर्णित अथवा सीधे विकिरण के संबंध में आंकड़े नगण्य परिमाण में उपलब्ध थे। इतना ही नहीं आंकड़ों के संकलन के दौरान कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर या तो ध्यान नहीं दिया गया था या छोड़ दिया गया था। साथ ही पर्यवेक्षण की अवधि भी एक समान नहीं थी।

जिन स्टेशनों पर एक्टिनोमीट्रिक पर्यवेक्षण किए गए, उनमें से अधिकांश अंटार्कटिका के तटवर्ती क्षेत्रों में स्थित थे तथा सभी पर्यवेक्षण समुद्र तल पर किए गए थे। इन पर्यवेक्षण केंद्रों में कुछ अपवाद भी थे, जिनमें शामिल थे, बायर्ड तथा एमंडसन स्कॉट नामक दो अमेरिकी स्टेशन तथा शार्को नामक फ्रांसीसी स्टेशन। ये तीनों पर्यवेक्षण केंद्र समुद्री किनारे पर स्थित न होकर अंटार्कटिका महाद्वीप के भीतरी भाग में स्थित थे।

चूंकि शोध पत्रों एवं पुस्तकों में प्रायः संपूर्ण विकिरण की ही चर्चा होती है, अतः संपूर्ण विकिरण का ही इस लेख में विश्लेषण किया जा रहा है। संपूर्ण विकिरण में दृश्य तथा अदृश्य दोनों प्रकार के विकिरण शामिल हैं। वस्तुतः स्पेक्ट्रम सभी तरंगदैर्घ्य वाले विकिरण का योग है। संपूर्ण विकिरण का मान निम्नलिखित घटकों पर निर्भर करता है- (क) भौगोलिक स्थिति, (ख) खगोल वैज्ञानिक परिस्थिति, (ग) भूतलीय स्थिति तथा (घ) मेघ आवरण पर।

जहां तक भौगोलिक स्थिति का प्रश्न है, हम जानते हैं कि अंटार्कटिका में साल के कुछ ही महीने के दौरान सौर विकिरण प्राप्त होता है। दक्षिण ध्रुव पर तो छह महीने का दिन और छह महीने की रात होती है जबकि अंटार्कटिक महाद्वीप के अन्य क्षेत्रों में भी दिन रात की इसी से मिलती स्थिति रहती है। इसी तरह खगोल वैज्ञानिक स्थिति के संदर्भ में वायुमंडल के द्वारा सौर-विकिरणों के आवर्तन के कारण अंटार्कटिका की भूमि सौर-विकिरणों द्वारा उस अवधि में अधिक समय तक प्रकाशित होती है जब सूर्य क्षितिज के ऊपर होता है। इसके विपरीत अंटार्कटिका की भूमि सूर्य किरणों द्वारा उस समय कम प्रकाशित होती है जब सूर्य क्षितिज के नीचे स्थित होता है। अंटार्कटिका के भूतल की स्थिति के संबंध में हम जानते हैं कि उसका अधिकांश स्थलीय भाग श्वेत हिम एवं बर्फ की परत से ढका हुआ है। इस कारण सौर विकिरण का जो भी प्रकाश वहां पहुंचता है, उसका लगभग 80 से 85% परावर्तित होकर अंतरिक्ष में वापस लौट जाता है।

अंटार्कटिका के स्थलीय क्षेत्र की समुद्र तल से ऊंचाई यहां पहुंचने वाले सौर विकिरण के परिणाम को काफी अधिक प्रभावित करती है। अंटार्कटिका के स्थलीय भाग का लगभग 50% भाग समुद्र तल से लगभग 2000 मीटर ऊंचा है। ऐसा क्षेत्र जो समुद्र तल से अधिक ऊंचा होता है, वहां सीधे पहुंचने वाले सौर विकिरण की तीव्रता अधिक होती है। अंटार्कटिका के ऊपर मौजूद रहने वाले वायुमंडल परिभ्रमण की विचित्रताएं इस महाद्वीप की सतह पर पहुंचने वाले छोटी तरंगदैर्घ्य वाले सौर विकिरण को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। वायुमंडलीय परिभ्रमण के बहुत अधिक होने के कारण वायुमंडल



बहुत शुष्क हो जाता है, जिसके कारण वायुमंडल की पारदर्शिता बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि अंटार्कटिका की सतह पर पहुंचने वाले सौर विकिरण का परिमाण बढ़ जाता है।

किसी क्षेत्र के ऊपर मौजूद मेघ आवरण भी उस क्षेत्र में पहुंचने वाले सौर-विकिरण को बहुत अधिक प्रभावित करता है। अध्ययनों से पता चला है कि अंटार्कटिका के स्थलीय क्षेत्रों की अपेक्षा इसके तटीय क्षेत्रों पर मेघ आवरण अधिक पाया जाता है। इसके फलस्वरूप अंटार्कटिका की भूसतह पर पहुंचने वाले सौर-विकिरण का परिमाण बढ़ जाता है। अंटार्कटिका के स्थलीय क्षेत्रों की अपेक्षा इसके समुद्री किनारों पर मेघ आवरण अधिक पाया जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि स्थलीय क्षेत्र में पहुंचने वाला सौर विकिरण भूसतह पर पहुंचने में कम बाधित होता है जबकि तटवर्ती क्षेत्रों में यह बहुत अधिक बाधित होता है।

अंटार्कटिका में सौर विकिरण के परिमाण को प्रभावित करने में मेघ आवरण के अलावा एक अन्य घटक जो काफी महत्व रखता है वह है सूर्य के चमकने की अवधि। सूर्य की मौजूदगी तथा उसके चमकने की अवधि के संबंध में आंकड़ों के संकलन कई शोध स्टेशनों पर किए गए। सूर्य के चमकने की अवधि तथा सौर विकिरण के बीच संबंध के आधार पर उन स्थानों के संपूर्ण विकिरण की गणना की जा सकती है, जिन स्थानों पर सीधे मापन करना संभव नहीं है। मेघ आवरण की मोटाई यदि अधिक होती है, तो अंतरिक्ष से भू-सतह की ओर आने वाला सौर विकिरण तो बाधित होता ही है, साथ ही भू-सतह से अंतरिक्ष की ओर वापस लौटने वाला ताप विकिरण भी बहुत अधिक बाधित होता है। अंटार्कटिका में सूर्य के चमकने की सबसे लंबी अवधि प्रत्येक वर्ष नवंबर-दिसंबर के दौरान होती है। यह अवधि 300 से 400 घंटे के बीच होती है। अंटार्कटिका में सूर्य के चमकने की सबसे छोटी अवधि प्रत्येक वर्ष मई-जून में होती है। यह शून्य से 10 घंटे के बीच होती है। परंतु सौर विकिरण की चमक में आकस्मिक वृद्धि मेघ आवरण में कमी के कारण नहीं, बल्कि दिसंबर के दौरान दिन की लंबाई में वृद्धि के कारण होती है। बसंत ऋतु के दौरान सौर विकिरण में आकस्मिक कमी तथा शरद ऋतु के दौरान सौर विकिरण में आकस्मिक वृद्धि पाई जाती है। अंटार्कटिका के समुद्री क्षेत्रों में सूर्य के चमकने की अवधि का कुल वार्षिक योग 1500 से 1800 घंटे होता है।

अंटार्कटिका के छह समुद्र तटीय तथा एक भीतरी स्टेशन पर 3 से 15 वर्षों तक संपूर्ण विकिरण की माप की गई जिनका औसत वार्षिक मान निम्न प्रदर्शित सारणी में दिखाया गया है-

स्टेशन का नाम	संपूर्ण विकिरण (किलो कैलोरी प्रति वर्ग सेंटीमीटर)
मॉसन	97.9
शोवा	94.0
हेली बे	84.8
किंग बौडोविन	97.1
नॉर्वे	97.7
स्काॅट	85.6
एमंडसन स्काॅट	106.2

वार्षिक संपूर्ण विकिरण की प्रकृति, जो सूर्य की ऊंचाई, मेघ आवरण की प्रकृति तथा नीचे स्थित सतह पर निर्भर करती है, सभी स्टेशनों पर स्पष्ट तौर पर देखी गई। विशेषकर एमंडसन स्काॅट नामक स्टेशन पर अधिक स्पष्टता से देखी गई क्योंकि यहां ग्रीष्म ऋतु के दौरान अध्ययन किया गया था। दिसंबर महीने में अध्ययन के दौरान पाया गया कि समुद्र तटीय क्षेत्रों में विकिरण 22 से 24 किलो कैलोरी प्रति वर्गमीटर है, जबकि अंटार्कटिका के भीतरी भाग में स्थित एमंडसन स्काॅट स्टेशन पर विकिरण का मान

29-30 किलो कैलोरी प्रति वर्ग सेंटीमीटर है। अध्ययनों से पता चला है कि ग्रीष्म ऋतु के दौरान अंटार्कटिका में संपूर्ण विकिरण का मान अंटार्कटिका के मासिक योग का 1.3 गुना है। फरवरी से अप्रैल के बीच सूर्य की ऊंचाई में हास के साथ संपूर्ण विकिरण के मान में अकस्मात कमी आने लगती है। अंटार्कटिका के बड़े हिस्से में मई से जुलाई के बीच ध्रुवीय रात रहती है, जिसकी वजह से संपूर्ण विकिरण का मान शून्य रहता है। इसके बाद अगस्त से नवंबर तक संपूर्ण विकिरण बहुत तेजी से बढ़ने लगता है तथा दिसंबर में अधिकतम मान पर पहुंच जाता है। अभी तक विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि अंटार्कटिका के आंतरिक भाग में सौर विकिरण का अधिकतम वार्षिक मान 110 से 111 किलो कैलोरी प्रति वर्ग सेंटीमीटर है। जबकि तटवर्ती क्षेत्रों में यह मान 95 से 105 किलो कैलोरी प्रति वर्ग सेंटीमीटर है। अप्रैल से दिसंबर के बीच संपूर्ण सौर विकिरण का मासिक मान वार्षिक मान से 2 से 6% है। दिसंबर में यह मान तटवर्ती क्षेत्रों के लिए लगभग 24% तथा अंटार्कटिका के भीतरी भाग के लिए यह मान 28% है। इस प्रकार संपूर्ण विकिरण के आधार पर अंटार्कटिका में स्थित पर्यवेक्षण स्टेशनों को तटवर्ती तथा आंतरिक दो श्रेणियों में आसानी से विभाजित किया जा सकता है।

सौर विकिरण के परिमाण में परिवर्तनशीलता को परखने के लिए वैसे स्टेशनों के आंकड़े एकत्र किए गए जहां काफी लंबे समय तक पर्यवेक्षण किए गए थे। ऐसे स्टेशनों में शामिल थे - शोवा, किंग बौडोइन, एमंडसन स्कॉट, स्कॉट, हैली तथा मॉसन। संपूर्ण विकिरण की एक खास विशेषता है इसके अधिकतम मान तथा न्यूनतम मान का अनुपात, जो यह बताता है कि इसका अधिकतम मान उसके न्यूनतम मान का कितना गुना है। अध्ययनों से पता चला है कि अंटार्कटिका के भीतरी भाग में संपूर्ण विकिरण का अधिकतम मान न्यूनतम मान का 1.1 से 1.4 गुना है, जबकि तटीय क्षेत्रों में संपूर्ण विकिरण का अधिकतम मान इसके न्यूनतम मान का 1.1 से 1.8 गुना है।

संपूर्ण विकिरण के मासिक मान में परिवर्तनशीलता के निर्धारण हेतु उनके लंबे समय के मध्यमान से विचलन की गणना की गई। जिस अवधि के दौरान यह मध्यमान प्राप्त किए गए, वह अवधि सभी स्टेशनों के लिए एक नहीं थी। बल्कि इनमें 6 से 13 दिनों का अंतर था। यह पाया गया कि औसत तौर पर सामान्य से विचलन एक महीने में अंटार्कटिका के भीतरी भाग में 7% तथा तटवर्ती क्षेत्रों में 13% तक सीमित रह सकता है। जबकि वार्षिक विचलन अंटार्कटिका के भीतरी भाग में 2% तथा तटवर्ती क्षेत्रों में 4% तक सीमित रहता है। ग्रीष्म ऋतु के दौरान मासिक विचलन सामान्य से 2 से 6% रहता है।

अतः अंटार्कटिका में सौर विकिरण अध्ययनों से वैश्विक तापन और समुद्री संस्तर में वृद्धि जैसे प्रासंगिक भौगोलिक प्रश्नों के उत्तर भी खोज पाएंगे।

## संदर्भ

- G. Stanhill and S. Cohen (1997) Recent Changes in Solar Irradiance in Antarctica. Journal of Climate. Page(s): 2078–2086 DOI: [https://doi.org/10.1175/1520-0442\(1997\)010<2078:RCISII>2.0.CO;2](https://doi.org/10.1175/1520-0442(1997)010<2078:RCISII>2.0.CO;2)
- Gayle L. Dana Robert A. Wharton Jr. Ralph A. Dubayah (1998), Solar Radiation in the McMurdo Dry Valleys, Antarctica. Book Editor(s): John C. Priscu <https://doi.org/10.1029/AR072p0039Citations:8> Book Series: Antarctic Research Series
- Kevin A. Hughes, Blair Lawley, and Kevin K. Newsham (2003), Solar UV-B Radiation Inhibits the Growth of Antarctic Terrestrial Fungi Appl Environ Microbiol. 2003 Mar; 69(3): 1488–1491. doi: 10.1128/AEM.69.3.1488-1491.2003
- M. K. Obryk, et al., (2018) Drivers of solar radiation variability in the McMurdo Dry Valleys, Antarctica Scientific Reports 8(1):5002 DOI: 10.1038/s41598-018-23390-7

- OnniJärvinen and Matti Leppäranta (2013), Solar radiation transfer in the surface snow layer in Dronning Maud Land, Antarctica. Polar Science Volume 7, Issue 1, March 2013, Pages 1-17  
<https://doi.org/10.1016/j.polar.2013.03.002>



## 11. ध्रुवीय अनुसंधान और सौरमंडलीय ग्रहों में जीवन की खोज

सुश्री श्वेताक्षी मिश्रा

धम्मे कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, गोवा



हमारे ग्रह पृथ्वी के दोनों ध्रुव; उत्तरी आर्कटिक और दक्षिणी अंटार्कटिक उनकी बर्फ, हिमनदों और ठंडी जलवायु परिस्थितियों के लिए जाने जाते हैं। वास्तव में, ये चरम शीत पर्यावरण के क्षेत्र दुनिया के बाकी हिस्सों से पूरी तरह से अलग हैं, अतः यहाँ कोई मानव बस्ती नहीं है। इन ध्रुवीय क्षेत्रों में जीवन और उसके अस्तित्व के बारे में बहुत सारे तथ्य छिपे हुए हैं। फलतः, ध्रुवीय क्षेत्र सदियों से अनेक शोधकर्ताओं और उत्साही लोगों के लिए आकर्षण का क्षेत्र रहे हैं।

ध्रुवीय क्षेत्र के रहस्यों को सुलझाने के लिए, दुनिया भर के देशों ने अपने वैज्ञानिकों के लिए आर्कटिक और अंटार्कटिक क्षेत्रों में विभिन्न स्टेशन स्थापित किए हैं। इन स्टेशनों में वैज्ञानिक वर्ष के कुछ उपयुक्त महीनों में रहकर जीवविज्ञान, पुरा-जलवायु, वायुमंडलीय, महासागर विश्लेषण आदि अनगिनत शोधकार्य कर रहे हैं। इन शोधों से निरंतर सार्थक परिणाम सामने आते जा रहे हैं। हालांकि विशेष वैज्ञानिक शोधों के लिए पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्र ही एक मात्र शोधस्थल नहीं है, वरन इनके अलावा अन्य ऐसे क्षेत्र और विषय भी मौजूद हैं, जिनकी तरफ वैज्ञानिकों का ध्यान बढ़ता जा रहा है। ऐसा ही एक उभरता शोध का क्षेत्र ब्रह्मांड का अध्ययन है।

यह सर्वविदित है कि मानव एक जिज्ञासु प्राणी है। मानव की जिज्ञासा केवल पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह अनंत ब्रह्मांड की खोज में भी लगा हुआ है। मानव ब्रह्मांड में उपस्थित अन्य ग्रहों और स्थानों में जीवन के अस्तित्व को खोजने के लिए उत्सुक है। हालांकि यह भी सच है कि हम ब्रह्मांड में जीवन खोजने अंतरिक्ष यान में तो नहीं घूम सकते, क्योंकि बेहतरीन तकनीकों के साथ भी, ब्रह्मांड के ज्ञात क्षेत्रों में यात्रा करने में अरबों साल लगेंगे। तो, क्या करना चाहिए? सबसे अच्छा तरीका यह है कि पहले ब्रह्मांड में उस स्थान की खोज की जाए, जहां जीवन मिलने की सबसे अधिक संभावना दिखी हो, ताकि हम समय बर्बाद न करें और जीवन की खोज के लिए एक वांछनीय स्थान ढूँढ सकें। निःसंदेह, पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्र हमें ब्रह्मांड में उन स्थानों का पता लगाने में सहायता कर सकते हैं जहां जीवन के मिलने और साथ ही उसे खोजने की अधिक संभावना है।

यह स्पष्ट है कि, पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों में सूक्ष्मजीवों, वनस्पतियों और जीवों का अपना अलग ही समूह निवास करता है। इन जीवों ने बर्फीले क्षेत्रों में जीवित रहने के लिए स्वयं को अनुकूलित कर लिया है। इसी प्रकार ब्रह्मांड में भी हम उन स्थानों का पता लगा सकते हैं, जहां बर्फ मौजूद है, जिससे ब्रह्मांड में उपस्थित उन जीवों का पता लगाया जा सकता है, जो अंतरिक्ष की बर्फ में रहने के लिए अनुकूलित हों।

इस प्रकार, ध्रुवीय क्षेत्र को समझना विशाल ब्रह्मांड में जीवन को खोजने के लिए सफलता का पहला कदम साबित हो सकता है।

अंतरिक्ष विज्ञान में अतिविकसित तकनीकों के निरंतर सफल प्रयोगों के बाद से जीवन को ब्रह्मांड में ढूँढ़ने की लालक चरम पर पहुंच गई है। कई मिशनों और अवलोकनों से पता चला है कि हमारे सौर मंडल में ही ऐसे कई स्थान हैं जहाँ जल की बर्फ मौजूद है। इस तरह की जलवायु परिस्थितियों का निकटतम उदाहरण हमारी पृथ्वी का प्राकृतिक उपग्रह "चंद्रमा" है। हालांकि चंद्रमा का धरातल गड्ढों या क्रेटरों से भरा पड़ा है, लेकिन इनमें जल की बर्फ भी समाई हुई है। नासा के अंतरिक्षयान लूनार रिकोनेसैस ऑर्बिटर ने प्रमाण दिए थे कि चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव के गहरे गड्ढों में जल की बर्फ मौजूद है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने भी 2008 में शुरू किए गए अपने प्रथम चंद्र अभियान के दौरान चंद्रमा की सतह पर जमे हुए जल के प्रमाण प्रस्तुत किए थे। भारत के चंद्रयान 1 ने 2009 में चंद्रमा पर जल की खोज की थी, जिसमें चंद्र सतह पर फेले हाइड्रॉक्सिल अणुओं का पता चला था जो चंद्रमा के ध्रुव पर केंद्रित थे। हालांकि यह पता चला कि चंद्रमा पर जल पृथ्वी की तरह सागर या झीलों के रूप में नहीं है बल्कि वहां जल चट्टानों और खनिज लवण में उपस्थित है। चंद्रयान-1 की खोज के दो माह बाद ही अमेरिका अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने भी चांद की सतह पर जल के "अधिक मात्रा में" बर्फ के रूप में पाए जाने की पुष्टि की थी। नासा के लूनार क्रेटर ऑब्जर्वेशन ऍंड सेंसिंग सैटेलाइट (एलसीआरओएसएस) परियोजना वैज्ञानिक एवं एमएस रिसर्च सेंटर के प्रधान जांचकर्ता एंथनी कोलाप्रेट के अनुसार चंद्रमा पर लगभग 20 से 30 मीटर के गड्ढे में कम से कम दो गैलन जल होगा।

पृथ्वी के चंद्रमा की तरह, सौरमंडल के कई ग्रहों, धूमकेतुओं और चंद्रमाओं की वातावरणीय स्थिति पृथ्वी के आर्कटिक और अंटार्कटिक ध्रुवीय क्षेत्रों की तरह ही है। सौर मंडल का सबसे अंतरतम ग्रह बुध है, जो सूर्य के सबसे निकट है। यहाँ तीव्र गति से सौर हवाएं चलती रहती हैं और उल्कापिंड गिरते रहते हैं। हालांकि ऐसी स्थितियां जीवन को यहाँ लगभग असंभव बना देती हैं। लेकिन, बुध के सबसे बाहरी मंडल में अधिकतर ऑक्सीजन की मात्रा होती है और सतह पर भी गहरे गड्ढे होते हैं। इन गड्ढों में बर्फ पाई गई है जो जल से बनी है। अनुमान है कि यह बर्फ बुध की सतह पर किसी बर्फले उल्कापिंड के टकराने से आई होगी। नासा के मैसेंजर मिशन टू मर्करी के दौरान यह पाया गया कि बुध के गहरे गड्ढे ठंडे हैं क्योंकि सूर्य का प्रकाश इसके अंदर तक नहीं पहुँच सकता है। यह दर्शाता है कि इन गड्ढों के अंदर कुछ सूक्ष्म जीव पनप सकते हैं। दूसरी ओर, शुक्र, जिसका वातावरण कार्बन-डाइऑक्साइड का बना है, इतना गर्म है कि वहां बर्फ नहीं मिल सकती। इसलिए शुक्र पर जीवन खोजना व्यर्थ है।

इसके बाद बारी आती है लाल ग्रह मंगल की, जिस पर हमेशा से ही एलियंस के रहने की बात समय-समय पर सामने आती रहती है। पृथ्वी की तरह, मंगल ग्रह के ध्रुवों पर भी बर्फ है, जो मुख्य रूप से जल की बर्फ है। मंगल पर सर्दियों के मौसम के दौरा कार्बन-डाइऑक्साइड गैस भी जल की बर्फ के साथ जम जाती है और इसकी सतह पर गिर जाती है। भारत ने 5 नवंबर 2013 को अपना मार्स ऑर्बिटर मिशन (एमओएम) यानी मंगलयान प्रक्षेपित किया था, जिसने 24 सितंबर 2014 को मंगल की कक्षा में प्रवेश किया था। तब से अब तक भारतीय मंगलयान बहुत अच्छी तरह से काम कर रहा है और मिशन से जुड़ी हुई आवश्यक तस्वीरें इसरो और नासा के साथ साझा कर रहा है। इसे मुख्यतः मंगल पर मीथेन गैस की मौजूदगी का पता लगाने के लिए भेजा गया था। साथ ही मंगलयान मंगल ग्रह के वातावरण का अवलोकन कर रहा है। मंगलयान मीथेन, हाइड्रोजन आदि जैसे कई तत्वों की उपस्थिति की खोज कर रहा है जिससे जीवन की उपस्थिति का संकेत मिल सके। मंगल के चंद्रमा फोबोस और

डीमोस बहुत छोटे हैं और उनमें कई गढ़े हैं। उनमें बहुत सा कार्बन उपस्थित है और वे धूल से ढके हुए हैं। मंगल के चंद्रमाओं में बर्फ के कुछ प्रमाण मिले हैं लेकिन इन पर बहुत अधिक अध्ययन नहीं किया गया है क्योंकि वे सौर मंडल के अंधरे स्थानों में से एक हैं।

मंगल ग्रह के बाद शेष सभी ग्रहों को गैसीय महाकाय ग्रह कहा जाता है क्योंकि ये सभी अधिकांशतया गैसों के बने होते हैं। ये ऐसे ग्रह होते हैं जो सूर्य से दूर होते हैं और इसलिए यहां पर अधिक मात्रा में बर्फ उपस्थित होती है। बृहस्पति सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह है, परंतु यहां जल बर्फ मौजूद नहीं है। बृहस्पति के वायुमंडल में जलवाष्प के रूप में कम मात्रा में जल मौजूद है, अपितु इस वायुमंडल में ऑक्सीजन की उपस्थिति नहीं है। इसी कारण तुलनात्मक रूप से बृहस्पति जीवन होने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है। हालांकि इसके चंद्रमाओं के पास जीवन के लिए बहुत अधिक उपयुक्त परिस्थितियां मौजूद हैं।

बृहस्पति के अनेक चंद्रमा हैं। अब तक बृहस्पति के 79 चंद्रमाओं की खोज हो चुकी है। ऐसा माना जाता है कि लगभग सभी चंद्रमाओं में जल की बर्फ है। लेकिन जीवन को खोजने के लिए सबसे उत्तम चंद्रमा यूरोपा है। इस चंद्रमा में जल की बर्फ है जो यूरोपा को पूरी तरह से ढके हुए है। बर्फ के नीचे खारे जल का समुद्र है। यह अनुमान है कि यूरोपा में पृथ्वी की तुलना में अधिक जल हो सकता है। यूरोपा क्लिपर नामक एक अंतरिक्षयान को इस बृहस्पति-चंद्रमा पर जीवन की संभावनाओं की जांच के लिए भेजा गया। बृहस्पति का सबसे बड़ा चंद्रमा गेनीमैड है, जो सौरमंडल का भी सबसे बड़ा चंद्रमा है। गेनीमैड भी ज्यादातर बर्फ से बना हुआ है। इसी प्रकार बृहस्पति का एक चंद्रमा कैलिस्टो है। वह चट्टानों और अमोनिया, जल और कार्बन डाइऑक्साइड से बना है। अतः यह कहा जा सकता है कि बृहस्पति के बर्फीले चंद्रमा ब्रह्मांड में जीवन के अस्तित्व की खोज करने के लिए अति उत्तम क्षेत्र साबित हो सकते हैं।

सूर्य से अधिक दूर बढ़ते हुए जब हम शनि ग्रह पर जीवन की संभावना ढूंढते हैं, तो स्पष्ट पता चलता है कि शनि ग्रह के सुंदर होने और उसके पास आकर्षक वलय होने के बावजूद भी वहां जीवन असंभव है। क्योंकि शनि ग्रह की अपनी कोई ठोस सतह नहीं है। लेकिन शनि के चंद्रमाओं पर जीवन की संभावना अधिक है। बृहस्पति के चंद्रमाओं की तरह ही शनि के अधिकांश चंद्रमा भी जल की बर्फ से बने हैं। विशेष रूप से शनि के चंद्रमा "एन्सेलेडस" जिसमें खारे जल का सागर है और जो बर्फ की परत से ढका है। कभी-कभी इसके खारे जल का यह सागर बर्फ को तोड़कर बाहर आ जाता है। एन्सेलेडस चंद्रमा पर उपस्थित यह बर्फ उसे सौरमंडल का सबसे चमकदार पदार्थ बनाता है।

यूरेनस और नेपच्यून दोनों ग्रह सूर्य से बहुत अधिक दूर हैं। इसी कारण दोनों ग्रहों पर काफी ज्यादा मात्रा में बर्फ उपस्थित है, इसलिए इन दोनों ग्रहों को बर्फीले महाकाय ग्रहों के नाम से जाना जाता है। अतः यहां जीवन खोजने की संभावना भी अधिक है। दोनों ग्रहों के वातावरण में मीथेन, सल्फर और अमोनिया के बर्फीले माणभीय कण पाए गए हैं। यूरेनस और नेपच्यून के चंद्रमा बहुत छोटे हैं और केवल चट्टान और बर्फ से बने हैं। उदाहरण के लिए नेपच्यून के सबसे बड़े चंद्रमा ट्राइटॉन की सतह सौर-मंडल का सबसे ठंडा स्थान है। इस चंद्रमा का पर्यावरण पूरी तरह से नाइट्रोजन से बना है और इसके साथ ही इसकी सतह नाइट्रोजन की बर्फ से ढकी हुई है। ट्राइटॉन में उपस्थित झरनों से भी ठंडी द्रव नाइट्रोजन निकलती है। भारी मात्रा में नाइट्रोजन का इस चंद्रमा पर होना जीवन के प्रारंभिक चरणों की उपस्थिति की ओर संकेत देता है और साथ ही नाइट्रोजन से कुछ प्रोटीन बनने की भी संभावना पैदा करता है।

प्लूटो जो अब हमारे सौर मंडल का ग्रह नहीं है अपितु एक बौना ग्रह बन गया है, वहां भी जीवन की उपस्थिति से संबंधित कुछ आकर्षक साक्ष्य दिखाई देते हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्लूटो की सतह पर जमे हुए ऑक्सीजन और नाइट्रोजन तत्व हैं। इसके अलावा नासा के न्यू होराइजन मिशन के

दौरान यह पाया गया कि प्लूटो पर एक पर्वत श्रृंखला पर मीथेन की बनी बर्फ थी। इससे हम कह सकते हैं कि वहां पर जीवन उत्पन्न करने के लिए लगभग सभी तत्व मौजूद हैं।

उपरोक्त सभी जानकारियों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बर्फ विभिन्न रूपों में हमारे सौरमंडल में मौजूद है। इसके अलावा, हम इस तथ्य से सहमत हो सकते हैं कि इसी तरह की बर्फ अन्य सौर प्रणालियों और आकाश गंगाओं में भी पाई जा सकती है। इसका मतलब यह है कि अगर हम अन्य ग्रहों की बर्फ की तुलना हमारे ग्रह पृथ्वी के ध्रुवों की बर्फ के साथ करें तो निश्चित ही हम ब्रह्मांड में छिपे जीवन का पता लगाने में सफलता पा लेंगे।

संदर्भ

- Nasa Science News (2020) There's Water on the Moon? <https://moon.nasa.gov/news/155/theres-water-on-the-moon/>
- Latest NASA News <https://www.nasa.gov/news/releases/latest/index.html>
- ISRO News <https://www.isro.gov.in/>
- Jupiter Moons [https://solarsystem.nasa.gov/moons/jupiter-moons/overview/?page=0&per\\_page=40&order=name+asc&search=&placeholder=Enter+moon+name&condition\\_1=9%3Aparent\\_id&condition\\_2=moon%3Abody\\_type%3Ailike](https://solarsystem.nasa.gov/moons/jupiter-moons/overview/?page=0&per_page=40&order=name+asc&search=&placeholder=Enter+moon+name&condition_1=9%3Aparent_id&condition_2=moon%3Abody_type%3Ailike)
- NASA Knows! (Grades K-4) series (2015) What Is Pluto? <https://www.nasa.gov/audience/forstudents/k-4/stories/nasa-knows/what-is-pluto-k4.html>
- CHANDRAYAAN India's First Lunar Exploration Mission. <https://www.isro.gov.in/pslv-c11-chandrayaan-1>

## 12 . भारत का विस्तारित महाद्वीपीय शेल्फ कार्यक्रम

अजीत कुमार एवं डी. के. पांडे  
राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र  
(एनसीपीओआर), गोवा



### सारांश

भारतीय महाद्वीपीय मग्नतट परियोजना एक बहु-संस्थागत और बहु- राष्ट्रीय मिशन है जो नवंबर 1999 के दौरान शुरू हुई थी। इस परियोजना में वैज्ञानिक और तकनीकी सूचनाओं को इकट्ठा करने, उनके विश्लेषण और दस्तावेज बनाने का कार्य किया जाता है।

यह कार्यक्रम समुद्र के कानून (यू.एन.सी.एल.ओ.एस.) पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के प्रावधानों के अनुसार 200 समुद्री मील से परे, देश की विस्तारित मग्नतट सीमाओं को निश्चित करने में मदद करता है। हमारा प्रयास एक व्यापक बहु-संस्थागत, समुद्री भू-भौतिकीय सर्वेक्षण और आंकड़ा विश्लेषण कार्यक्रम से है, जिसमें अत्याधुनिक बहु-चैनल भूकंपीय प्रतिबिंब, अपवर्तन, गुरुत्वाकर्षण और चुंबकीय आंकड़ा प्रोफाइलिंग शामिल है।

भारतीय महाद्वीपीय सीमांतों (पूर्वी तट, पश्चिम तट और अंडमान) पर आंकड़ा अधिग्रहण का पहला चरण 17 जुलाई 2002 को शुरू किया गया था और 07 फरवरी 2004 को पूरा हुआ था। इस दौरान कुल 31000 रेखा किलोमीटर आंकड़ा अधिग्रहण किया गया था तथा पश्चिमी अंडमान के साथ-साथ हिंद महासागर में लगभग 6500 रेखा किलोमीटर आंकड़ा अधिग्रहण का कार्य द्वितीय चरण 2015 में पूरा किया गया था।

इसके अलावा, देश में पहली बार, 110 महासागर तल भूकंपमापी (ओ.बी.एस.) को भूकंपीय ट्रांसेक्ट के साथ विभिन्न चरणों में सफलतापूर्वक तैनात किया गया था ताकि प्रतिबिंब आंकड़ों से वेगों को बाधित किया जा सके और साथ ही क्षेत्र के क्रस्टल मॉडल को विकसित किया जा सके।

भारत ने 11 मई 2009 को अनुच्छेद 76 के प्रावधानों के तहत संयुक्त राष्ट्र आयोग के सामने अपना प्रथम आंशिक प्रस्तुतीकरण प्रस्तुत किया। द्वितीय आंशिक प्रस्तुतीकरण के लिए तकनीकी दस्तावेज विदेश मंत्रालय को प्रदान किए जा चुके हैं।



## परियोजनाकापरिचय

संयुक्त राष्ट्र की समुद्री क़ानून संधि, एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है, जो विश्व के सागरों और महासागरों पर देशों के अधिकार और उत्तरदायित्व निर्धारित करता है। इस संधि को "यूनाइटेड नेशन्ज़ कन्वेंशन ऑन द लॉ ऑफ़ द सी" (United Nations Convention on the Law of the Sea या UNCLOS) कहते हैं। यह संधि सन् 1982 में तैयार हो गई थी, लेकिन इसमें एक नियम यह था कि जब तक 60 प्रतिनिधि देश इस पर हस्ताक्षर नहीं कर देते तब तक यह संधि किसी पर लागू नहीं होगी। सन् 1994 में गयाना इस पर हस्ताक्षर करने वाला 60 वां देश बना। यह एक अंतर्राष्ट्रीय संधि है जो 16 नवंबर 1994 से प्रभाव में आई थी। अब तक इस संधि पर 161 देश हस्ताक्षर कर चुके हैं।



यह एक बहु-संस्थागत और बहु-राष्ट्रीय प्रयास है जिसके निम्नलिखित लक्ष्य हैं:

- वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी इकट्ठा करना
- 200 समुद्री मील से आगे किसी देश की विस्तृत मग्नतट सीमाओं को परिभाषित करना।
- संसाधनों के संरक्षण और न्यायसंगत उपयोग सुनिश्चित करना
- समुद्री पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण करना

## परियोजना का उद्देश्य

भारत ने जून 1995 में संयुक्त राष्ट्र की समुद्री क़ानून संधि को स्वीकृति प्रदान की जबकि नवंबर 1999 के दौरान 'महाद्वीपीय मग्नतट की बाहरी सीमाओं का चित्रण' नामक परियोजना की शुरूआत हुई

जिसका मुख्य उद्देश्य :

भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र (ईईजेड) के अंदर और बाहर आवश्यक वैज्ञानिक और तकनीकी आंकड़े इकट्ठा करना, जो संयुक्त राष्ट्र की समुद्री क़ानून-संधि (यूएनसीएलओएस) के प्रावधानों के तहत 200 समुद्री मील से आगे विस्तृत महाद्वीपीय मग्नतट के लिए भारत के दावों को परिभाषित, चित्रित और प्रमाणित करने में मदद करना है।

### परियोजना का महत्त्व

इस परियोजना का महत्वपूर्ण आर्थिक महत्व है

- एक तटीय देश को 200 समुद्री मील से आगे अपने क्षेत्राधिकार का विस्तार, प्राकृतिक संसाधनों की खोज और उपयोग के लिए अनुमति प्रदान करता है।
- यदि कमीशन\*\* भविष्य में भारत के दावे के पक्ष में है, तो संसाधन के लिए भारत की संप्रभुता इसके सीमा के साथ प्राकृतिक संसाधनों की खोज और उपयोग में काफी वृद्धि होगी।

कमीशन\*\* [कॉन्टिनेंटल शेल्फ की सीमाओं पर आयोग (सीएलसीएस)]

### परियोजना के प्रतिभागी संस्थान

पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय

विदेश मंत्रालय

रक्षा मंत्रालय

हाइड्रोकार्बन महानिदेशालय

भारत के भूगर्भीय सर्वेक्षण

अंटार्कटिक और महासागर अनुसंधान के लिए राष्ट्रीय केंद्र

नेशनल जियोफिजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट

राष्ट्रीय जल विज्ञान कार्यालय

राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान

तेल और प्राकृतिक गैस निगम

### परियोजना का क्रियान्वयन

सागर 1982 (यूएनसीएलओएस) के कानून के तहत, तटीय राज्यों ने अपने महाद्वीपीय मग्नतट के संसाधनों पर अपनी समुद्री आधार रेखाओं से 200 समुद्री-मील तक अपने महाद्वीपीय मग्नतट के संसाधनों पर आर्थिक अधिकार रखते हैं। हालांकि इन अधिकारों को 200 समुद्री मील से आगे भी बढ़ाया जा सकता है यदि यह प्रदर्शित किया जा सके कि महाद्वीपीय मग्नतट के सीमांतों के बाहरी किनारे अपने भूमि क्षेत्र के प्राकृतिक लंबाई में फैले हुए हैं।

तटीय देशों के महाद्वीपीय मग्नतट आयोग (सीएलसीएस) को भू-भौतिकीय प्रमाण जमा करके अपने महाद्वीपीय सीमांतों का विस्तार करना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र की समुद्री क़ानून-संधि आयोग यदि दिए गए प्रमाणों से आश्वस्त हो जाता है तो आयोग दावे किए गए "क्षेत्र"को तटीय राज्य में शामिल करने की सिफारिश करता है।

### महाद्वीपीय शेल्फ की सीमांकन के दिशानिर्देश

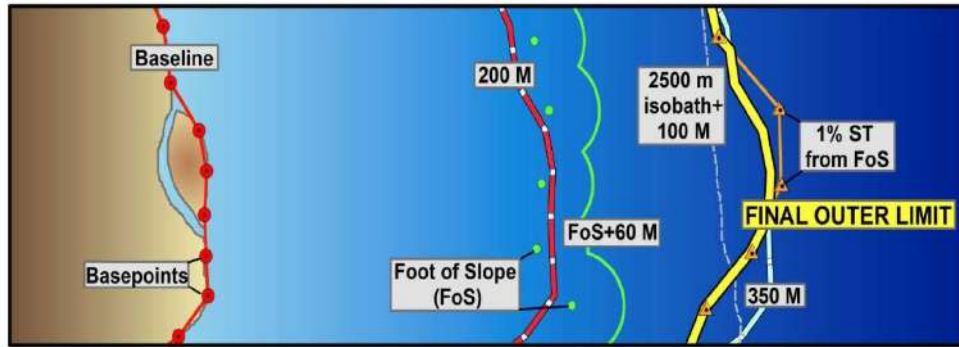
महाद्वीपीय मग्नतट की सीमाएं स्थापित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की समुद्री क़ानून संधि (1982) के तहत दो प्रावधान हैं,

1. अनुच्छेद 76 (Article 76)
2. समझौता कथन (Statement of Understanding )

#### 1. अनुच्छेद 76 (Article 76)

क्षेत्र की गणना निम्नलिखित आकड़ों पर आधारित होती है

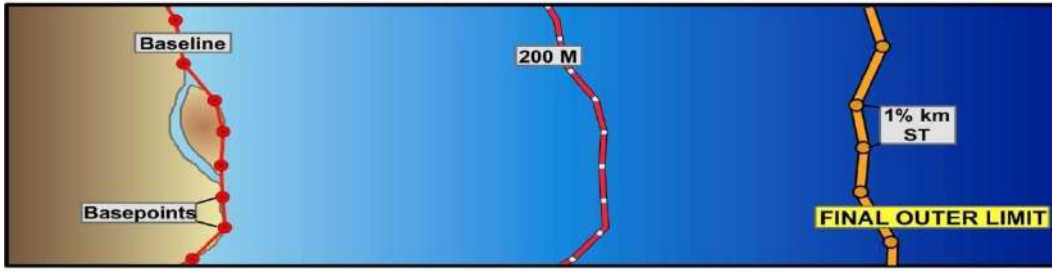
- I. ढलान की पहचान (बेथीमेट्री आंकड़ा)
- II. तलछट की मोटाई (भू-भौतिकीय आंकड़ा)
- III. आधार रेखा से दूरी (भूगर्भीय आंकड़ा)



#### समझौता कथन (Statement of Understanding)

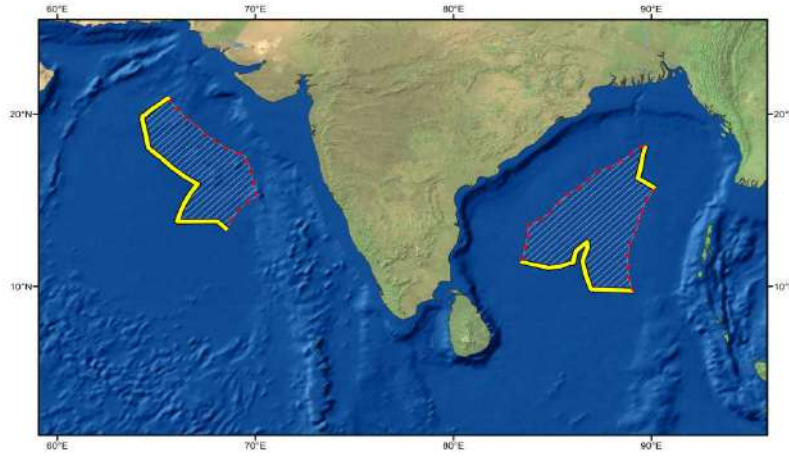
विशिष्ट भूगर्भीय स्थितियों वाले तटीय राज्यों के लिए तैयार (बहुत संकीर्ण महाद्वीपीय शेल्फ) क्षेत्र की गणना निम्नलिखित आकड़ों पर आधारित होती है

- I. क्षेत्र की तलछट मोटाई (भू-भौतिकीय आंकड़ा)
- II. आधार रेखा से दूरी (भूगर्भीय आंकड़ा)



## सर्वेक्षण क्षेत्र

11 मई 2009 को, भारत ने अनुच्छेद 76 के प्रावधानों के आधार पर सीएलसीएस को अपना पहला आंशिक अंतिम दस्तावेज प्रस्तुत किया, जिसमें अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में दिखाए गए क्षेत्र का दावा किया गया था।



## उपलब्धि

भारतीय महाद्वीपीय सीमांतों (पूर्वी तट, पश्चिम तट और अंडमान) पर आंकड़ा अधिग्रहण का पहला चरण 17 जुलाई 2002 को शुरू किया गया था और 07 फरवरी 2004 को पूरा हुआ था। इस दौरान कुल 31000 रेखा किलोमीटर आंकड़ा अधिग्रहण किया गया था तथा पश्चिमी अंडमान के साथ-साथ हिंद महासागर में लगभग 6500 रेखा किलोमीटर आंकड़ा अधिग्रहण का कार्य द्वितीय चरण 2015 में पूरा किया गया था।

इसके अलावा, देश में पहली बार, 110 महासागर तल भूकंपमापी (ओ.बी.एस.) को भूकंपीय ट्रांसेक्ट के साथ विभिन्न चरणों में सफलतापूर्वक तैनात किया गया था ताकि प्रतिबिंब आंकड़ों से वेगों को बाधित किया जा सके और साथ ही क्षेत्र के क्रस्टल मॉडल को विकसित किया जा सके।

## प्रस्तावित भविष्य की योजना

चूंकि अरब सागर में तलछट की मोटाई में कोई कमी नहीं है, इसलिए भारत, पश्चिमी तट पर अधिक क्षेत्र प्राप्त कर सकता है। इस तरह का प्रस्तुतिकरण भू-भौतिकीय आंकड़ों पर आधारित होता है जो वर्तमान में अनुपलब्ध है। इसलिए इस क्षेत्र में आंकड़ा अधिग्रहण करने की योजना बनाने पर विचार

किया जा रहा है

अंडमान अपतटीय क्षेत्र में हाल ही में अधिग्रहीत भूकंपीय आंकड़ों के आधार पर, न्यूनतम 1 किमी तलछट मोटाई की पहचान की गई है। इस आधार पर भारत हिंद महासागर में भी अधिक क्षेत्र प्राप्त कर सकता है।

## संदर्भ

- राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा की वार्षिक रिपोर्टें। <http://www.ncaor.gov.in/annualreports>
- रसिक रवींद्र (2010) भारतीय ध्रुवीय केंद्र के दस वर्ष। विज्ञान प्रगति अप्रैल 2010।
- पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार, महाद्वीपीय मग्नतट कार्यक्रम <https://moes.gov.in/hi>



पृथ्वी पर जब मानव का बौद्धिक विकास प्रारंभ हुआ, तब उसने अपने भरण-पोषण, सुरक्षा, यातायात और आवागमन हेतु उपाय एवं उपकरण उन्नत किए। बौद्धिक विकास के इसी क्रम में मानव ने भाषा, लिपि, व्याकरण और गणित आदि का भी कालांतर में विकास किया। इसी दौरान ऋतु चक्र, कालगणना तथा सूर्य व चंद्र ग्रहण जैसी खगोलीय घटनाओं की ओर ध्यान केंद्रित करने से पृथ्वी, सूर्य और चंद्र आदि की भूमिकाएं सामने आईं। इनकी भूमिकाओं के रहस्योद्घाटन के लिए जब मानव ने शोध करने शुरू किए तो सर्वप्रथम इन खगोलीय पिंडों के बारे में ज्ञान अर्जित करने के प्रयास किए गए। इन्हीं प्रयासों के तहत मानव ने पृथ्वी के आकार, उसके ध्रुवों और गति के साथ साथ अन्य खगोलीय ग्रहों के आकार, उनके ध्रुवों, सूर्य व पृथ्वी से उनकी दूरियों, उनके परिभ्रमणों संबंधी ज्ञान विविध परिकल्पनाओं एवं उपकरणों के माध्यम से प्राप्त किए। भारतीय मनीषियों ने ग्रहों, नक्षत्रों एवं राशियों के पृथ्वी एवं मानव पर प्रभाव के अध्ययन किए और इस ज्ञान को ज्योतिषशास्त्र नाम दिया गया।

ज्योतिषीय ज्ञान के क्रमशः विकास एवं विस्तार के आधार पर ज्योतिषशास्त्र की निम्नलिखित तीन शाखाएं निर्धारित की गईं-

1. **सिद्धांत शास्त्र-** इसमें अंकगणित एवं रेखा गणित सामान्य एवं चापीय दोनों के माध्यम से ग्रहों की गति, राशियों की स्थिति एवं खगोलीय घटनाओं की जानकारी प्राप्त की जाती है।
2. **होरा शास्त्र-** इसमें भी काल (समय) एवं ग्रह गणना के साथ-साथ व्यक्ति विशेष पर ग्रहों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।
3. **संहिता शास्त्र-** ज्योतिषशास्त्र की इस शाखा द्वारा ग्रहीय योगों एवं स्थितियों के आधार पर पृथ्वी पर अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, दुर्भिक्ष, भूकंप, तूफान, युद्ध एवं राजकीय घटनाओं का अनुमान लगाया जाता है।

#### पृथ्वी और सिद्धांत ज्योतिषशास्त्र

ज्योतिषशास्त्र के सिद्धांत शास्त्र को विकसित करने में पृथ्वी के बारे में की गई परिकल्पनाओं जैसे भूमध्य रेखा, अक्षांश, रेखांश, भू-केंद्र, उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिणी ध्रुव आदि का अत्यंत महत्व है। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव एक प्रकार से पृथ्वी की उत्तरी व दक्षिणी सीमाएं हैं। पृथ्वी की पूर्वी सीमा कार्य व्यवहार की दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय तिथि रेखा को तथा पश्चिमी सीमा इससे 180 डिग्री रेखांश दूर के स्थान को माना जा सकता है। पृथ्वी, उसकी वार्षिक गति, विषुवत् रेखा, दोनों ध्रुवों के आधार पर सिद्धांत ज्योतिष में एक अद्भुत परिकल्पना की गई, जिसमें उनका नामकरण किया गया। जैसे आकाश एक अनंत विस्तार वाला गोला है, इसे खगोल नाम दिया गया है और पृथ्वी को इसका केंद्र माना गया है।

खगोल के कल्पित केंद्र पृथ्वी को खगोल के बराबर काल्पनिक रूप से बड़ा करने पर भूमध्य रेखा, जिसे विषुवत रेखा भी कहा जाता है, इस आकाशीय गोले पर वृत्त बनाती हुई जहां मिलेगी उसे खगोलीय विषुवत् वृत्त नाम दिया गया। खगोलीय विषुवत वृत्त को नाड़ी वृत्त या विषुवत् वृत्त या नाड़ी वलय भी कहा जाता है। इसी वृत्त में समय का मान घटी, जिसे नाड़ी भी कहते हैं, के अनुसार होरा आधारित काल गणनाएं की जाती हैं। पृथ्वी की विषुवत रेखा जिस प्रकार उसे दो भागों उत्तरी गोलार्ध एवं दक्षिणी गोलार्ध में विभाजित करती है, उसी प्रकार विषुवत वृत्त भी खगोल को उत्तरी एवं दक्षिणी दो समान भागों में विभाजित करता है। पृथ्वी को काल्पनिक रूप से आकाशीय गोले के बराबर बड़ा करने पर पृथ्वी के दोनों ध्रुव उस गोले पर जहां पहुंचेंगे वे बिंदु आकाशीय उत्तरी ध्रुव एवं आकाशीय दक्षिणी ध्रुव के नाम से जाने जाते हैं।

पृथ्वी के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव स्थान तथा खगोलीय उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव स्थान एक ही अक्ष पर होने के कारण पृथ्वी का विषुवत वृत्त एवं खगोलीय विषुवत वृत्त दोनों एक ही समतल में एवं समानांतर हैं। वास्तव में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है और एक चक्कर एक वर्ष में पूर्ण करती है। पृथ्वी का यह चक्रीय मार्ग उसका परिक्रमा पथ कहलाता है। यदि काल्पनिक रूप से पृथ्वी के इस परिक्रमा पथ को आकाशीय गोले खगोल तक विस्तार दिया जाए, तो वह खगोल को वृत्तीय रूप से जहां-जहां भी स्पर्श करेगा, उस काल्पनिक वृत्त को क्रांति वृत्त नाम दिया गया है। इसे साधारण रूप से इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के कारण सूर्य जिस मार्ग से पूर्व से पश्चिम की ओर चलता दिखाई देता है, उस मार्ग को क्रांति वृत्त कहते हैं। सूर्य इस पूरे क्रांति वृत्त का चक्कर एक वर्ष में पूर्ण कर लेता है। क्रांति वृत्त पर पृथ्वी का अक्ष लंबवत नहीं है, बल्कि कुछ झुका हुआ है, जिसके कारण अक्ष और क्रांति वृत्त के समतल में लगभग 66½ अंश का अंतर है। क्रांति वृत्त को राशि वलय भी कहते हैं। क्रांति वृत्त के दोनों ओर उत्तर एवं दक्षिण में 9 डिग्री अंश की पट्टी को राशि चक्र या भूचक्र कहते हैं। क्रांतिवृत्त की इसी पट्टी में विशेष तारा समूह स्थित हैं। क्रांति वृत्त की 360 डिग्री अंशों की सीमा को 12 भागों में विभाजित किया गया, प्रत्येक भाग का मान 30 अंश होता है। 30 अंश के इस विशेष भाग को राशि कहा गया और इसमें पड़ने वाले विशेष तारा समूह के विशेष आकार के आधार पर मेष से मीन राशियों तक का नामकरण किया गया। इन्हीं राशियों का और अंशात्मक सूक्ष्म विभाजन नक्षत्रों में किया गया तथा नक्षत्रों का आगे विभाजन उनके पादों या चरणों में किया गया। प्रत्येक नक्षत्र की अंशात्मक सीमा 13 अंश 20 कला निर्धारित कर इसके चार चरण माने गए तथा प्रत्येक चरण की सीमा 3 अंश 20 कला रखी गई। 13 अंश 20 कला के प्रति नक्षत्र मान से 360 अंशों में कुल 27 नक्षत्र हुए और प्रत्येक नक्षत्र का अश्विनी से रेवती तक नामकरण किया गया। क्रांति वृत्त के ध्रुवों को कदंब कहते हैं, उत्तरी कदंब एवं दक्षिणी कदंब। जैसा कि सभी जानते हैं कि ध्रुव किसी वृत्त के केंद्र से उसके तल के लंबवत ऊपर व नीचे की ओर जाने वाली रेखा के अंतिम छोर पर स्थित होते हैं। जैसे पृथ्वी की विषुवत रेखा, जो वृत्तीय होती है, से बनने वाले वृत्त के मध्य से जो रेखा लंबवत जाती है, उसके उत्तरी छोर पर भौगोलिक उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी छोर पर भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव होता है। इसी प्रकार खगोल या आकाशीय गोले को विभाजित करने वाले विषुवत वृत्त के केंद्र से जो लंबवत रेखा जाती है, उसके खगोल पर उत्तर दिशा

में अंतिम बिंदु पर खगोलीय उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिण दिशा में अंतिम बिंदु पर खगोलीय दक्षिणी ध्रुव होता है।

क्रांति वृत्त विषुवत वृत्त पर 23 अंश 27 कला का कोण बनाते हुए उसे दो स्थानों पर काटता है, जो एक दूसरे से 180 डिग्री अंश के अंतर पर अर्थात् एक दूसरे के ठीक सामने रहते हैं। ये दो बिंदु क्रांति वृत्त को भी दो भागों में विभाजित करते हैं, जिनमें से एक अर्धक्रांति वृत्त विषुवत वृत्त के सापेक्ष खगोलीय उत्तरी गोलार्ध में रहता है एवं दूसरा अर्धक्रांति वृत्त खगोलीय दक्षिण गोलार्ध में रहता है। इन बिंदुओं में से एक बिंदु वसंत संपात तथा दूसरा बिंदु शरद संपात कहलाता है। वसंत संपात वह बिंदु है जो खगोलीय विषुवत वृत्त, क्रांति वृत्त एवं क्रांति वृत्त में स्थित राशि चक्र की प्रथम राशि मेष का सायन मान युक्त प्रारंभ बिंदु है। सरल शब्दों में कहें तो सायन मेष राशि का प्रारंभ बिंदु है। इसी क्रम में छठी सायन कन्या राशि की सीमा शरद संपात बिंदु पर समाप्त होती है। इस प्रकार शून्य अंश से 180 अंश की सीमा में स्थित छह सायन राशियां खगोलीय उत्तरी गोलार्ध में स्थित होती हैं। शरद संपात से वसंत संपात तक का अर्धक्रांति वृत्त खगोलीय दक्षिण गोलार्ध में स्थित होता है। यही शरद संपात बिंदु सातवीं सायन तुला राशि का प्रारंभ बिंदु है तथा बारहवीं सायन राशि मीन की सीमा खगोलीय दक्षिण गोलार्ध में रहते हुए वसंत संपात बिंदु पर समाप्त हो जाती है।

अतः कहा जाता है कि जब किसी ग्रह का सायन भोगांश शून्य अंश और 180 अंश के मध्य हो तो उसकी क्रांति उत्तर और 180 अंश से 360 अंश के मध्य हो तो उसकी क्रांति दक्षिण होगी। भारतीय ज्योतिष में सूर्य की उत्तर या दक्षिण अधिकतम क्रांति 24 अंश मानी गई है, जबकि आधुनिक मान के अनुसार यह 23 अंश 27 कला है। सूर्य की सूर्य ग्रहण दिवस की सायन भोगांशों के आधार पर निर्धारित उत्तर या दक्षिण क्रांति का उपयोग किसी स्थान के अक्षांश के आधार पर ग्रहण संबंधित गणना करने में किया जाता है। भारतीय सिद्धांत शास्त्र के अनुसार गणना में इसका नियम स्थान के उत्तरी या दक्षिणी गोलार्ध के अनुसार स्थिति के अक्षांश के विपरीत है। भारतीय सिद्धांत के अनुसार किसी स्थान से जिस दिशा में विषुवत रेखा पड़ती है, वही दिशा उस स्थान के अक्षांश की दिशा मानी जाती है। जैसे काशी उत्तरी गोलार्ध में 25 अंश 18 कला अक्षांश पर स्थित है, पर ग्रहण गणनाओं में यह अक्षांश दक्षिण माना जाता है।

पृथ्वी की विषुवत रेखा के समतल और पृथ्वी के अक्ष के बीच 30 अंशों का अंतर होता है। पृथ्वी की विषुवत रेखा, पृथ्वी के परिभ्रमण पथ से 23 अंश 27 कला झुकी हुई है, इसलिए पृथ्वी के अक्ष का उसके परिभ्रमण पथ से झुकाव  $90^\circ - 27^\circ 27' = 66^\circ 33'$  है। अपने परिभ्रमण पथ से 66 अंश 33 कला झुकी हुई स्थिति में पृथ्वी तीन प्रकार की गतियां करती है। (1) वार्षिक गति, जिसके कारण पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न समय पर विभिन्न ऋतु चक्र होते हैं। (2) दैनिक गति या आवर्तन, जिसके कारण अंतरराष्ट्रीय समय के अनुसार अलग-अलग रेखांशों पर अलग-अलग समय पर सूर्योदय व सूर्यास्त होते हैं तथा समान रेखांश पर अलग-अलग अक्षांशों पर एक ही समय पर लग्नाशों का मान अलग अलग होता है, परंतु 24 घंटे में सभी 12 लग्नों का उदय व समाप्ति काल पूर्ण हो जाता है। (3) अक्ष-भ्रमण, वह गति है, जो अत्यंत मंद होती है, परंतु इसके कारण पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव, खगोलीय उत्तरी गोलार्ध में स्थित विभिन्न तारों की सीध में आता रहता है।

### गुरुत्वाकर्षण और ध्रुव

ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी की आवर्तन गति के कारण ही पृथ्वी की वर्तमान आकृति का निर्माण हुआ है अर्थात् वह मध्य में 0 डिग्री अक्षांश विषुवत रेखा पर उभर गई है तथा ध्रुवों पर चपटी हो गई है। पृथ्वी की गति 0 डिग्री अक्षांश पर सर्वाधिक लगभग 1650 किलोमीटर प्रति घंटा रहती है तथा उत्तरी व



दक्षिणी अक्षांशों के मान बढ़ने के साथ-साथ क्रमशः कम होती हुई 90 डिग्री उत्तर अक्षांश अर्थात् उत्तरी ध्रुव एवं 90 डिग्री दक्षिण अक्षांश अर्थात् दक्षिणी ध्रुव पर शून्य हो जा जाती है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जिन दो बिंदुओं पर पृथ्वी की आवर्तन गति शून्य होती है वे बिंदु ही ध्रुव कहलाते हैं। पृथ्वी बीच में उभरी हुई होने के कारण भूमध्य रेखा (शून्य डिग्री अक्षांश) की त्रिज्या सर्वाधिक होती है तथा उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों की त्रिज्याएं अक्षांशों का मान बढ़ने के साथ-साथ उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर सबसे कम हो जाती है। गुरुत्वाकर्षण का मान त्रिज्या के व्युत्क्रमानुपाती होने के कारण कम त्रिज्या वाले अक्षांश के समतल पर स्थित उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पर भूमध्य रेखा की तुलना में गुरुत्वाकर्षण अधिक होता है। गुरुत्वाकर्षण का मान भू-केंद्र से स्थान की दूरी के भी व्युत्क्रमानुपाती होता है। ध्रुवों पर चपटी होने के कारण भू-केंद्र से ध्रुवों की दूरी कम एवं भूमध्य रेखा की दूरी अधिक होती है। इस नियम से भी ध्रुवों पर गुरुत्वाकर्षण का मान अधिक होता है। चंद्रमा का दीर्घ वृत्ताकार मार्ग, सूर्य के उभारों और पृथ्वी के अपने ध्रुवों पर चपटे होने के कारण वहां अधिक गुरुत्वाकर्षण होने से सदैव एक सा नहीं रहता है। अर्थात् चंद्रमा के दीर्घ वृत्ताकार मार्ग के विकृत होने में पृथ्वी के ध्रुवों पर गुरुत्वाकर्षण का मान अधिकतम होने की भी भूमिका है। शनि एवं बृहस्पति जैसे और बड़े ग्रहों द्वारा चंद्रमा जैसे उपग्रह पर आकर्षण के कारण गति परिवर्तन होने से उसकी गणितागत स्थिति और वास्तविक स्थिति में आंशिक अंतर रहता है। गणितागत स्थिति से वास्तविक स्थिति लाने में जो संगणितीय संशोधन किया जाता है, उसे ज्योतिषशास्त्र में कर्ष संस्कार कहा जाता है।

### लग्न और ध्रुव

प्रत्येक स्थान किसी न किसी अक्षांश और रेखांश पर स्थित होता है। किसी स्थान पर किसी समय पर पूर्वी क्षितिज पर जो राशि जितने अंश, कला, विकला के साथ उदय हो रही होती है, वह उस स्थान की उस समय की लग्न कहलाती है। शून्य अक्षांश पर किसी समय जो लग्न अंश रहते हैं, उसी समय पर उत्तरी अक्षांश का मान बढ़ने के साथ-साथ लग्न अंशों का मान भी बढ़ता जाता है। 56 डिग्री उत्तरी अक्षांश पर लगभग 30 डिग्री लग्नांशों का बढ़ते क्रम में अंतर हो जाता है और 90 डिग्री उत्तरी अक्षांश पर उसी समय लगभग 90 डिग्री लग्न अंशों (तीन राशियों) का धनात्मक अंतर हो जाता है। इसी प्रकार उसी समय दक्षिणी गोलार्ध के अक्षांशों के मान बढ़ने से लग्नांश कम होते जाते हैं और 90 डिग्री दक्षिण अक्षांश पर शून्य डिग्री अक्षांश की तुलना में 90 डिग्री कम लग्नांश रहते हैं। अर्थात् तीन राशियों का ऋणात्मक अंतर हो जाता है। अतः एक ही समय में दोनों ध्रुवों पर लगभग छह राशियों (180 डिग्री) का अंतर रहता है।

इसका तात्पर्य यह है कि एक ही रेखांश पर उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध के अलग-अलग स्थानों पर एक ही समय पर जन्म लेने वाले दो व्यक्तियों के ज्योतिष के मान से लग्न चक्र भिन्न-भिन्न बनेंगे। यहां तक कि किसी भी गोलार्ध में एक ही रेखांश पर अलग-अलग अक्षांशों पर एक ही समय में जन्मे व्यक्तियों का लग्न चक्र भी अलग-अलग बनेगा क्योंकि उनके लग्नांशों में अंतर रहेगा।

### चुंबकीय आकर्षण और ध्रुव

पृथ्वी के भौगोलिक उत्तर व दक्षिण ध्रुव के अतिरिक्त पृथ्वी में एक और ध्रुव जोड़ी होती है, जिसे चुंबकीय उत्तर व दक्षिण ध्रुव कहते हैं। यह चुंबकीय ध्रुव भौगोलिक ध्रुवों के ठीक विपरीत होते हैं अर्थात् पृथ्वी का चुंबकीय दक्षिण ध्रुव भौगोलिक उत्तरी गोलार्ध में उत्तरी कनाडा में पड़ता है एवं चुंबकीय उत्तरी ध्रुव भौगोलिक दक्षिणी गोलार्ध में अंटार्कटिका में मौजूद है। यद्यपि इसकी स्थिति भौगोलिक दक्षिण ध्रुव

से अधिक दूर है। जब कोई ग्रह सूर्य से 180 डिग्री के आसपास होता है तब उसकी स्थिति पृथ्वी के निकट होती है, ऐसे ग्रह को वक्री कहा जाता है। यथार्थ में जब उसकी कोणीय गति पृथ्वी की कोणीय गति से कम होती है और वह इस कारण पीछे जाता हुआ प्रतीत होता है। वक्री शनि अन्य वक्री ग्रहों की अपेक्षा पृथ्वी पर विशेषकर ध्रुवीय क्षेत्रों में (जहां गुरुत्वाकर्षण एवं चुंबकीय प्रभाव अधिक रहता है) अधिक प्रभाव डालता है। वैज्ञानिकों की मान्यतानुसार शनि सूर्य से जितनी ऊर्जा प्राप्त करता है, उससे तीन गुनी ऊर्जा वापस करता है। जबकि बृहस्पति सूर्य से प्राप्त ऊर्जा की दोगुनी ऊर्जा वापस करता है। इसके कारण पृथ्वी के आसपास की सौर पवन और ब्रह्मांडीय किरणें प्रभावित होती हैं। भूमध्य रेखा से जैसे-जैसे ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर बढ़ते हैं, पृथ्वी पर आने वाली ब्रह्मांडीय किरणों का घनत्व संभवतः इस क्षेत्र के अधिक गुरुत्वाकर्षण के कारण बढ़ता जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार शनि ग्रह का चुंबकीय क्षेत्र अत्यंत शक्तिशाली है, जो इसकी हाइड्रोजन की परतों की चलने वाली अत्यंत तीव्र गति के कारण उत्पन्न होता है। शनि ग्रह पर चलने वाली हवाओं की गति पृथ्वी के तूफानों की गति से दस गुना अधिक होती है जबकि ज्योतिषशास्त्रीय मान्यता के अनुसार शनि ग्रह लौह का कारक होने के कारण चुंबकीय प्रभाव भी रखता है और विशाल आकार के कारण इसकी चुंबकीय शक्ति तुलनात्मक रूप से अन्य ग्रहों से अधिक है, जिसके कारण पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र प्रभावित होते हैं।

### ध्रुवीय क्षेत्रों में प्रकाश का अपवर्तन एवं ज्योतिष

जब प्रकाश की किरण एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती है तो इस घटना को प्रकाश का अपवर्तन कहते हैं। प्रकाश के अपवर्तन के नियम के अनुसार जब प्रकाश की किरणें विरल माध्यम से सघन माध्यम में प्रवेश करती हैं तो अभिलंब की ओर झुक जाती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमें प्रतिदिन दिखाई देता है। यह सर्वज्ञात है कि पृथ्वी के चारों ओर धरातल से लगभग 1000 किलोमीटर ऊंचाई तक वायुमंडल रहता है। इस वायुमंडल की पांच परतें रहती हैं। वायुमंडल की सबसे निचली परत को क्षोभमंडल कहते हैं। इसमें वायु का घनत्व सर्वाधिक होने से यह सघन है। इसके वातावरण की शून्य अक्षांश पर अधिकतम ऊंचाई 20 किलोमीटर तथा ध्रुवों पर 10 किलोमीटर होती है। वायुमंडल की पांचवी परत बाह्यमंडल कहलाती है तथा इसकी सीमा धरातल से 500 किलोमीटर से 1000 किलोमीटर ऊंचाई के मध्य होती है। इसका घनत्व सबसे कम होता है इसलिए इस मंडल की वायु विरल होती है। इस प्रकार वायुमंडल का घनत्व ऊंचाई बढ़ने के साथ साथ घटता जाता है तथा इसका अपवर्तनांक भी घटता जाता है। बाह्य-मंडल की सीमा के पश्चात निर्वात रहता है इसलिए इसका घनत्व शून्य माना जाता है।

प्रकाश के अपवर्तन के उपरोक्त नियम के कारण ही किसी स्थान से सूर्य क्षितिज से नीचे होने के पश्चात भी सूर्योदय से कुछ समय पूर्व एवं सूर्यास्त के कुछ समय पश्चात भी कुछ समय विम्ब रूप में दिखाई देता रहता है। उस स्थान से सूर्य के क्षितिज से नीचे होने के बाद भी पृथ्वी के पीछे से आने वाली किरणें जो अंतरिक्ष के निर्वात माध्यम से आती हैं और उससे अधिक घनत्व के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं तो सीधे अंतरिक्ष में आगे न जाकर पृथ्वी की ओर मुड़ जाती है और वायुमंडल की धरातल की ओर अधिक सघन परतों की ओर झुकती हुई पृथ्वी तक पहुंच जाती हैं। इसी कारण सूर्य क्षितिज से नीचे रहते हुए भी विम्बरूप में दृष्टि को दृष्टिगोचर होता है। सूर्य के दृश्यमान होने से पहले तथा अदृश्यमान होने के पश्चात भी पृथ्वी पर प्रकाश रहता है, जिसे संधि प्रकाश कहते हैं। संधि प्रकाश ही वह प्रकाश है, जो सूर्य के क्षितिज से नीचे रहने के बाद भी उसका प्रकाश वातावरण के द्वारा परावर्तित होकर पृथ्वी पर आता है। दोनों स्थितियों में यह सूर्य के क्षितिज से अधिकतम 18 डिग्री नीचे रहने तक ही पृथ्वी पर दृश्य होता है। 18 डिग्री से नीचे जाने तक एवं 18 डिग्री नीचे से क्षितिज तक सूर्य के आने का समय सूर्य की क्रांति और पृथ्वी के अक्षांश के मान पर निर्भर करता है।

प्रकाश किरणों के विरल से सघन वातावरण में प्रवेश की इसी घटना को ज्योतिष में किरणों का वक्रीभवन कहा जाता है। सूर्य किरणों के इस वक्रीभवन का प्रभाव अलग-अलग अक्षांशों पर अलग-अलग समय के लिए होता है। यह शून्य अक्षांश पर सबसे कम 2 मिनट 4 सेकंड होता है तथा जैसे-जैसे ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं इसका मान भी क्रमशः बढ़ता जाता है। 60 डिग्री अक्षांश पर इसका मान दुगुना 4 मिनट 8 सेकंड हो जाता है। किरणों के इस वक्रीभवन मान का उपयोग ज्योतिष में किसी अक्षांश पर सूर्योदय व सूर्यास्त का समय ज्ञात करने में होता है। सूर्य ग्रहण गणना में भी इसका उपयोग होता है। चंद्रग्रहण संबंधित गणना में पृथ्वी की छाया (भू-छाया) का शुद्ध मान ज्ञात करने में इसके आधार पर संशोधन किया जाता है, जिसे वक्रीभवन संस्कार कहते हैं। वक्रीभवन के कारण भू-छाया का दृश्यमान वास्तविक मान की अपेक्षा अधिक हो जाता है। गणितीय प्रक्रिया से ज्ञात हुआ है कि भू-छाया का बढ़ा हुआ मान उसके वास्तविक मान का पचासवां भाग होता है।

### ध्रुवीय क्षेत्र में अनुसंधान एवं ज्योतिषशास्त्र

पृथ्वी के अक्ष पर झुकी हुई अवस्था में सूर्य की परिक्रमा करने के समय पृथ्वी के जिस गोलार्ध का झुकाव सूर्य की ओर रहता है उस गोलार्ध में दिन की अवधि, जिसे दिनमान कहते हैं, अक्षांश का मान बढ़ने के साथ साथ बढ़ती जाती है। जैसे शून्य डिग्री अक्षांश पर 12 घंटे, 30 डिग्री अक्षांश पर 14 घंटे, 60 डिग्री अक्षांश पर साढ़े 18 घंटे, 66½ डिग्री अक्षांश (जिसे ध्रुववृत्त कहते हैं) पर 24 घंटे, 70 डिग्री अक्षांश पर लगभग 2¼ माह, 80 डिग्री अक्षांश पर 4½ माह एवं 90 डिग्री अक्षांश पर छह माह दिनमान रहता है। 24 घंटे से अधिक अवधि के दिनमान वाले स्थानों पर ज्योतिषीय आधार पर बनाया गया होरा चक्र लागू नहीं होता है क्योंकि यह चक्र दिन व रात की कुल अवधि 24 घंटे मानकर बनाया गया है। जबकि ध्रुवीय क्षेत्रों में छह-छह माह के दिन व रात होने से एक दिन-रात की अवधि एक वर्ष हो जाती है। इसी कारण जब दक्षिणी ध्रुव एवं उत्तरी ध्रुव पर छह माह तक सूर्य निरंतर दिन जैसी स्थिति बनाए रखता है तब वहां विभिन्न देश अपने वैज्ञानिकों को पर्यावरण, मौसम विज्ञान, समुद्र विज्ञान आदि से संबंधित प्रयोग करने अपनी-अपनी स्थापित प्रयोगशालाओं में भेजते हैं। हमारे देश का भी अनुसंधान केंद्र दक्षिण ध्रुव क्षेत्र में स्थापित है एवं कई वर्षों से निरंतर कार्य कर रहा है। हमारे श्रेष्ठ वैज्ञानिकों के कठिन परिश्रम एवं लगन का ही सफल है कि आज भारत मौसम विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी है तथा तूफान, चक्रवात, वर्षा, तापमान आदि का पूर्वानुमान कर आपदा प्रबंधन की तैयारियों में भी परोक्ष रूप से इसका सहयोग प्राप्त होता है। दक्षिणी ध्रुव की एक अतिरिक्त विशेषता भी है कि पृथ्वी की अक्षभ्रमण गति के कारण उसके अक्ष का उत्तरी भाग लट्टू की तरह घूमता हुआ एक वृत्त बनाता है। इस कारण पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव खगोल के उत्तरी गोलार्ध के किसी तारों की सीध में आता रहता है, जिससे उनके बारे में सिद्धांत ज्योतिष संबंधित गणनाएं की जाती हैं। पृथ्वी के अक्ष का दक्षिणी भाग जहां दक्षिणी ध्रुव स्थित है, वह लट्टू की कील की भांति स्थिर रहता है और वृत्त नहीं बनाता है। इस प्रकार पृथ्वी का दक्षिण ध्रुव पृथ्वी की आवर्तन गति एवं अक्षभ्रमण गति दोनों के मान से स्थिर रहने से उत्तर ध्रुव की तुलना में वहां भूगर्भीय स्थिरता की संभावना भी अधिक रहती है।

ज्योतिषशास्त्र में बुध ग्रह की दिशा उत्तर व मंगल ग्रह की दिशा दक्षिण मानी गई है। ज्योतिषीय नियमानुसार मंगल की दृष्टि में बुध ग्रह उसके स्वभाव के विपरीत है अर्थात् नैसर्गिक शत्रु ग्रह है। दोनों के अपने-अपने गोलार्ध में कोई हानि नहीं पहुंचाएंगे। संहिता शास्त्र के अंतर्गत मेदिनीय ज्योतिष अर्थात् पृथ्वी संबंधित ज्योतिष में किसी भूखंड, ग्राम, नगर, जिला, प्रांत या देश आदि के मानचित्र पर कूर्मचक्र स्थापित कर उसके आधार पर उस स्थान या क्षेत्र विशेष के बारे में नक्षत्रीय एवं उनके अंतर्गत ग्रहीय स्थिति के आधार पर मौसम व भूगर्भीय स्थिति का अनुमान लगाया जाता है। इसी आधार पर ध्रुव क्षेत्रीय

भूखंड के मानचित्र पर उक्त चक्र विधिवत स्थापित कर ध्रुवीय प्रदेशों हेतु भी ज्योतिषीय अनुमान विषयक अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

## संदर्भ

- ज्योतिषीय गणित एवं खगोलशास्त्र, श्री विमल प्रसाद जैन, अल्फा पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण 2007 पृष्ठ 56-66
- महाराष्ट्रीय पंचांग ईसवी सन 2020 से 2029 ज्योतिष रत्न विद्या राजन देकर जातक बोध, नागपुर 5-41- 42
- केतकी ग्रह गणितम पंडित सत्यदेव शर्मा जगदीश संस्कृत पुस्तकालय जयपुर संस्करण 2007 पृष्ठ 152
- ब्रह्मांड और नंदलाल दशोरा, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार 1994 पृष्ठ 67
- मेदिनीय ज्योतिष अखिल भारतीय संस्था संघ, जगदंबा प्रसाद गौड़, जून 2017 पृष्ठ 44
- ज्योतिर्गणित कौमुदी श्री रजनी कांत शास्त्री, गंगा विष्णु श्री कृष्ण दास प्रकाशन, कल्याण, बंबई 1988 पृष्ठ 154
- ब्रह्मांड और ज्योतिष रहस्य श्री नंदलाल दशोरा रणधीर प्रकाशन हरिद्वार 1994 पृष्ठ 65-67

## संस्मरण

### 14 . अंटार्कटिक स्टेशन दक्षिण गंगोत्री के वे अविस्मरणीय पल

दिनेश डिमरी  
सेवानिवृत्त सेना अधिकारी  
मेरठ, उत्तरप्रदेश

मैं अपने जीवन के उस सुखद चुनौतीपूर्ण कालखंड को कभी बिसरा नहीं सकता, जो मैंने चौथे भारतीय अंटार्कटिक वैज्ञानिक अभियान के दौरान अनुभव किए थे। वे मेरे जीवन की इतनी सुंदरतम स्मृतियां हैं जिनको जब कभी भी मैं सभी के साथ साझा करता हूं तो बरबस ही वे लम्हे वापस जीवंत होने लगते हैं और सुनाई पड़ने लगती है कानों में आर्मी बैंड की वह सुमधुर ध्वनि, जब दिसंबर 1984 के अंतिम सप्ताह में चौथे भारतीय अंटार्कटिक अभियान दल को जहाज पर बिठाकर गोवा के मुरमुगांव बंदरगाह से परंपरागत ढंग से रवाना किया जा रहा था। मैं भी उस उत्साही दल का एक सदस्य था। हमारे अंदर के उत्साह को मानो आर्मी का वह बैंड संगीत की भाषा में व्यक्त कर रहा था। हम करीब सात दिनों में मारीशस पहुंचे, फिर जब हमारे जहाज ने भूमध्यरेखा पार की तो एक जश्न मनाया गया। इसमें समुद्र के राजा वरुण से आशीर्वाद लिया गया और हर एक सदस्य को एक प्रमाणपत्र प्रदान किया गया जो कि इस बात का प्रमाण होता है कि सदस्य ने भूमध्यरेखा पार की है। मारीशस में कुछ दिन बिताने के बाद हमारा जहाज आगे की यात्रा पर निकल पड़ा।

जहाज चलता जा रहा था और हम समुद्र और महासागर की दुनिया में आ गए थे। चारों ओर सिर्फ और सिर्फ नीलापन नीचे नीला पानी और ऊपर नीला अनंत आकाश। हमारी आंखें इस व्यापक नीलेपन में तरह-तरह के समुद्र भी देख रही थीं, प्रकृति की विशाल जलराशि अपने विभिन्न रूपों में तरह तरह के जैसे गहरे नीले, कांचाभ, भयंकर लहरों वाले समुद्रों से मिल रही थी। इन विविध समुद्री नजारों को देखते हुए कुछ समय तक यात्रा शांतिपूर्ण ढंग से चलती रही, लेकिन जैसे ही जहाज 40 डिग्री दक्षिण पर पहुंचा, अंदर और बाहर दोनों ओर का पूरा वातावरण अचानक बदल गया। जहाज के बाहर की तरफ खुलने वाले सभी दरवाजे खिड़कियां वगैरह कसकर बंद कर दिए गए। बाहर डैक पर जो कंटेनर वगैरह जैसा सामान पड़ा था उसे अच्छी तरह से सुरक्षित करके रखा गया। हमारे दल के प्रत्येक सदस्य को सख्त हिदायत दी गई कि हममें से कोई भी किसी भी सूरत में बाहर नहीं जाएगा। जहाज का वो भयंकर तरीके से हिलना-डुलना आज भी एक सिहरन सी पैदा कर देता है, सच, हमारा जहाज माचिस की डिबिया की तरह हिचकोले खा रहा था। समुद्र की विशाल लहरें जहाज के ऊपर से गुजर रही थीं और पूरा मौसम विकराल हो गया था। जहाज बहुत बुरी तरह से ऊपर नीचे हो रहा था, क्योंकि समुद्र

में विक्षोभ बढ़ गया था, इससे लहरें खूब-खूब ऊपर उठतीं और नीचे गिरतीं। हमारे दल के अधिकांश सदस्यों को सी-सिकनेस यानी समुद्री गतिविधियों के कारण बीमार होने जैसी परिस्थिति आ गई थी। खैर सभी ने एकता बनाए रखते हुए बहुत हिम्मत से भी काम लिया और कुछ दिनों बाद मौसम ठीक हुआ तो हमें राहत मिली।

जहाज अपनी गति से आगे बढ़ता जा रहा था और हम भी अपने गंतव्य स्थल अंटार्कटिका की ओर बढ़ते जा रहे थे। अब तक की समुद्री यात्रा के अनुभव हमारे अंदर साहस का पर्वत खड़ा कर चुके थे, किसी भी तरह की बैचेनी या भयावहता अब उतना मायने नहीं रख पा रही थी, बल्कि अब प्रकृति के बेहद अद्भुत नजारे भी दिखने शुरू हो गए थे। समुद्र पर तैरते हुए छोटे बड़े हिमखंड थोड़ी-थोड़ी दूरी पर दिखने शुरू हो गए थे। वे जितने समुद्र में बाहर दिखते थे उससे कहीं ज्यादा जल में डूबे हुए थे। कभी सोचता हूं तो लगता है कि वे हिमशिलाखंड कितने विशाल और मजबूत थे कि अगर जहाज किसी आइसबर्ग से टकरा जाए तो टाइटेनिक जैसा हादसा हो सकता था। जी हां हमने इन हिमशिलाखंडों को अपनी आंखों से देखकर जैसे टाइटेनिक की कल्पना को अनुभव सा कर लिया था। हम अंटार्कटिका के निकट पहुंचते जा रहे थे क्योंकि अब समुद्र की सतह पर तैरते हुई बर्फ की चादर दिखनी शुरू हो गई जो धीरे-धीरे आगे बढ़ने पर और मोटी और बड़ी होने लगी थी। सच में अब तो समुद्र करीब-करीब पूरा जमा हुआ दिखने लगा था। हमारा जहाज इस बर्फ की चादर को अपनी पूरी ताकत से टक्कर मारता हुआ उसे तोड़ता हुआ आगे बढ़ता रहा। अब चारों ओर का रंग नीलेपन से बदलता हुआ धवल श्वेत रंग में बदलना भी शुरू होने लगा था। बर्फ की चादरों से ढके समुद्र पर कई बार तो जहाज को रास्ता ही नहीं मिलता था। तब हमारी वायुसेना का चेतक हेलीकॉप्टर जहाज के कप्तान को ऊपर से रास्ता दिखाता था।

अब हमें बर्फ से बने हिममग्न तट दिखने लगे थे और यही हमारी मंजिल थी। ऐसा लगता था मानो अंटार्कटिका महाद्वीप के चारों ओर बर्फ की बनी एक बाउंड्री वाल है। बेहद अद्भुत नजारा था वह, ऐसे नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य को मैंने पहली बार देखा था। प्रकृति कभी इतनी धवल, इतनी खूबसूरत हो सकती है, कभी कोई अंटार्कटिका को देखे बिना सोच ही नहीं सकता। अंततः हम अंटार्कटिका पहुंच गए थे। हमें लेने के लिए दक्षिण गंगोत्री से गाड़ियां आ चुकी थीं और हमारे जहाज ने वहीं हिमचादर के किनारे अपना लंगर डाल दिया था। सामान उतारा जा रहा था और इस बीच हमारा स्वागत करने के लिए किनारे पर पैंग्विन भी खड़े थे, जो बड़ी उत्सुकता से हमें देख रहे थे। अगले तीन-चार दिनों में हमारा कंस्ट्रक्शन मैटेरियल और हम सभी सदस्य दक्षिण गंगोत्री पहुंच गए।

मैं प्रोजेक्ट मैनेजर था, इसलिए मैंने अपने दल के लिए वहां पूरा प्रबंधन किया और शीघ्र ही हमने अपना काम शुरू कर दिया। कितनी ही बार कई विषम परिस्थितियां आईं, तूफान, झंझावात, बेहद ठंड जैसे प्राकृतिक संकटों से भी हमें जूझना पड़ा, लेकिन सारा काम एक तय सीमा में करना था, इसलिए हम सभी डटकर लगे रहे और आखिर में हमने अपना पूरा काम समय सीमा में संपन्न कर लिया। बीच में जब भी थोड़ा मौसम ठीक होता तो काम के साथ-साथ जब भी समय मिलता हम अंटार्कटिका के मूल निवासी प्यारे पैंग्विनों से मिलने चले जाते थे। वे सचमुच बेहद मित्रवत व्यवहार करते हैं, हांलाकि बहुत आसानी से हाथ नहीं आते, पर वे हमसे डरते भी नहीं हैं।

मैं उस एक पैंग्विन को कभी नहीं भूल पाया, जो उन दिनों मेरा अंटार्कटिक मित्र बना था। एक दिन की बात थी, खूब जोर का तूफान आया हुआ था, जो लगातार तीन दिनों तक चला था। हम सभी अपने केबिनों में बंद थे, कोई बाहर नहीं निकल सकता था। जब तूफान थमा तो मैं बाहर निकला मुझे बर्फ में पड़ा कुछ धंसा हुआ सा नजर आया, नजदीक जाने पर मैंने देखा कि वह एक पैंग्विन है, जो थोड़ा घायल सा था। मैंने उसे उठाया और अपने केबिन में ले आया। यहां सुखद गर्मी थी वह कमरे में फुदकने फुदकने लगा। मेरी उससे दोस्ती हो गई। अब वह मेरे केबिन में बेरोकटोक आने-जाने लगा था और जब मैं काम से लौटता तो खुद आकर मेरी गोद में बैठ जाता। तीन-चार दिनों में वह हम सभी से काफी हिल मिल गया। हमारी पूरी टीम ने उसके साथ फोटो खिंचवाया। सच कहूं तो एक भावनात्मक संबंध

मैंने उसके साथ अनुभव किया, लेकिन फिर मुझे लगा कि उसे अपने साथियों के साथ रहना चाहिए। मैंने अपने रसोइए को काम पर जाने से पहले कहा कि वह पैंग्विन को बाहर दूर छोड़ कर आ जाए। लेकिन जब मैं काम से लौटा तो वह पैंग्विन मुझे मेरे केबिन में ही मिला। मैंने रसोइए से पूछा तो उसने बताया कि यह जाने के लिए राजी ही नहीं है। मैंने सोचा कि मैं खुद उसे छोड़ कर आता हूँ। मैंने उसे उठाया और कुछ दूर छोड़ कर आया तो देखा कि वह मेरे पीछे-पीछे आ रहा है। मैंने उसे उठाया और प्यार किया और कहा दोस्त अब तुम्हें अपने लोगों के बीच में जाना चाहिए। शायद वह मेरी बात समझ गया था और धीरे-धीरे वह मुझसे दूर होता गया। पर मुझे आज भी उसकी बीच-बीच में पीछे मुड़कर मुझे देखने की वह आस कहीं सिहरन सी पैदा कर देती है, मैं जानता हूँ, वह सोच रहा था शायद मैं उसे वापस बुला लूंगा। पर मैं ऐसा नहीं कर सकता था और फिर वह हमेशा के लिए चला गया।

हमें भी अंटार्कटिका में दो महीने होने जा रहे थे, इन दो महीनों में ऐसा लगा मानो किसी दूसरे ग्रह पर पहुंच गए थे। पूरे समय चारों तरफ बर्फ की सफेद चादरें लहराती रहती थीं और ऊपर से तरह-तरह के मौसमी मिजाज़। कभी एकदम साफ आसमान और पूरा मौसम साफ, तो कभी सफेदी में नहाए वातावरण का नजारा ऐसा लगता कि चारों तरफ वातावरण में रुई ही रुई भरी हुई है। रात को देखे तो महीनों गुजर गए थे, क्योंकि रात हुई ही नहीं, क्योंकि सूरज कभी क्षितिज के नीचे गया ही नहीं। दिन हो या रात 9:00 बजे के करीब मृगमरीचिका ने हमें भी कई बार भ्रम में डाला, हमारा जहाज करीब 40 किलोमीटर दूर खड़ा था, लेकिन ऐसा लगता जैसे बिल्कुल पास खड़ा है। एक पंक्ति में अनुशासित चलते पैंग्विनों को निहारते रहना बहुत अच्छा लगता था। अंटार्कटिका का अति स्वच्छ वातावरण किसी भी तरह के प्रदूषण से बिल्कुल मुक्त था। हम जहां ठहरे हुए थे, वहां से करीब 300 किलोमीटर दूर स्थित वालथाट पर्वतश्रेणी साफ-साफ दिखती थी।

एक और घटना जो मेरी अनमोल अंटार्कटिक स्मृतियों में से एक है, उसका जिक्र किए बिना भी मैं नहीं रह सकता। वास्तव में हम लोग अंटार्कटिका में चौथे अभियान के दौरान एक हैंगर का निर्माण करने के लिए गए थे। हुआ यह था कि पिछले तीन अभियानों में भारतीय सेना के इंजीनियरों ने भारतीय नौसेना और भारतीय वायुसेना की सहायता से रिकार्ड समय में समस्त चुनौतियों से जूझते हुए स्थायी स्टेशन दक्षिण गंगोत्री का निर्माण किया था। इस पूरे निर्माण कार्य के दौरान कई गाड़ियों और मशीनरी का उपयोग किया गया था। लेकिन समयाभाव के कारण इस पूरे सामान को सुरक्षित रखने के लिए कोई कक्षनुमा निर्माण नहीं किया जा सका था। लेकिन वो बहुत आवश्यक था, क्योंकि शीतकाल के दौरान इन मशीनों और गाड़ियों का रखरखाव किया जाना बहुत जरूरी था। इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन भारत सरकार ने निर्णय लिया कि चौथे अभियान के दौरान एक हैंगर का निर्माण किया जाए, जिसमें शीतकाल में गाड़ियों और मशीनरी को उपयुक्त पार्किंग और रखरखाव की सुविधा प्राप्त हो सके।

इस कार्य के लिए सेना के इंजीनियरों के साथ जलसेना और वायुसेना के एक दल का गठन किया गया जो कि चौथे भारतीय अंटार्कटिक अभियान दल का हिस्सा बना। मैं भी इसी दल का सदस्य बनकर गया था। स्टील से बने हैंगर का डिजाइन तैयार किया गया जिसका आकार 90 मीटर गुणा 10 मीटर गुणा 5 मीटर रखा गया था। हैंगर के एक सिरे पर प्रवेश द्वार बनाया गया था और दूसरे सिरे पर तीन रूपांतरित कंटेनर रखे गए थे, जिसमें रेडियो रूम बनाना था। खैर मैं ज्यादा तकनीकी विस्तार में न जाते हुए उन चुनौतियों का जिक्र जरूर करना चाहूंगा जिनका सामना हमारे दल को करना पड़ सकता था। उसमें पहली बात तो यह थी कि स्टील शीट का औसत वजन 350 किलोग्राम था और वह आपस में नटबोल्ट की मदद से जोड़ी जानी थी। अंटार्कटिका की तेज हवाओं और ठंड में स्टील शीट को नियंत्रित करते हुए छेदों को उपयुक्त रूप से मिलाते हुए नट बोल्ट लगाना काफी मुश्किल हो सकता था। नींव डालने के लिए बर्फ की 90 सेंटीमीटर की ताजी सतह को हटाना था जिसके नीचे नीली चट्टानी कठोर बर्फ की सतह मिलती थी। पूरी संरचना को एयरटाइट करना था क्योंकि कहीं भी एक छोटा सा छेद रह जाता तो वहां से कुछ ही समय में पूरी संरचना में बर्फ भर सकती थी। लेकिन इस पूरे काम को हमारे

सेनादल ने पूरे उत्साह के साथ रिकॉर्ड समय में पूरा किया। इस निर्माण के लिए कंस्ट्रक्शन मैटेरियल जर्मनी में हेम्बर्ग से खरीदा गया था जो कि फिनलैंड से किराए के जहाज फिनपोलेरिस द्वारा भारत में गोवा दिसंबर 1984 में पहुंचाया गया था। यही वह जहाज था जिससे हम अंटार्कटिका आए थे। दिसंबर 1984 में ही दल के हम पूरे सदस्य गोवा पहुंच गए थे और अभियान के दौरान जरूरत के सभी सामान जैसे राशन, गैस, दवाएं, दक्षिण गंगोत्री के रखरखाव के लिए जरूरी सामान, वैज्ञानिकों के उपकरण आदि को पूरी चेकिंग के साथ गोवा में जहाज में लोड कर दिया गया था। और इस तरह हैंगिंग निर्माण के लिए हम अंटार्कटिका आए थे और हमने यह काम पूरा कर लिया था।

इसी काम के दौरान की वो घटना मैं आपसे साझा करना चाह रहा था कि हैंगर निर्माण के लिए जब हम बर्फ के ऊपर की 90 सेंटीमीटर बर्फ स्नो कटर से हटा रहे थे, तो मैंने देखा कि नींव की हटी बर्फ के साथ कुछ और भी निकला। मैंने खुदाई कर रहे हमारे कर्मचारी को मशीन बंद करने के लिए कहा। उसने मशीन बंद कर दी, फिर मैंने देखा कि बर्फ के साथ बटर, पान पराग और कई सारी वस्तुएं निकली थीं। पता चला कि पिछले अभियानों के दौरान जगह न होने के कारण काफी सामान बाहर ही रह गया था और फिर तूफान आ गया था। इससे सामान बर्फ में दब गया था जो कि अब एक साल बाद बर्फ हटाने के दौरान बाहर आ गया था। मजे की बात यह थी कि कुछ भी खराब नहीं हुआ था। हमने वो सब सामान इस्तेमाल किया।

3 मार्च 1985 को हम लोग वापस आने के लिए तैयार थे। एक वैज्ञानिक का उपकरण किसी जगह फिक्स किया हुआ था, जिसे लाने के लिए नैवी के चेतक हेलीकॉप्टर के पायलट महोदय गए और जब वे लौट कर आए और डैक पर लैंड करने लगे तो अचानक कुछ गड़बड़ी आई और हेलीकॉप्टर घूमने लगा। हम सभी यह देखकर थोड़ा परेशान भी हो गए क्योंकि एक क्षण को ऐसा लगा कि हेलीकॉप्टर समुद्र में गिर जाएगा। लेकिन तभी पायलट की कुशलता और सूझबूझ से उन्होंने पास के ही एक आइसबर्ग पर उसे सही सलामत उतार दिया। उसी समय सुधार दल को लेकर वायुसेना का एक और हेलीकॉप्टर भी वहां पहुंचा और उसने वहीं उस चेतक हेलीकॉप्टर को सुधारा और फिर उसे लेकर पायलट वापस जहाज पर आए।

ऐसे बहुत सारे अंटार्कटिक अनुभवों और घटनाओं से भरी मेरी स्मृतियां हैं, जो बार-बार मुझे अंटार्कटिका पहुंचा देती हैं। जब मैं अंटार्कटिका गया था तब 39 साल का था, आज जब कि मैं 76 साल का हो चुका हूँ, पर आज भी अगर मुझे मौका मिले तो मैं दोबारा अंटार्कटिका जाना चाहूंगा।

## 15 . मेरी स्मृतियों के समुद्री स्थान

(एक संस्मरण)  
सिमी कासिम  
नई दिल्ली



जब गर्मियों में दिल्ली में शुष्क गर्मी की तपन बढ़ने लगती है, सब जगह बस धूल ही धूल हो जाती है, और गलियों में बिखरे गुलमोहर के लाल सुर्ख फूल धधकते अंगारे से लगते हैं, राजस्थान से आ रही रेगिस्तानी हवाओं के साथ मिश्रित हुआ प्रदूषण रात में जब आसमान और सितारों के सौंदर्य को भी नहीं छोड़ता है, तब ऐसी गर्म-शुष्क रातों में, मुझे याद हो आती हैं, समुद्रतटों पर बसी वे सारी खूबसूरत जगहें, धड़कता सा समुद्र और उसके ऊपर फैला विशाल नीला आकाश, जहां मैं कितने ही बरसों तक रही और घूमी भी।

मुझे याद है मैंने जीवन में पहली बार समुद्र को देखा था, जब मैं ट्रेन से दिल्ली से एर्नाकुलम गई थी, तब रास्ते में समुद्र मानो हमारी ट्रेन के साथ चल रहा था। मैं अपनी माँ और बहनों के साथ अपने पिताजी से मिलने जा रही थी। उस समय मेरे पिताजी वहां एक समुद्र वैज्ञानिक के रूप में कार्यरत थे। मुझे याद है यात्रा के दूसरे दिन मैंने अपने कंपार्टमेंट से जब समुद्र को देखा, तो मुझे लगा जैसे किसी धातु की बनी ट्रे में बर्फ के टुकड़े रखकर ठंडे किए जा रहे हैं - मैं, पांच साल की नन्हीं सी बच्ची आश्चर्यचकित हो कौतूहल से चिल्ला पड़ी "क्या वहां बर्फ होगी?"

वर्षों से वहां समुद्र और उसका मेड़ों तक आया पानी जिसे बैकवाटर कहा जाता है, कभी दूर रहे ही नहीं। मेरा स्कूल भी बैकवाटर के पास था। वहां लोग नावों में बैठकर मछली पकड़ने जाते थे और वहीं विलिंगडन द्वीप और फोर्ट कोचीन भी थे, जहां वाहनों और नावों से जाया जाता था। प्रायः मेरे पिताजी हम सभी को लंबी ड्राइव पर उस तरफ ले जाते थे।



मेरे माता-पिता को अक्सर उस यहूदी शहर में ब्रिज पार्टियों के लिए आमंत्रित किया जाता था। 1567 में बने पुराने कोचीन यहूदी उपासना घर तक उसकी संकरी गलियों में हम खूब दौड़ लगाया करते थे और यह वही सबसे पुराना यहूदी उपासना घर था, जिसे राष्ट्रमंडल में उस समय भी जागृत माना जाता था। उसका फर्श 18 वीं शताब्दी के हाथ से पेंट किए गए नीले चीनी टाइल से बना था, जो बेहद अद्वितीय था। हम अपने मित्रों के साथ बैकवॉर्ट्स पर तैरती नावों पर पिकनिक मनाने जाया करते थे, गाने गाते थे और घर के बने सैंडविच खाते थे। हम सभी कभी-कभी 1744 में भारत में डच द्वारा निर्मित बोलगाट्टी पैलेस द्वीप पर लंच करने जाते थे, जहां बड़े लोग हम बच्चों को चुपचाप यहां वहां घूमने के लिए छोड़ देते थे और हम किनारों पर बगीचों में लगे पेड़ों पर चढ़ते थे।

एक समुद्र विज्ञानी पिता के साथ रहते हुए हम जल्द ही समुद्र से जुड़े तथ्यों से परिचित हो गए थे। घर पर अलमारियों के खण्डों में छोटे-छोटे जहाजों, सीपियों, प्रवालों को सजाकर रखा जाता था। दीवारों पर तापमान गेज और समुद्री मार्गों के मानचित्र लगे होते थे। मेरे पिताजी के पुस्तकालय में समुद्र और समुद्री जीवन से संबंधित हर तरह की पुस्तकें एवं शोध पत्र शामिल थे।

मेरे पिताजी उन दिनों एक समुद्रवैज्ञानिक के साथ साथ सेंट्रल मरीन फिशरीज रिसर्च इंस्टीट्यूट (सीएमएफआरआई) के निदेशक थे। वे हमें स्कूल की छुट्टियों के दौरान पश्चिमी तट के अनुसंधान केंद्रों और संस्थानों में भेजते थे। कोचीन में उनको केंद्रीय मत्स्य प्रौद्योगिकी संस्थान (सीआईएफटी) के निदेशक के रूप में अतिरिक्त प्रभार भी मिला था। कुल पांच सदस्यों का हमारा परिवार अपनी स्टैंडर्ड हेराल्ड कार में कई दिनों के लिए सामान साथ में लेकर एर्नाकुलम से तूतिकोरिन, मैंगलोर, मंडपम कैम्प, रामेश्वरम, कन्याकुमारी और भी कई जगहों पर जाता था।

हम तमिलनाडु में तूतिकोरिन में ठहरते थे, वहां मेरे पिताजी अन्य वैज्ञानिकों से मिलते थे, सीपदार कौड़ियों और मोतियों के कल्चर विशेष रूप से 1973 में हुई मोतियों की खोज की सफलता पर वे उनके साथ चर्चा करते थे। हमने मंगलौर में सुंदर विशाल चित्रों वाले शानदार चर्चों को देखा और मंडपम कैम्प प्रयोगशाला में बड़े वैज्ञानिक एकैरियम में अद्भुत प्रकार की मछलियां और अन्य समुद्री जीव भी देखे।

मुझे एक बात बहुत अच्छे से याद है कि जब एक आठ फीट से अधिक आकार के विशाल शाकाहारी समुद्री स्तनपायी डुगॉना को, जो घायल अवस्था में मिला था, उसको उथले जल से निकालकर बचाया था। मुझे याद है डुगॉना का अगला भाग हिप्पोपोटामस जैसा था और शरीर व्हेल जैसा था। विशेषज्ञों का कहना था कि यह समुद्री स्तनपायी साहित्य में चित्रित पौराणिक मत्स्यांगना से बेहद मिलता जुलता है। उसे अंततः एक विशाल टैंक में ले जाया गया था, जहां हमने देखा था कि वह उसमें लगातार तैरता रहा था। इसके बाद हमारी यात्रा जारी रही और हम भारतीय प्रायद्वीप के अंतिम छोर पर बंगाल की खाड़ी, हिंद महासागर और अरब सागर के संगम पर बसे कन्याकुमारी की ओर बढ़े। वहां एक फेरी द्वारा दूसरे पर्यटकों के साथ हम भी एक द्वीप पर स्थित प्रसिद्ध विवेकानंद रॉक मेमोरियल घूमकर आए।

हम सत्तर के दशक के मध्य से लेकर अस्सी के दशक के पूर्वार्ध तक गोवा में डोना पाउला की ला मार्वल कॉलोनी में रहते थे। मेरे पिताजी अब कोचीन से गोवा में पदस्थ हो गए थे और वे डोना पाउला स्थित राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (एनआईओ) के निदेशक बनाए गए थे। हम कोचीन से पणजी तक तटीय सड़क मार्ग से आए थे। गोवा में हैमलेट्स, कस्बों और शहरों से गुजरते हुए सभी के होठों पर नमकीन स्वाद छोड़ती हवाएं हमेशा मेरी स्मृतियों में रहती हैं।

हमारे घर को एक जहाज की तरह डिजाइन किया गया था, जिसमें एक डेक-बालकनी थी। वहां से अनमोल दृश्य निहारने को मिलते थे, पास ही में हरे धान के खेत दिखते थे, जहां महिलाएं काम करती थीं, नारियल के कई पेड़ लगे थे और मांडवी नदी के नीचे की खदानों से लौह अयस्क ले जाते बड़े-बड़े बार्ज लगातार निकलते थे। डोना पाउला जुआरी और मांडवी नदी के मुहाने के बीच स्थित है। हमारे घर

की अधिकांश खिड़कियों से हमें अपनी कॉलोनी और अरब सागर का दृश्य दिखाई देता था, जहां से हम बॉम्बे स्टीमर को आते-जाते देखा करते थे।

मैंने मीरामार बीच के पास स्थित धेम्पे कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस में दाखिला ले लिया था और शाम को किताबें पढ़ती थी, मैं अपने कुत्ते को लेकर सैर पर निकलती थी और गोवा की लाल धरती से लगे पहाड़ी ढलानों पर साइकिल चलाया करती थी।

ये वो दिन थे जब गोवा में टीवी नहीं आया था, इसलिए हम टेबल टेनिस, कैरम और स्क्रैबल जैसे इनडोर गेम खेला करते थे। पैदल सैर के दौरान मैं आंटीतेवर्न के पास से गुज़रती थी, जहां स्थानीय लोग प्लास्टिक की कुर्सियों पर बैठकर नारियल की फेनी पीते थे। और पहाड़ी के नीचे एक छोटा सा सफेद पुता चर्च था, जिसमें एक घंटा लगा हुआ था, जिसको बजाकर प्रार्थना-समय का संकेत दिया जाता था।

उत्तर भारत के एकदम विपरीत गोवा में बारिश के दौरान जीवन ज़रा भी नहीं रुकता था, यहां गोवा में हल्की सी बारिश की बौछार से सामानों को ढंकने के लिए लोग दौड़ने लगते थे। मांडवी नदी पर नावों को बांधते बहुत लोग विभिन्न स्थानों पर आते जाते दिखते रहते थे। वहां तूफान भी आते थे और बारिश के दिनों में तेज हवाएं चलती थीं, लगातार बारिश होती रहती थी और चट्टानों से समुद्र की लहरें टकराती रहती थीं। यह सब कुछ बेहद मनभावन होता था।

पणजी से लगा पास का गांव था, जहां सब प्रायः मछली पकड़ने वाले ही रहते थे। वहां के लड़के शाम को गहरी खाली खदान में फुटबॉल खेला करते थे। मानसून के दौरान यह पूरा खदानी भाग बारिश के पानी से भर जाता था, जिसमें वे लड़के खूब गोते लगाते थे और उसके ही लगभग बाजू में था गोवा का राजभवन जिसके, काबो राज निवास द्वार के बाहर एक पुराना ब्रिटिश कब्रिस्तान था। कब्रिस्तान में घनी घास उगी हुई थी, जिसके बीचों बीच में अनुमानतः 103 कब्रें रहीं होंगी। जहां तक मुझे याद है कि वहां स्थानीय लोग खेती करते थे। रिपोर्टों के अनुसार गोवा में ब्रिटिश सेनाएं सन् 1815 तक 17 साल तक तैनात रहीं। गोवा 450 वर्षों तक पुर्तगालियों का उपनिवेश रहा और सन् 1961 में भारत ने उसे पुर्तगाली शासन से मुक्त कराया।

हमारा घर काबो के पास था, जैसा कि यही उसका लोकप्रिय नाम था। वह एक बेहद रमणीक और सुरम्य 1540 ईस्वी में बनाया गया काबो फोर्ट था, जो समुद्र के बिल्कुल सामने स्थित था। उसके अंदर दो चैपल थे और उससे लगा एक बीच था, जिसके पास एक सुंदर गुफा जैसी भी थी। उसमें घनी घनी घासों और झाड़ियों में कई तरह के जीव जंतु जैसे जहरीले सांप, रंगीन पक्षी, सियार और बड़ी-बड़ी छिपकलियां आदि रहते थे। गोवा में और भी दूसरे किले जैसे मुरमुगांव और अगदा फोर्ट भी थे।

नाव और जहाज मेरी किशोरावस्था का जैसे एक हिस्सा थे और वैज्ञानिक जलपोत आर.वी. गवेषणी पर तो मैंने अपनी कितनी ही छुट्टियां उत्साहपूर्वक व्यतीत की थीं। उसी दौरान वहीं जलपोत पर मेरे पिताजी और अन्य वैज्ञानिकगण भी अपने शोधकार्य किया करते थे। आर. वी. गवेषणी भारत का प्रथम समुद्रवैज्ञानिक शोध जलपोत था, जिसे 31 दिसंबर, 1975 को राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान द्वारा शुरू किया गया था। मेरे पिताजी अरब सागर से बहुधात्विक (मैंगनीज) पिंडों के नमूने इकट्ठा करने वाले पहले भारतीय समुद्र वैज्ञानिक भी थे, जिन्होंने सन् 1980 में गवेषणी जलपोत पर जाकर अरब सागर में 5500 मीटर की गहराई से नमूने एकत्र किए थे।

उसी गवेषणी जलपोत पर 26 जनवरी, 1981 को हुए ध्वजारोहण समारोह का एक अभूतपूर्व चित्र अब दशकों बाद मुझे मेरे पिताजी के भूतपूर्व एनआईओ वैज्ञानिक से मिला। उस श्वेत-श्याम तस्वीर में मेरे पिताजी अपने वैज्ञानिकों और जहाज कर्मियों के बीच में हैं, जबकि इस चित्र के बारे में लिखा है, '... यह

समारोह आरवी गवेषणी के माध्यम से एकत्रित पहले बहुधात्विक पिंडों के निकाले जाने के अवसर का है।'

गोवा की राजधानी पणजी से सात किलोमीटर दूर स्थित डोना पाउला में आसपास की भूमि, पथरों, शिलाखंडों और काजू के वृक्षों पर मानो चारों ओर से घिरे समुद्र तटों से टकराकर आने जाने वाली समुद्री लहरों की संतोषप्रदाय ध्वनि गूंजती रहती थी। वहीं ऐसा लगता था जैसे वह कर्णप्रिय समुद्र ध्वनि वहां के बेहद लोकप्रिय कोंकणी रंगमंच में भी घुलमिल सी जाती थी, जिसमें स्थानीय मछुआरे, ड्राइवर, रसोइये और सफाईकर्मी अंधेरा होने के बाद अपने अपने अभिनय के पात्रों के संवादों को जोर जोर से बोलते थे। वहीं याद आता है अगदा फोर्ट के निकट का वो प्रकाश स्तंभ जो रात भर समुद्र और पहाड़ियों पर अपनी पीली रोशनी बिखेरता रहता था।

मई में पहुंचने वाले मानसून के दौरान पूरा राज्य महीनों तक लगभग स्तब्ध सा हो जाता था। नमी बढ़ जाती थी और शहर के कुछ हिस्सों में पानी भर जाता था। मुझे याद है कि मेनेज़ेस ब्रागांज़ा हॉल के परिसर के अंदर स्थित केंद्रीय पुस्तकालय जाते समय लगभग घुटनों से भी ऊपर तक पानी भरा रहता था। और विभिन्न समुद्र तटों पर चेतावनी वाले साइनबोर्ड लगा दिए जाते थे, जिन पर स्पष्ट लिखा होता था कि 'मानसून के दौरान तैरना यानि आत्महत्या'।

डोना पाउला जेट्टी के ठीक सामने समुद्र के उस पार वास्को और मुरमुगांव बंदरगाह थे। डोना पाउला का नामकरण तत्कालीन पुर्तगाली वायसराय की बेटी डोना पाउला डी मेंडेस के नाम पर पड़ा है। पुराने लोगों का कहना था कि अपने प्रेम प्रसंग के कारण डोना पाउला को वहां स्थित ऊंची चट्टानों से कूदकर आत्महत्या करनी पड़ी थी। उसकी कब्र काबो चैपल में है। मैंने डोना पाउला समुद्र तट पर तैरना सीखा था, यह तट दोनों ओर से चट्टानों से संरक्षित है। गुनगुने नीले आकाश के नीचे नारियल के पेड़ों की छांव में समुद्र की आती जाती लहरों पर घण्टों सीधे चित्त पड़े रहने वाले अतीत को याद करना आज भी बहुत सुखद लगता है।

समुद्र से ढेर सारी पकड़ी गई सार्डिन, मैकेरल, झींगे, झींगा मछली जैसी कई मछलियों को टोकरियों में भरकर पणजी के मच्छी बाजार में सुबह सुबह ले जातीं मछुआरिन भी खूब याद हो आती हैं, जिनकी टोकरियों पर पड़ती धूप से उनमें रखीं मछलियां चमकती रहती थीं। तभी याद हो आता है कालंगूट बीच का वो भांगरा (मैकेरल) जिसे तुरंत ही पकड़कर उसे फूस में लपेटकर और फिर उसे भूनकर खाने दिया जाता था। और गोवा में सामाजिक विशेष उत्सवों पर स्थानीय वाइन को गिलास में परोसने की परम्परागत चली आ रही एक प्रथा भी हुआ करती थी।

दिल्ली में मेरे घर में, मालवान की सीपियां और कोरल की तस्वीरें हैं। मैं अपने पिताजी के साथ गोवा के पास महाराष्ट्र के एक शहर में जीप से गई थी। वहां मेरे पिताजी ने द्वीप के चारों ओर कोरल के वैज्ञानिक अन्वेषण किए थे। हम एक छोटी सी देशी नाव से द्वीप पर पहुंचे थे और मेरे पिताजी और एक अन्य वैज्ञानिक समुद्र में गए थे, उन्होंने जल के नीचे लगभग एक हाथ की लंबाई में स्थित कोरल के अन्वेषण किए थे, हांलाकि बाद में कोरल को उनके मूल निवास स्थान पर वापस भेज दिया था।

समुद्र के प्रति मेरा आकर्षण निरंतर बढ़ता गया और मैंने सन् 1995 में कच्छ, गुजरात का दौरा किया था। थोड़ा सा अपना सामान, नोटबुकें और एनालॉग कैमरा लेकर मैं दिल्ली से रवाना हुई, उन दिनों इंटरनेट और डिजिटल कैमरों का प्रचलन नहीं था। दिल्ली में घर से संपर्क करने का एकमात्र तरीका अनियमित से लैंडलाइन फोन या पोस्ट ही हुआ करते थे।

मैंने अहमदाबाद से एक स्लीपर बस ली थी, जिससे रात भर एक असामान्य सी यात्रा की। वहां रात में भी काफी गर्मी थी और बस की खिड़की से पेड़-पौधों के ऊपरी हिस्से दिखते जा रहे थे। मेरे चारों ओर और बस में सो रहे अजनबी मुसाफिरों के खरटि भी सुनाई दे रहे थे। भुज के रास्ते में कांडला पोर्ट भी

पड़ा। और अंततः मैं भारत के सबसे बड़े जिले भुज, जो 45,691 किलोमीटर से अधिक क्षेत्र को कवर करता है, पहुंच चुकी थी। अब यही मेरा शोधस्थल बन गया था।

राव खेंगरजी प्रथम ने सन् 1548 में भुज को अपनी राजधानी बनाया था और कच्छ में खेंगरजी राजवंश, राजपूतों के जडेजा कबीले और कच्छ महारावों का शासन 1948 तक रहा। जैसे ही मैं उस शहर में पहुंची मुझे वहां के लाल बलुआ पत्थर से बनी महारावों की छत्रियों की आकर्षक स्थापत्यकला के सौंदर्य ने काफी प्रभावित किया। शहर के बाहर महारावों के स्मारक बने थे। उन्हें 1757 के बाद से मिर्जा महारावों के शाही खिताब से भी जाना जाता था, जब महाराव लाखो को मुगल, आलमगीर द्वितीय और हाउस ऑफ तैमूर के माही मरातिब के महत्वपूर्ण प्राचीन प्रतीक द्वारा खिताब दिया गया था।

वहां से मैं मांडवी गई और वहां की आधी अधूरी जेट्टियों और शांत समुद्र तटों को देखा। फिर मैं एक ऑटोरिक्शा से शानदार विजय विलास पैलेस पहुंची। कच्छ के महाराजाओं ने गर्मियों के दिनों में समय गुजारने और वहां ठहरने के लिए विजय विलास पैलेस का निर्माण करवाया था। इसके चारों ओर नारियल के हरे-भरे पेड़ लगे हुए हैं। इसे सन् 1929 में महाराव खेंगरजी तृतीय ने अपने उत्तराधिकारी विजयराजी के लिए समुद्र के पास बनवाया था।

मैंने इसके निजी समुद्र तट और हवा महल का आनंद लिया, साथ ही परिसर के भीतर स्थित दरगाह भी देखी। एक अनुचर ने बताया था, "जब महाराव का दौरा होता था तो वे सबसे पहले अपने पूर्वजों की स्मारक समाधियों पर जाते थे और फिर पीर की दरगाह जाते थे।" कच्छ के शासकों ने पारंपरिक रूप से विभिन्न समुदायों के पवित्र महापुरुषों का हमेशा सम्मान किया।

मैंने इस जिले में शहीद नायकों की पारंपरिक पूजा और पालियास नामक स्मारक पत्थरों को भी देखा। मुस्लिम कब्रों की तरह दिखने वाले इन स्मारकों को कब्रिस्तानों में स्थापित किया गया है, जो पारंपरिक हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रतीक हैं।

मैंने वहां से थोड़ी दूरी पर स्थित मांडवी शहर का भी दौरा किया, जिसका 400 साल पुराना जहाज निर्माण का इतिहास है। यह कभी एक समृद्ध बंदरगाह था, नाव निर्माण यहां बेहद लोकप्रिय है, सालिया गांव के पास रेत पर खड़े लकड़ी के जहाजों को देखना बड़ा मनोहारी लगता है। हालांकि नाव निर्माताओं की औपचारिक शिक्षा बहुत कम होती है, लेकिन उनके हाथ से बने जहाज दुनिया भर में चलाए जाते हैं। वास्तव में, कच्छ हमेशा समुद्र की निकटता के कारण विभिन्न संस्कृतियों और प्रजातियों के संपर्क में रहा और एक प्रमुख व्यापार केंद्र भी था।

रण की पहली झलक मैंने तब देखी थी जब मैं धोलावीरा जाने के लिए निकली थी। धोलावीरा 5000 साल से अधिक पुराने और सिंधु घाटी सभ्यता से संबंधित पांचवें सबसे बड़े हड़प्पा स्थलों में से एक है। रण दूर से बर्फ की तरह चमकता है और पास आने पर पता चलता है कि यह वास्तव में अपशिष्ट नमक हैं। जल्द ही हम रण के दोनों तरफ से काटकर बनाए रास्ते पर चल रहे थे। यह लगभग 7,500 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में है और दुनिया के सबसे बड़े नमक रेगिस्तानों में से एक है। ऐसा माना जाता है कि यह कभी अरब सागर का हिस्सा था।

रण में स्थित, धोलावीरा के प्राचीन खंडहरों की खोज 1960 के दशक में जे.पी. जोशी ने की थी। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा कई खुदाईयां यहां की गई हैं। यह विशाल संरचनाओं, जटिल वास्तुकला और एक उच्च विकसित जल प्रबंधन प्रणाली वाला समृद्ध योजनाबद्ध तंत्र है।

मुझे 13 वीं शताब्दी के सिंधु शासक राव लाखा के नाम पर निर्मित लखपत से रण के बारे में एक और महत्वपूर्ण जानकारी मिली। रण की दीवारों का पुनर्निर्माण 1801 में फतेह मोहम्मद द्वारा किया गया था। कोरी क्रीक के पास एक सीमावर्ती शहर है, जो लखपत किले की ठोस दीवारों से घिरा हुआ है। इस लगभग भुतहा से शहर को भी मैंने काफी करीब से देखा। किसी समय यह आर्थिक रूप से समृद्ध बंदरगाह शहर हुआ करता था, लेकिन अब यहां की निहायत ही छोटी सी आबादी में रहने वाले लोगों ने

बताया कि इसके निवासियों को अमीर लखपति के रूप में जाना जाता था। 1819 के भूकंप के बाद वे इसे छोड़कर चले गए थे और सिंधु नदी का बदलता स्वरूप भी इसकी अवनति का एक कारण बना, क्योंकि इस बदलाव से यहां तक पहुंचना मुश्किल हो गया था। लखपत बर्बाद हो चुका था, भूतों का शहर बन गया था। हालांकि, व्यापारियों और सेनाओं ने पुराने समय से ही रण के पैदल और गाड़ी मार्गों का उपयोग किया है।

1855 में निर्मित सूफी पीर गौस मोहम्मद का विशाल काला मकबरा, जो हिंदू और मुसलमानों, दोनों के लिए पूज्य रहा है, वहां से रण तक पहुंचना आसान है। इसके पास ही एक गुरुद्वारा है, माना जाता है कि गुरु नानक मक्का जाते समय इसी जगह पर कुछ समय के लिए रुके थे। मैंने अनुभव किया कि रण के उजाड़ टूटे हुए खंडहरों में निपट सत्राटा पसरा हुआ है। जानवरों की खोपड़ियां और उसकी दलदली सफेदी में डूबी नावें क्षितिज में कहीं गायब सी हो गईं दिखती थीं।

मुंद्रा बंदरगाह शहर में मैंने पढ़ियार की क्षतिग्रस्त हवेली देखी, जिसकी पूरी दीवारों पर भारतीय कलाकारों द्वारा गढ़े गए कच्ची कामगारी कलाम शैली के चित्र उकेरे हुए थे। इस चित्रकला को विशेष रूप से राव लखपतजी (1741-1760) के शासनकाल के दौरान प्रोत्साहित किया गया था और ऐसा माना जाता है कि अंग्रेजों ने भी इसमें सहायता की थी।

1920 के दशक के बाद से प्रयुक्त होने वाले वहां के रहन-सहन, विशिष्ट वेशभूषा और उनमें उपयोग किए जाने वाले रंगों के बारे में यहां की दीवार चित्रकलाओं से स्पष्ट जानकारी मिलती है। हवेली के उपेक्षित कमरों और शीर्ष बरामदों के बावजूद भी वह मेरे लिए किसी आर्ट गैलरी से कम नहीं थी। हवेली में पीले, लाल, नीले और हरे पक्के रंगों से बनाए ये चित्र उस समय के ग्रामीण दृश्यों और सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रत्यक्ष साक्षी कहे जा सकते हैं। एक गांव के हौद में स्नान का विस्तृत दृश्य, पूरी टीम के साथ क्रिकेट का खेल, स्कोरबोर्ड, ब्रिटिश और भारतीयों का पदानुक्रमित क्रम में रखा जाना, सब कुछ उसमें समाहित है और यहां तक कि 1930 के दौर के गोलमेज सम्मेलन का एक स्थानीय संस्करण भी वहां देखा जा सकता है।

मैंने अंजार शहर में इस शैली के शायद सबसे प्रसिद्ध उदाहरणों में से एक मैकमुर्डो बंगले को भी देखा। इसमें सरकारी कार्यालय थे, जिसके कुछ कमरों की दीवारों पर रामायण और कृष्ण के जीवन के दृश्यों के चित्र बने हुए थे। यह निवास बंगला कच्छ के पहले ब्रिटिश राजनीतिक निवासी कैप्टन जेम्स मैकमुर्डो ने 1818 में बनवाया था, जो सदियों पुरानी भारतीय सामंजस्यपूर्ण संस्कृति का एक आदर्श उदाहरण है।

कला और सांस्कृतिक इतिहासकार ज्योतिंद्र जैन कहते हैं कि बड़े पैमाने पर मुस्लिम कामगारों ने हिंदू शिष्टाचारों, रीति-रिवाजों और पौराणिक कथाओं में वर्णित उनके कार्यों को प्रवीणता से चित्रित किया। अंजार में मैकमुर्डो के बंगले के दीवार-चित्र इस कारण से अद्वितीय हो जाते हैं कि वहां संरक्षक ब्रिटिश थे, चित्र के विषय हिंदू थे और शिल्पकार इस्लामी थे। यही हमारे देश भारत की अद्भुत भारतीयता है।

हिन्दी अनुवाद- शुभ्रता मिश्रा

प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली

abandoned	परित्यक्त
abandoned channel	परित्यक्त प्रणाल
accelerated mass spectrometry	त्वरित द्रव्यमान स्पेक्ट्रममिति
accumulation	संचयन
active deformation	सक्रिय विरूपण
active orogeny	सक्रिय पर्वतन
acute respiratory infections (ari)	तीव्र श्वसन संक्रमण(एआरआई)
aerosol	एरोसोल
aerosol optical depth	एरोसोल ऑप्टिकल गहराई
age	काल
aggradation	तलोच्चन
agulhas retroflection front	अगुलहास प्रत्यावर्तन फ्रंट
annual mixing	वार्षिक मिश्रण
antarctic circle	अंटार्कटिक वृत्त
antarctic continent	अंटार्कटिका महाद्वीप
arctic ocean	आर्कटिक महासागर
arid	शुष्क
aridity	शुष्कता

associated root mean square error	संबद्धवर्गमाध्यमूल अनिश्चितता
basin	द्रोणी
biogenic emission	जैव जनित उत्सर्जन
biogeochemical cycle	जैव भू-रासायनिक चक्र
biomass burning	जैवभार ज्वलन
bone	हड्डी / अस्थि
bottom-set bed	तली संस्तर
boulders	गोलाश्म उपल
boundary layer	सीमा परत
brackish water	खारे पानी / खारा जल
calibrated	अंशशोधित
canyon	दरार
carbon dynamics	कार्बन गत्यात्मकता
carnivore	मांसाहारी
catchment areas	जलग्रहण क्षेत्रों
channel	जलमार्ग/प्रणाल
chemistry	रसायन
chronology	कालानुक्रमण/ कालानुक्रम
clay	मृत्तिका
clay lens	मृत्तिका लेन्स
climatic	जलवायवी
cobbles	गोलाश्मिकाएं/उपलिकाएं
concentration	सांद्रता
continental	महाद्वीपीय
convection	संवहन
core	क्रोड/कोर
cosmic-ray exposure age	अंतरिक्ष किरण उद्भासन/उच्छादन आयु

cosmogenic	अंतरिक्षजनित
cross profile	अनुदैर्घ्य परिच्छेदिका
cross-bedded sand	अनुदैर्घ्य-संस्तरित रेत / बालू
cryosphere	हिमांक-मंडल
data	आँकड़े
debris flow	मलवा प्रवाह
debris flow fan	मलवा प्रवाही पंखा
deltaic lobes	डेल्टीय पालियाँ
depositional environment	निक्षेपणीय पर्यावरण
dextral	दक्षिणावर्त
dip-slip	नति-सर्पण
distribution	वितरण
domain	डोमेन
double moment scheme	डबल मोमेंट स्कीम
downcutting	नीचे की तरफ कटान
drainage system	अपवाह तंत्र
dry ravines	सूखे बीहड़
dry steppe	घास के सूखे मैदान
duplex	द्विस्तरीय
duration	अवधि
emission database for global atmospheric research (edgar)	एमिशन डेटाबेस फॉर ग्लोबल एटमोस्फियरिक रिसर्च(एडगार)
emission inventory	उत्सर्जनइन्वेंट्री
environmental history	पर्यावरणीय इतिहास
equatorial ocean	भूमध्य-रेखीय महासागर
erosion	अपरदन
export production	निर्यात उत्पादन
fan	पंखा



fault	भ्रंश
fault facet	भ्रंश फलक
field survey	क्षेत्रीय सर्वेक्षण
fine-medium grained sand	सूक्ष्म से मध्यम कणिक रेत / बालू
flattish clay stones (clay balls)	चपटी मृत्तिका तश्तरियां
flood deposits	बाढ़ निक्षेप
fluvial	नदीय
food web	खाद्य श्रृंखला
fore-set bed	अग्रनत संस्तर
former spillway	पूर्ववर्ती अधिप्लव मार्ग
fresh water	मीठा पानी / अलवणीय जल
front and convergence zone	अग्रान्श और अभिसरण क्षेत्र
frost action	तुषार क्रिया
geodynamics	गतिकी
geographical north pole	भौगोलिक उत्तरी ध्रुव
geographical south pole	भौगोलिक दक्षिणी ध्रुव
geomorphological	भू-आकृतिकीय
geomorphological mapping	भू-आकृति क मानचित्रण
glacial	हिमनदीय
glacial moraine	हिमनदीय हिमोढ
glaciers	हिमनद
global climate change	वैश्विक जलवायु परिवर्तन
global warming	वैश्विक तापन
goddard chemistry aerosol radiation and transport (gocart)	गोडार्ड केमिस्ट्री एरोसोल रेडिएशन एंड ट्रांसपोर्ट(गोकार्ट)
gorge	गहरी खाई(महाखड्ड)
granitic	ग्रेनाइटिक
grid	ग्रिड

hemisphere	गोलार्ध
high watercolumn stability	उच्च जल स्तंभ स्थिरता
higher trophic level	उच्चर पोषक स्तर
high-nutrient low-chlorophyll	उच्च पोषक तत्व निम्न-क्लोरोफिल
horizontal resolution	क्षैतिज-विभेदन
humerus	प्रगंडिका
hydrodynamics	जल-गत्यात्मकता
hygroscopicity	हाइग्रोस्कोपिसिटी
hyper arid	अतिशुष्क
hypotheses	परिकल्पना
iceberg	हिमशिलाखंड
imbricate	कोरछादी
incised	अधःकर्तित
incision	अधःकर्तन
infill	अभिवृद्धि
inflow	अंतर्वाह
interfluves	दोआबी अवसाद
interglacial	अंतरहिमनदीय
isolated teeth	विगलित दन्त
jaws bone	जबड़े की अस्थियाँ
jaws with teeth	दन्तयुक्त जबड़े
juxtaposition	सन्निधि
knick zones	परिवर्त स्थल
lacustrine deposits	सरोवरी निक्षेप
lacustrine sediment	सरोवरी अवसाद
landforms	भू-आकृति याँ
landscape	भू-दृश्य

landscape evolution	भू-दृश्य विकास
last glacial maximum	अंतिम हिमनदीय उच्चिष्ठ/पिछला अधिकतम हिमनदन
lateral	पार्श्विक
lateral/horizontal offset	पार्श्विक/क्षैतिज विस्थापन
latitude	अक्षांश
limb bones	उपांग अस्थियाँ
limbs with skin and fur	लोमदार उपांग
lineaments	सरिखन
lithological	शैलिकीय
lithology	शैलिकी
longitude	देशांतर
longitudinal profile	अनुदैर्घ्य परिच्छेदिका
low-light adapted	निम्न प्रकाश अनुकूलित
magnetic field	चुंबकीय क्षेत्र
marine productivity	समुद्री उत्पादकता
mass	द्रव्यमान
mean	माध्य
measured / observed	मापित/ प्रेक्षित
meridional	दक्षिणी
micro-vertebrate	सूक्ष्म-कशेरुकी
mineralogical	खनिजकीय
minimum estimated flow	न्यूनतम आंकलित बहाव
model	प्रतिमान
model for ozone and related chemical tracers (mozart)	ओजोन एवं संबंधित रासायनिक सूक्ष्ममात्रकों हेतु मॉडल (मोजार्ट)
model of emissions of gases and aerosols from nature (megan)	प्रकृति से उत्सर्जित गैसों और एरोसोलों का मॉडल (में गन)

monsoon	मानसून
monsoonal circulation	मानसूनी परिसंचरण
mooring	नौबंधन
moraine	हिमोढ
moraine deposit	हिमोढ निक्षेप
morphometric study	आकार मितिकीय अध्ययन
natural levee	प्राकृतिक तटबंध
neo-tectonics	नव-विवर्तनिक
nonuniform sampling	नॉन यूनिफॉर्म सैपलिंग
north pole	उत्तर ध्रुव
nuclide	न्यूक्लाइड
oblique	तिर्यक्
oblique-slip	तिर्यक-सर्पण
ocean acidification	महासागरीय अम्लीकरण
ocean turbulence	महासागरीय विक्षोभ
online	ऑन-लाइन
optical stimulated luminescence	प्रकाशिक उद्दीप्ति संदीप्ति
organic aerosol	अकार्बनिक एरोसोल
orientation	दिक् विन्यास
overflow	अतिप्रवाह
palaeoclimatic	पुराजलवायवी
palaeolacustrine/palaeolake	पुरासरोवरी
palaeo-shore lines	पुरातटरेखा
particulate matter (p m 2.5)	विवक्त पदार्थ 2.5 (पी०एम०2.5)
partridge	बटेर
pebbles	गुटिकाएं
pelagic	वेलापवर्ती

perched alluvial terraces	दुःस्थित जलोढ वेदिका
period	कल्प
periphery	परिधि
physical weathering	भौतिक अपक्षय
physico-chemical characteristics	भौतिकीय-रासायनिक लक्षण/गुण
phytoplankton	पादप प्लवक
phytoplankton productivity	पादप प्लवक उत्पादकता
pigment packaging effect	'वर्णक पैकेजिंग प्रभाव'
polar	ध्रुवीय
polar front	ध्रुवीय अग्रंश
polar ice cover	ध्रुवीय हिमाच्छादन
post collision convergence	पश्च-संघट्ट अभिसरण
post-monsoon	पोस्ट-मानसून
precipitation	वर्षण/अवक्षेपण
predator-prey relationship	शिकार-शिकारी संबंध
pre-monsoon	पूर्व-मानसून
profile	परिच्छेदिका
pydz bay	प्रिज़ बे
quaternary	चतुर्थ
radiation	विकिरण
rain shadow zone	वृष्टि छाया क्षेत्र
ramps	ढलान
range	श्रेणी
rapid radiative transfer model	त्वरितविकिरणित स्थानांतरण मॉडल
regenerated production	पुनर्निर्मित उत्पादन
relative humidity	सापेक्षआर्द्रता
relief	उच्चावच

remote sensing	सुदूर संवेदन
research	शोध
respiratory disease	श्वसन-विकाररोग
ridge	कटक
right angle	समकोण
river terraces	नदी वेदिकाएं
roche moutonnées	रोश मौनटोनीज़
salty	खारा / लवणीय
sand	रेत/बालू
sand dunes	रेत के टीले
satellite remote sensing	उपग्रहीय सुदूर संवेदन
scat	विष्ठा
scraps	कगार
sediment infill	अवसाद भराव
sedimentary	अवसादी
seismic shocks	भूकंपीय झटके
shallow crustal duplexing	छिछले भूपर्पटीय द्वैधीकरण
shearing	अपरूपणी
shorelines	तटरेखाएं
silt	पांशु
slip	सर्पण
snow storm	हिमझंझावात
soft sedimentary deformation structure	मृदु अवसादीय विरूपण संरचनाएं
south asian summer monsoon	दक्षिण एशियाई ग्रीष्म मानसून
southern ocean	दक्षिणी महासागर
southern ocean processes	दक्षिणी महासागर प्रक्रियाएं
south pole	South Pole

spatial and temporal	स्थानिक और सामयिक
srinacher oasis	श्रीमाचेर मरुद्यान
stable isotope	स्थायी समस्थानिक
strain	तनाव/विकृति
strath terraces	स्ट्रेथ वेदिका
stratification	स्तरीकरण
stratigraphy	स्तर विन्यास
strike	नतिलम्ब
strike-slip	नतिलंबी-सर्पण
structurally	संरचनात्मक
study area	अध्ययन क्षेत्र
sub-antarctic front	उप-अंटार्कटिक अग्रांश
subcontinent	उपमहाद्वीप
sub-fossil	उप-जीवाश्म
subtropical front	उपोष्ण-कटिबंधीय अग्रांश
summer monsoon	ग्रीष्म मानसून
surface geological processes	सतही भूवैज्ञानिक प्रक्रियाएं
surface processes	सतही प्रक्रियाएं
sustained	दीर्घकालीन
syndimentary deformation structures	सहअवसादी विरूपण संरचनाएं
tectonic	विवर्तनिक
terrace	वेदिका
thermal gradient	तापीय प्रवणता
time series observation	काल श्रृंखला अवलोकन
top-set bed	शीर्ष संस्तर
trans-himalaya	हिमालय-पार
transpressional	परादाबीय

tributary	सहायक नदी
typical/classical gilbert	प्रारूपिक गिल्बर्ट
unconsolidated sediment	असंपीडित अवसाद
unpaired	अयुग्मित
uplift	उत्थान
variability	परिवर्तनशीलता
vegetation	वनस्पती
ventilation coefficient	वातायनगुणांक
vertebrae	कशेरुकाएं
vertical isoclinal fold	ऊर्ध्वाधर समनतिक वलन
water source	जल स्रोत
weather research and forecasting	मौसम अनुसंधान एवं अनुमान
well-preserved	सुपरिरक्षित
westerlies	पछुवा पवन
wet	आर्द्र
zonal	क्षेत्रीय